ज्योतिष द्वारा रोग उपचार

लेखक :

प्रेम कुमार शर्मा

प्रकाशक :

धीरज पॉकेट बुक्स

[illegible] गांधी मार्ग, मेरठ—२५० ००२

पुस्तक : ज्योतिष द्वारा रोग उपचार

लेखक : प्रेम कुमार शर्मा

प्रकाशक :
धीरज पॉकेट बुक्स
355, गांधी मार्ग, मेरठ-250 002
दूरभाष—(0121) 521009

लेज़र टाइप सेटिंग :
सरस्वती कम्प्यूटर्स, जागृति विहार, मेरठ।

मुद्रक :
संजय प्रिन्टर्स, दिल्ली।

JYOTISH DWARA ROG UPCHAR
By PREM KUMAR SHARMA

मूल्य : सत्तर रुपये मात्र [Rs. 70/-]

लेखकीय

भारतीय ज्योतिष में ग्रहों, भावों, राशियों एवं नक्षत्रों की जो गणना की गई है; वह ब्रह्माण्डीय ऊर्जातरंगों एवं उनसे उत्पन्न प्रभावों का गणित है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार ये तरंगें आने वाले घटनाक्रमों को प्रभावित करती हैं। भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक एवं उसके सूत्र इस ब्रह्माण्ड को एक ऊर्जाधारा का प्रतिफल मानते हैं। इन्हीं धाराओं के जटिल संयोजन का रूप काल है और घटनायें काल में ही समाहित होती हैं।

ज्योतिषीय गणना द्वारा भविष्यफल ज्ञात करने के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखीं गयी हैं; किन्तु मैंने यह अनुभव किया है कि आज सर्वाधिक जातक रोग एवं दुर्घटनाओं से सम्बन्धित जिज्ञासा लेकर आते हैं। इस कारण यह पुस्तक केवल रोगों एवं दुर्घटनाओं की दृष्टि से योगों का विवरण देते हुए लिखी गयी है, ताकि कोई भी पाठक भविष्य में आने वाले रोग एवं दुर्घटनाओं से बच सके। यथासम्भव इस पुस्तक को सरल एवं बोधवाक्य बनाने का प्रयत्न किया गया है और हमें विश्वास है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

ज्योतिष एक जटिल विषय है। अतः हम अपने पाठकों से किसी त्रुटि हेतु अग्रिम क्षमायाचना करते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत करायेंगे।

—प्रेम कुमार शर्मा

विषय-सूची

खण्ड (अ) सिद्धान्त, सूत्र एवं योग

१. ज्योतिष शास्त्र में रोग एवं दुर्घटनायें ७
२. ज्योतिषीय सूत्र एवं योग १४
३. ग्रहों, राशियों, भावों एवं नक्षत्रों के रोग और दुर्घटना क्षेत्र २७
४. रोग एवं दुर्घटनाओं से सम्बन्धित ज्योतिषीय गणनाओं के सिद्धान्त ३९
५. रोग-विचार की प्रक्रिया ५३
६. रोग एवं दुर्घटनाओं की उत्पत्ति एवं प्रभाव का काल ५६
७. आयु विचार ८९
८. रोग एवं दुर्घटना के मृत्यु योग ९९
९. भारतीय ज्योतिष में रोगों एवं दुर्घटनाओं के प्रकार १०२
१०. सहज मानसिक रोग एवं दुर्घटनायें १०५
११. जन्मजात शारीरिक-रोग १०७
१२. प्रत्यक्ष आगन्तुक रोग एवं दुर्घटनायें १११
१३. अप्रत्यक्ष आगन्तुक शारीरिक-रोग १२४
१४. अप्रत्यक्ष धातुजन्य-रोग १३९
१५. यौन-रोग १४६
१६. मानसिक-रोग १५१

खण्ड (ब): रोगों एवं दुर्घटनाओं के ज्योतिषीय निदान

१. रोग के कारण और निदान का सिद्धान्त १५४
२. रत्न द्वारा ग्रहों की शान्ति १५६
३. ग्रहों की तांत्रिक पूजा एवं अनुष्ठान १६१
४. ग्रहों के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातें १८०
५. ग्रहशान्ति के घरेलू टोटके १९०
६. ग्रहशान्ति के सरल उपाय २००

ॐ उपसंहार

खण्ड (अ) : सिद्धान्त, सूत्र एवं योग

अध्याय-१

ज्योतिष-शास्त्र में रोग एवं दुर्घटनायें

ज्योतिष-शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी के ऊपर विद्यमान जीवन ही नहीं; प्रत्येक कण, चाहे वह जीव हो या निर्जीव ग्रहों के चुम्बकीय विद्युतीय तरंगें एवं उनकी रश्मियों से प्रभावित होता है और जब भी किसी इकाई का निर्माण होता है, तब के समय की इन ग्रहों से आयी वातावरणीय रश्मियों एवं इन ग्रहों से उत्पन्न तरंगों तथा बलों की जो स्थिति रहती है, वह उस इकाई के मूल स्वरूप एवं प्रवृत्ति का निर्धारण उसके प्राकृतिक गुणों के अनुसार करती हैं।

इसका अर्थ यह है कि जब पृथ्वी पर किसी जीव के शरीर का निर्माण होता है और जब वह निर्माण पूर्ण होता है; उस समय ग्रंहों की तरंगों, चुम्बकीय बलों एवं रश्मियों की जो स्थिति होती है, वह उसके सम्पूर्ण जीवन की छोटी-बड़ी स्थितियों का निर्धारण करती है। चूँकि यह स्थिति पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर भिन्न-भिन्न प्रकार की रहती है; इसलिये प्रत्येक स्थान पर इसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न होता है।

सम्बन्धों की वैज्ञानिकता

बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसा कैसे सम्भव है? भला सुदूर स्थित ग्रहों पर हमारे सम्पूर्ण भविष्य के क्रिया-कलाप एवं शारीरिक-मानसिक स्थियाँ कैसे निर्भर कर सकती हैं? परन्तु ऐसे भ्रम स्वयं विचार न करने के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जब हम सभी वैज्ञानिक रूप से मानते हैं कि सूर्य की किरणों के कारण ही पृथ्वी पर जीवन है और उसके कारण ही पृथ्वी की भौगोलिक स्थिति है; तो फिर हम कैसे मान लेते हैं कि अन्य ग्रहों का प्रभाव हमारे जीवन पर नहीं पड़ सकता? चन्द्रमा का प्रभाव तो पृथ्वी पर स्पष्ट ही दिखायी देता है। अन्य ग्रहों के प्रभाव की हमें अनुभूति नहीं होती। यह हमारी अनुभूतियों की दुर्बलता है अर्थात् हमारी अनुभूति सीमायें सीमित हैं। हम प्रत्येक अनुभूति को ग्रहण कर सकने में सक्षम नहीं हैं।

भारतीय तत्त्व-विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक इकाई का एक पावर-सर्किट है। इस सर्किट में जो ऊर्जातरंगें चलती हैं, उनकी सूक्ष्म तरंगें उसकी सतह से विकरित होती हैं। इन तरंगों का प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रहों से जो तरंगे निकलती हैं, उनकी परिक्रमा से उसकी स्थिति में अन्तर आने के कारण उनके चुम्बकीय एवं विद्युतीय बलों में जो परिर्वतन होता है, वह पृथ्वी के वातावरण को पूर्णरूपेण प्रभावित करता है। इस प्रभाव के समय जो शरीर-रचना होती है। (चाहे निर्जीव परमाणु की, वनस्पति की या जीव की) उस पर उस ऊर्जा का प्रभाव पड़ता है और उसके पावर-सर्किट के शक्ति बिन्दुओं की सक्रियता उसी स्थिति के अनुरूप हो जाती है। इसके कारण उसके अन्दर विद्यमान ऊर्जाधाराओं की प्रवृत्ति भी प्रभावित होती है और उसके सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का निर्धारण, उसका स्वास्थ्य, उसकी आयु आदि इन्हीं ऊर्जाधाराओं पर निर्भर करती है।

अद्भुत विज्ञान

बहुत से ज्योतिषी ज्योतिष की वैज्ञानिकता को बताने के लिये गुणसूत्रों एवं शारीरिक संरचना में इन ग्रहों के प्रभाव से परिवर्तन होने की बातें करने लगते हैं; किन्तु यह स्मरण रखें कि भारतीय 'तत्त्वविज्ञान' सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म ऊर्जाओं का विज्ञान है। स्थूलशरीर के अवयवों पर इसमें विचार ही नहीं किया गया है। ज्योतिष, तंत्र, योग आदि सभी विद्याओं में ऊर्जाओं का ही वर्गीकरण, प्रभाव, शक्ति, क्रिया आदि का अध्ययन किया गया है। इसमें गुणसूत्रों आदि का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि आधुनिक विज्ञान के अनुसार गुणसूत्र पर प्रकृति एवं गुणों का निर्धारण होता है; परन्तु इस महाविज्ञान के अनुसार स्वयं गुणसूत्र भी इन ऊर्जाधाराओं की प्रवृत्ति के अनुरूप निर्मित होते हैं।

तत्त्वविज्ञान का ऊर्जा सिद्धान्त

ज्योतिष हो या तंत्र, योग हो या ध्यान; सभी भारतीय पराविद्याओं का आधार 'तत्त्वविज्ञान' ही है। यह वह विज्ञान है, जिसे समस्त वेदों, उपनिषदों, गीता आदि में व्यक्त किया गया है। इसमें कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु-अणु ग्रहों, नक्षत्रों में एक ही मुलतत्त्व की धारा बह रही है, जो विभिन्न स्वरूपों में ढलता-बिगड़ता एक विशाल ऊर्जाधारा की भाँति प्रवाह में है। इस धारा में सभी कुछ समाहित है, कोई इससे अलग नहीं और कोई भी निर्जीव नहीं; क्योंकि स्थूलता इन्द्रियों के कारण उत्पन्न एक भ्रम है। सर्वत्र यह ऊर्जा ही व्याप्त है और यह एक प्रवाह में है। यह प्रवाह की 'काल' है।

तत्त्वविज्ञान में इस मूलतत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि यह परमचैतन्य, परमसूक्ष्म, परम तेजोमय, परमगतिवान, सर्वशक्तिमान, स्वयंप्रभु, सर्वज्ञाता है। यह तत्त्व ही वैदिक 'आत्मा' है और इसकी धारा महामाया प्रकृति (ब्रह्माण्ड)। यह तत्त्व अनन्त तक व्याप्त है, ब्रह्माण्ड रूपी महामाया की धारा इसके एक अल्पांश में व्याप्त है। मूलतत्त्व का यह अनन्त फैलाव ही वैदिक परमात्मा है; जिसे निर्गुण, निराकार 'ब्रह्म' के नाम से सम्बोधित किया गया है।

तत्त्वविज्ञान और ज्योतिष

इस महामाया रूपी शक्तिधारा के अन्दर जो जिस रूप और स्थिति में पड़ा हुआ है, वह अपने आस-पास स्थित बड़ी इकाई की ऊर्जातरंगों से प्रभावित होगा और उन्हीं तरंगों पर उसकी समस्त गतिविधियाँ निर्भर करेंगी। यह एक स्वाभाविक तथ्य है। रेलगाड़ी में बैठा हुआ कोई व्यक्ति अपने भाग्य को उससे जोड़ लेता है। उसके क्रिया-कलाप भी उसके प्रभाव के अनुरूप होते हैं। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण, घूर्णनबल और परिक्रमा की गति से क्या आप स्वयं को बचा सकते हैं? क्या आपने किसी नदी के विशाल भँवर के बीच नाचते हुए बुलबुलों को देखा है? वे उस भँवर की लहरों के अनुरूप ही क्रिया करने के लिये विवश होते हैं।

भारतीय ज्योतिष का भी सिद्धान्त यही है। यह कहता है कि पृथ्वी पर इसकी अपनी तरंगों एवं बलरेखाओं तथा अन्य ग्रहों की जो स्थितियाँ होती हैं; उनका सम्मिलित प्रभाव जन्म लेते हुए जातक पर पड़ता है और उसके शरीर का ऊर्जा-परिपथ उसी के अनुरूप ढल जाता है। उसके समस्त शक्तिबिन्दु ही इसी के अनुरूप सक्रिय नहीं होते; अपितु उसके अन्तर्गत जो मूलधारा बहती है, उसकी प्रवृत्ति भी उसी के अनुरूप निर्धारित होती है। अत: उसका सम्पूर्ण जीवन इसी के अनुरूप समस्त क्रिया-कलाप करता है, उसकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति का आधार भी यही होता है।

रोग एवं ज्योतिष में सम्बन्ध

ज्योतिष के अनुसार पूर्वजन्मों के कर्मों से जो प्रवृत्तिमूलक बीजरूप संस्कार संचित होते हैं; वे ही संस्कार किसी जीव की योनि, माता-पिता के संस्कार, भ्रूण के निर्माण का प्रारम्भिक बिन्दु एवं जन्मकाल आदि का निर्धारण करते हैं। इस जन्मकाल के अनुसार ही उसका शरीर निर्मित होता है और उसी पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुरूप उसकी चेतना, बुद्धि, ज्ञान, प्रवृत्ति आदि होती है। लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, नैतिकताधर्म का उपदेश आदि उसके बाहरी व्यक्तित्व को ही बदलते हैं; उसकी प्रवृत्ति, बुद्धि, ज्ञान, चेतना की स्थिति आदि को नहीं बदल सकते। इसी

तरह वह व्यक्ति शरीर को बाहरी उपायों से स्वस्थ रखने का जो प्रयत्न करता है, वह बाहर तक ही रहता है। वास्तव में उसे ठीक करने के लिये उसे योग एवं तंत्र आदि की क्रियायें करनी पड़ेंगी। कारण यह है कि ऊर्जाधाराओं के परिपथ एवं इसके शक्तिबिन्दुओं पर व्यायाम तथा स्थूल दवाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत कम ही पड़ता है। यही कारण है कि आयुर्वेदिक दवाओं की शास्त्रीय निर्माण प्रक्रिया में तंत्र एवं मन्त्रों के प्रयोग किये जाते हैं। (शरीर, सौरमंडल, ब्रह्माण्ड, ग्रह, जीव-निर्जीव इकाईयों के ऊर्जाचक्र के परिपथों के ज्ञान के लिये पढ़िये—'कुंडलिनी तंत्र रहस्य') अन्यथा स्थूलशरीर की चिकित्सा से रोगों का निदान सम्भव नहीं। इनका सम्बन्ध पूर्वजन्म के संस्कारों एवं ग्रहों की स्थिति से बने वातावरण पर निर्भर करता है।

रोगों एवं दुर्घटनाओं से ग्रहों का सम्बन्ध

भारतीय ज्योतिष के अनुसार मनुष्य या जीव की समस्त प्रकृति, क्रिया-कलाप, शारीरिक मानसिक स्थिति, जीवन-क्रम आदि ग्रहों की स्थितियों एवं उसके जन्मकाल के समय की ग्रहस्थितियों के आपसी समीकरण पर निर्भर करता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार ज्योतिष में रोगों एवं दुर्घटनाओं का कारण भी ग्रहों की स्थिति को माना गया है।

उदाहरण के लिये एक बालक या बालिका मुम्बई या दिल्ली में जन्म लेती है। जन्म लेते समय ग्रहों एवं नक्षत्रों (पृथ्वी सहित) की एक विशेष स्थिति होती है। जन्मस्थान की भौगोलिक स्थिति, समय, उस समय के ग्रहों की स्थिति को बालक या बालिका की जन्मपत्री में लिख दिया जाता है। अब पूरे जीवन में जैसे-जैसे ग्रहों की स्थितियों में परिवर्तन होता जायेगा, वैसे-वैसे जातक के जन्मकाल की स्थितियों के अनुरूप उस पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगें। इन प्रभावों के अनुरूप ही उसका शरीर एवं मस्तिष्क क्रियाशील होगा और वह उसी के अनुरूप अपने समस्त क्रिया-कलापों को करेगा और उसके क्रिया-कलापों का भी प्रभाव उस पर पड़ेगा। इस प्रभाव से रोग (शरीरिक एवं मानसिक) या दुर्घटना का कारण बनता है।

यही कारण है कि ज्योतिष में विभिन्न जन्मकाल, स्थान, ग्रहों की स्थितियों एवं उनके प्रभाव का सूक्ष्मतम अध्ययन किया जाता है। इसी अध्ययन के आधार पर किसी जातक का भविष्यफल बनाया जाता है। विभिन्न समयकाल में ग्रहों की स्थितियों के लिये प्राचीनकाल में ज्योतिषीगण अलग-अलग गणनायें करके प्रभाव का विश्लेषण करते थे। आज इसके लिये पंचांग उपलब्ध हैं। जिससे उन्हें जटिल गणनाओं को करने की आवश्यकता नहीं होती।

प्रमाणिकता के कितने समीप

अनेक विद्वान व्यक्ति भी प्रश्न करने लगते हैं कि इन गणनाओं की प्रमाणिकता का स्तर क्या है? अनुभव में तो यह आता है कि अक्सर जातकों के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध होती हैं। दस में चार की सही निकल भी जाये, तो इसे प्रमाणिक कैसे माना जा सकता है? यह तो संयोग भी हो सकता है?

ऐसा सोचना गलत नहीं है, किन्तु इस सोच में वास्तविक तथ्यों के प्रति अज्ञानता भी भरी हुई है। गणित के समीकरणों के परिणाम निश्चित होते हैं। वे कभी नहीं बदलते। इन समीकरणों के आधार पर जब हम कोई गणना करके उसके हल को सामने रखते हैं, तो उसकी शुद्धता का आधार हमारे वे आंकड़ें होते हैं, जिन पर वह सम्पूर्ण समीकरण आधारित होता है। आधुनिक विज्ञान की किसी भी शाखा में इसी प्रक्रिया और शर्तों का प्रयोग किया जाता है।

मान लीजिये कि आपको किसी विद्यालय की प्रयोगशाला में ताम्बे का विद्युत रासायनिक तुल्यांक निकालना है। इसके लिये सूत्र के अनुसार आपको विद्युतधारा का समय और उस समय में एकत्रित ताम्बे का वजन ज्ञात करना है, फिर इसके निश्चित सूत्र से विद्युत रासायनिक तुल्यांक निकालना है।....किन्तु यदि कॉपरसल्फेट का घोल अशुद्ध हो, यदि प्रयोग में लायी गयी ताम्बे की प्लेटें अशुद्ध हों, यदि स्टॉप वाच तेज या धीमा भाग रहा हो; तो आपका परिणाम शुद्ध कैसे होगा?....और होता भी यही है। परिणाम कभी भी १००% सही इन प्रयोगशालओं में भी नहीं होता, चाहे वह प्रयोग कोई महान् वैज्ञानिक ही क्यों न करे।

ज्योतिष की गणना में भी यही होता है। प्रथम अशुद्धि तो यह होती है कि इसमें भ्रूण संयोग के समय का ज्ञान किया ही नहीं जाता। यह सम्भव भी नहीं हो पाता, क्योंकि सामान्य दम्पत्ति इसका ध्यान रखने में सक्षम नहीं होते। तथापि इसके लिये जो आँकड़े (अनुमानित) उपलब्ध होते हैं, उसी पर निर्भर रहना पड़ता है। तत्पश्चात् बालक या बालिका के जन्मकाल के समय सभी दूसरे ही उल्लास या तनाव में होते हैं। हमेशा जन्मकाल जन्म होने के बाद ही दर्ज किया जाता है। तब तक ३० से ४५ सेकेण्ड का अन्तर तो होना ही होना है। इसके बाद बिल्कुल सही घड़ी भी ३० से ४५ सेकेण्ड की अशुद्धि को समेटे ही रहती है। शायद ही कोई एक-दो घड़ी एकदम शुद्ध समय देती हो; क्योंकि शुद्धता का वास्तविक मापदंड स्टैंडर्ड टाइम है। इसके बाद जन्मपत्री बनाने वाले की योग्यता भी सामने आ जाती है। इन आँकड़ों के आधार पर सटीक और शुद्ध वैज्ञानिक परिणाम भी प्राप्त नहीं किये जा सकते। एक छोटी-सी अशुद्धि समस्त प्रक्रिया और फल में अन्तर ला

देती है। ज्योतिषीय गणनायें भी वैज्ञानिक गणनायें हैं। इन पर इन अशुद्धियों का प्रभाव क्यों नहीं पड़ेगा?

ज्योतिषीय सिद्धान्त और उसकी वैज्ञानिकता

भारतीय ज्योतिष आस्थाओं और विश्वास का शास्त्र नहीं है। इसके आधार में सुस्पष्ट वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नियम हैं।

जीव का ऊर्जा परिपथ

इस सिद्धान्त के अनुसार मूलतत्त्व (इसे एक सूक्ष्मतम अतितेजवान और शक्तिमान तत्त्व समझें) में जब तक धारा नहीं बनती वह 'निर्गुण' रहता है। जब उसके दो बिन्दुओं पर सघनता एवं विरलता के कारण विभवान्तर उत्पन्न होता है, तो उन दोनों पोलों के बीच नदी की भाँति ऊर्जाधारा बहने लगती है और उसकी तीन प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं। एक तो (–) की ओर भागने की; दूसरी (+) की ओर प्रतिगमन की तथा तीसरी (+ –) का केन्द्र; जिसमें स्थायी रहने की प्रवृत्ति होती है। वैदिक विज्ञान में इस धारा को 'महामाया' और इसकी इन तीनों प्रवृत्तियों को 'त्रिगुण' के रूप में व्यक्त किया गया है। कोई भी वैज्ञानिक परमाणुओं की संरचना में 'ऊर्जा' के इन तीनों रूपों का परीक्षण कर सकता है।

इस प्रकार किसी भी परमाणु में तीन प्रकार के ऊर्जाबिन्दु बन जाते हैं। एक (+), दूसरा (–) तीसरा (+ –) अर्थात् न्यूट्रल (यह + एवं – के संयोग से ही बनता है)।

वैदिक विज्ञान के अनुसार ये तीनों तो ऊर्जा के मुख्य गुण हैं। इस शक्ति सन्तुलन से बने आकार में कई शक्तिबिन्दु बन जाते हैं और इन बिन्दुओं पर उत्पन्न होने वाली ऊर्जायें अनेक विभिन्न गुणों से युक्त शक्तितरंगों को उत्सर्जित करती हैं। इनकी उत्सर्जन तीव्रता, शक्तिबिन्दुओं की सामर्थ्य, इनकी सबलता-दुर्बलता प्रत्येक इकाई में अलग-अलग होती है, जबकि ऊर्जा का परिपथ एक ही होता है। इन शक्तिबिन्दुओं के आनुपातिक तीव्रता और सामर्थ्य आदि के कारण ही जड़-चेतन का अन्तर, जीवों-वनस्पतियों का अन्तर, जीव-जीव का अन्तर, एक ही जाति के दो जीवों का अन्तर आदि बनते हैं।

ऊर्जा-परिपथ का निर्माण

उपर्युक्त ऊर्जा-परिपथ उस समय बनता है, जब किसी इकाई का निर्माण सूक्ष्म ऊर्जातत्त्व से स्थूल के रूप में निर्मित होता है। इसी समय उस ऊर्जा-परिपथ के शक्तिबिन्दुओं की सामर्थ्य, शक्ति, तीव्रता आदि का अनुपात निर्मित होता है। इस निर्माण में दो बातें कारक बनती हैं। एक उस इकाई के बीजरूप शक्ति अणु

में संचित पूर्व शरीर या शरीरों में किये गये कर्म, दो- उस समय के वातावरण और जन्मस्थान के विद्युतीय चुम्बकीय बलों पर। ज्योतिष में दूसरा कारक पहले कारक पर निर्भर माना गया है अर्थात् पूर्व के कर्म का बीजरूप संस्कार जैसा होगा, वैसी ही योनि, वैसा ही स्थान, वैसे ही माता-पिता, वैसे ही ग्रहों की स्थिति प्राप्त होगी; परन्तु विद्वान ऋषियों में से अनेक यह मानते थे कि पूर्व जन्म के संस्कारों का कारक इस परिपथ के निर्माण में अलग से भी प्रभाव डालता है। यही कारण है कि जुड़वाँ बच्चों की प्रवृत्तियों में भी स्पष्ट अन्तर देखा जाता है। ज्योतिष ने इस प्रभाव को नजर अन्दाज कर दिया है। इस प्रभाव की गणना सम्भव भी नहीं है। इसके ज्ञान के लिये तंत्र एवं योग की जटिल प्रक्रियाओं को सिद्ध करने की आवश्यकता होगी और ज्योतिष में यह सम्भव नहीं है।

किन्तु, प्रवृत्तिमूलक अन्तर से स्थितियों के स्तर में ही अन्तर आता हैं अर्थात् दो व्यक्ति एक ही माता-पिता के संयोग से एक ही समय में जन्म लें, तो यह हो सकता है कि पूर्व के संस्कारों से एक अत्यन्त सबल, दूसरा दुर्बल हो जाये; पर उन पर ग्रहों की स्थितियों का प्रभाव समान रूप से पड़ेगा। एक पर रोग का आक्रमण होगा, तो दूसरे पर भी होगा। यह दूसरी बात है कि एक उससे अपनी मूल प्रतिरोधक प्रवृत्ति (जो पूर्वजन्म से प्राप्त होती है) के कारण प्रभावित होने पर भी स्पष्ट रूप से बीमार न पड़कर सामान्य कष्ट से ही छुटकारा प्राप्त कर ले और दूसरा बिस्तर को पकड़ ले। यही स्थिति दुर्घटनाओं की भी होगी। एक दुर्घटना को झेल सकता है, दूसरा किसी भयंकर क्षति में पड़ सकता है।

ज्योतिष में प्रथम कारक को 'दैव' कहा गया है अर्थात् वह कारक जो पूर्व-जन्म से प्राप्त होता है 'दैव' है और वह कारक जो जन्मकाल की स्थितियों के अनुसार वातावरण में विद्यमान ऊर्जाओं के समीकरण से बनता है 'प्रारब्ध' है। ज्योतिष में इसी 'प्रारब्ध' की गणनायें की जाती हैं।

'प्रारब्ध' का अर्थ व्यापक है। इसमें किसी जीव या इकाई के सम्पूर्ण जीवनकाल के सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तनों एवं गतिविधियों की गणनायें आ जाती हैं। रोग एवं दुर्घटनायें भी उनमें से ही हैं।

अतः इन रोग एवं दुर्घटनाओं के सम्बन्ध स्पष्ट रूप से सुनिश्चित वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत ग्रहों, जन्मकाल एवं जन्मस्थान पर निर्भर करते हैं।

❑

अध्याय-२

ज्योतिषीय सूत्र एवं योग

भारतीय ज्योतिष में ९ ग्रह माने गये हैं। इन ग्रहों को विभिन्न गुणों से युक्त बताया गया है। पृथ्वी जिस कक्षा में भ्रमण करती है, उसकी विभिन्न स्थितियों के अनुसार २७ नक्षत्र बताये गये हैं। सूर्य एवं इसके योग से १२ राशियाँ बनती हैं। इन राशियों एवं ग्रहों की स्थिति से १२ भाव बनते हैं। इनका आपसी संयोग ही 'ज्योतिष-योग' को बनाता है; जिस पर जीवनफल, वर्षफल, मासफल या दिनफल आदि निर्भर करते हैं। इसका एक घटक जातक के जन्म का स्थान भी है।

ग्रहों की गति, युति, नक्षत्रों एवं राशियों के अंशों का विभाजन करके इस शास्त्र में सूक्ष्मातिसूक्ष्म योग की भी गणनायें की जाती हैं। नीचे हम इसके बारे में विस्तृत विवरण दे रहे हैं—

ज्योतिष के ग्रह

ज्योतिष में कुल नौ ग्रह माने गये हैं। पृथ्वी के स्थान का प्रभाव दसवाँ घटक है। इन नौ ग्रहों में 'चन्द्रमा' एक उपग्रह है एवं राहु-केतु पृथ्वी की सूर्य-चन्द्र से बनने वाली छायायें हैं। 'सूर्य' केन्द्रीय भट्ठी है। इस प्रकार आधुनिक युग के ग्रहों की व्याख्या के अनुसार ज्योतिषीय ग्रहों में मात्र पांच ही ग्रह हैं; किन्तु ज्योतिष का ग्रह-सिद्धान्त वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों से है। इसलिये इसमें सूर्य एवं चन्द्रमा को भी ग्रह ही माना गया है, क्योंकि इनका प्रभाव पृथ्वी पर सर्वाधिक पड़ता है। इसी प्रकार पृथ्वी की बनने वाली छाया भी इसके वातावरण को परिवर्तित करती है; इसलिये इसमें राहु एवं केतु को भी ग्रह माना गया है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक होगा कि प्राचीन भारतीय ज्योतिष में राहु एवं केतु का उल्लेख नहीं है, तथापि बाद के युगों में इसका समावेश ग्रह के रूप में किया गया है।

ज्योतिष के ये ग्रह हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु

एवं केतु। इनकी ही स्थितियों से उत्पन्न विद्युतीय, चुम्बकीय एवं किरणों के बल जातक के जीवन पर शुभाशुभ प्रभाव डालते हैं।

इनमें से कुछ को शुभग्रह एवं कुछ को अशुभग्रह बताया गया है। यह वर्गीकरण इनके प्रभाव के आधार पर किया गया है।

भाव

ग्रह जिन स्थितियों से गुजरते हुए पुनः अपने पूर्व की स्थिति में आ जाते हैं; उस वृत्त को १२ भागों में वर्गीकृत करके इन्हें भाव कहा गया है। इस वृत्त के किस कोण से आने वाली किरणें, विद्युतीय-चुम्बकीय बल जीवन के किस क्षेत्र को प्रभावित करती हैं, इनमें इनका वर्गीकरण किया गया है। इनकी संख्या १२ है। जातक की जन्मकुंडली के १२ खाने इन्हीं १२ भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके नाम हैं—

(१) तनु (२) धन (३) सहज (४) सुख (५) पुत्र (६) रोग (७) जाया (८) मृत्यु (९) धर्म (१०) कर्म (११) आय एवं (१२) व्यय।

राशि

कालखंड के परिक्रमा-वृत्त एवं ग्रहों के भ्रमण की स्थितियों के अनुसार राशियों में वर्गीकृत किया गया है। ये राशियाँ १२ हैं। इनके नाम निम्नलिखित है:— (१) मेष (२) वृष (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धनु (१०) मकर (११) कुम्भ (१२) मीन।

लग्न

जातक जिस लग्न में जन्म लेता है, उस राशि को उसका लग्न कहते हैं। इसे कुंडली के सबसे ऊपर मध्यवाले वर्ग में लिखा जाता है और इस वर्ग को प्रथम भाव माना जाता है। इसके बाद ग्रहों की स्थितियाँ कुंडली में बायीं ओर से घूमती हैं।

ग्रहों की उच्च-नीच स्थिति एवं मूलत्रिकोण

विभिन्न राशियों में भ्रमण करते हुए ग्रहों के बल, प्रभाव एवं गुण की स्थिति एक-सी नहीं रहती। इसमें उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। इसी उतार-चढ़ाव को उच्च-नीच स्थिति के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यदि सम्पूर्ण परिक्रमा वृत्त को १२ बराबर भागों में विभाजित कियां जाये, तो प्रत्येक राशि ३०° अंश तक स्थित होती है। ग्रहों की उच्च-नीच स्थिति इन्हीं अंशों पर उनकी स्थिति पर बनती है—

ग्रहों की विभिन्न उच्च-नीच स्थितियों के चरमबिन्दु

ग्रह	राशि	परम उच्चस्थिति	राशि	परम नीचस्थिति
सूर्य	मेष	१० अंश पर	तुला	१० अंश पर
चन्द्र	वृष	३ अंश पर	वृश्चिक	३ अंश पर
मंगल	मकर	२८ अंश पर	कर्क	२८ अंश पर
बुध	कन्या	१५ अंश पर	मीन	१५ अंश पर
बृह०	कर्क	५ अंश पर	मकर	५ अंश पर
शुक्र	मीन	२७ अंश पर	कन्या	२७ अंश पर
शनि	तुला	२० अंश पर	मेष	२० अंश पर
राहु	मिथुन	१५ अंश पर	धनु	१५ अंश पर
केतु	धनु	१५ अंश पर	मिथुन	१५ अंश पर

मूलत्रिकोण आदि

कुंडली के भावों को भी विभिन्न निश्चित वर्गों में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन उनके स्थान के आधार पर किया गया है। इसके नाम हैं—केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम, त्रिक, त्रिषडाय, द्विद्वदिश, मारक, उपपचय एवं अनुपचय। ज्योतिषीय गणनाओं में इनके ग्रहों की स्थिति के अनुसार विशिष्ट प्रभाव हो जाते हैं। इसलिये इसके बारे में जानना उचित है।

(i) **केन्द्र**—कुंडली मे लग्न, चतुर्थ, सप्तम् एवं दशम् भाव को 'केन्द्र' कहा जाता है।

(ii) **त्रिकोण**—पंचम या नवम भाव को 'त्रिकोण' कहते हैं।

(iii) **पणफर**—कुंडली के द्वितीय, पंचम्, अष्टम् एवं एकादश भाव को 'पणफर' कहते हैं।

(iv) **आपोक्लिम**-कुंडली के तृतीय, षष्ठम्, नवम् एवं द्वादश भाव को आपोक्लिम कहते हैं।

(iv) **त्रिषडाय**-कुंडली के तृतीय, षष्ठम् एवं एकादश भाव को त्रिषडाय कहते हैं।

(vi) **त्रिक**-कुंडली के षष्टम् अष्टम् तथा द्वादश भाव को 'त्रिक' कहते हैं।

(vii) **द्विद्वादश**-कुंडली के द्वितीय एवं द्वादश भाव को 'द्विद्वादश' कहते हैं।

(viii) मारक-कुंडली के द्वितीय एवं सप्तम् भाव को 'मारक' कहते हैं।

(ix) उपपचय-कुंडली के तृतीय, षष्ठम्, दशम् एवं एकादश भाव को 'उपपचय' कहते हैं।

(x) अनुपचय-कुंडली के लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम्, सप्तम्, अष्टम्, नवम् एवं द्वादश भाव को 'अनुपचय' कहते हैं।

ये विभिन्न गणना में अपनी स्थिति के अनुसार योग घटक का काम करते हैं।

ग्रहों की मूल त्रिकोणात्मक स्थिति

ग्रह	मूलत्रिकोण एवं अंश
सूर्य	—सिंह राशि में १से २० अंश तक।
चन्द्र	—वृष राशि में ४ से ३० अंश तक।
मंगल	—मेष राशि में १ से १२ अंश तक।
बुध	—कन्या राशि में १६ से २५ अंश तक।
गुरु	—धनु राशि में १ से २० अंश तक।
शुक्र	—तुला राशि में १ से २० अंश तक।
शनि	—कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक।

(२)

ग्रह	स्वराशि	उच्चराशि अंश	नीचराशि अंश	मूलत्रिकोण राशि
सूर्य	सिंह में २१ से ३० अंश	मेष में १० अंश तक	तुला में १० अंश तक	सिंह में १ से २० अंश तक
चन्द्रमा	पूरी कर्क राशि	वृष में ३ अंश तक	वृश्चिक में ३ अंश तक	वृष में ४ से ३० अंश तक
मंगल	मेष में १३ से ३० अंश पूरी वृश्चिक	मकर में २८अंश तक	कर्क में २८अंश तक	मेष में १२ अंश तक
बुध	कन्या में २६ से ३० अंश पूरी मिथुन	कन्या में १८अंश तक	मीन में १३ अंश तक	कन्या में १६ से २५ अंश तक

गुरु	पूरी मीन राशि धनु के २१ से ३० अंश तक	कर्क में ५ अंश तक	मकर में ५ अंश तक	धनु में १ से २० अंश तक
शुक्र	पूरी वृष राशि तुला में २१ से ३० अंश तक	मीन में २७ अंश तक	कन्या में २७ अंश तक	तुला में १ से २० अंश तक
शनि	पूरी मकर राशि कुंभ में २१ से ३० अंश तक	तुला में २० अंश तक	मेष में २०अंश तक	कुंभ में १ से २० अंश तक
राहु	पूरी कन्या राशि	मिथुन के २५ अंश तक	धनु के १५ अंश तक	पूरी कुम्भ राशि
केतु	पूरी मिथुन राशि	धनु के १५ अंश तक	मिथुन के १५ अंश तक	पूरी वृष राशि

ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता

जब दो ग्रहों के प्रभाव एक-दूसरे के प्रभाव की वृद्धि करते हैं, तो उसे ग्रहों की मित्रता कहते हैं। जब दोनों के प्रभाव एक-दूसरे के प्रभाव को हानि पहुँचाते हैं, तो यह 'शत्रुता' कहलाती है। जब दो ग्रहों का प्रभाव एक-दूसरे के प्रभाव की वृद्धि भी नहीं कर रहा हो और हानि भी नहीं पहुँचा रहा हो, तो उसे उदासीन या समग्रह कहते हैं।

ज्योतिष में ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता दो प्रकार की होती है—(१) नैसर्गिक अर्थात् प्राकृतिक स्वभाववश (२) तात्कालिक अर्थात् स्थान विशेष की स्थिति के कारण। ज्योतिष में इन दोनों प्रकार की शत्रुता, मित्रता या समभाव की गणना की जाती है।

ग्रहों का आपसी सम्बन्ध (नैसर्गिक)

सम्बन्ध	ग्रह						
	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र मंगल गुरु	सूर्य बुध	सूर्य चन्द्र बुध गुरु	सूर्य शुक्र	सूर्य चन्द्र मंगल	बुध शनि राहु केतु	बुध शुक्र राहु केतु

सम	बुध राहु केतु	मंगल बुध शुक्र शनि गुरु	शुक्र शनि	मंगल गुरु शनि	शनि	मंगल गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र शनि	मंगल राहु केतु	बुध	चन्द्र राहु केतु	शुक्र बुध	सूर्य चन्द्र राहु केतु	सूर्य चन्द्र मंगल

ग्रहों का आपसी सम्बन्ध (तात्कालिक)

१. यदि किसी ग्रह से दूसरे, तीसरे, चौथे, दशवें, ग्यारहवें एवं बारहवें भाव पर कोई ग्रह हो, तो वे आपस में मित्र होते हैं।

२. किसी ग्रह से पहले, पांचवें, छठे, सातवें, आठवें एवं नवें भाव में रहने वाले ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं।

३. एक ही राशि में रहने वाले दो ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं।

सम्बन्धों के स्तर

उपर्युक्त दोनों प्रकार के सम्बन्धों पर विचार करने के पश्चात् ग्रहों की मित्रता, शत्रुता एवं उदासीनता के पाँच स्तर बनते हैं—

(१) अतिमित्र (२) मित्र (३) सम (४) शत्रु (५) अतिशत्रु।

१. अतिमित्र-जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दोनों दृष्टियों से मित्र होते हैं, उन्हें 'अतिमित्र' कहा जाता है।

२. मित्र-जो ग्रह नैसर्गिक या तात्कालिक किसी एक ही रूप में मित्र होते हैं, वे मित्र कहलाते हैं।

३. सम-जो नैसर्गिक दृष्टि से मित्र एवं तात्कालिक दृष्टि से शत्रु हों अथवा तात्कालिक दृष्टि से मित्र एवं नैसर्गिक दृष्टि से शत्रु होते हैं; उन्हें सम कहा जाता है।

४. शत्रु-जो ग्रह नैसर्गिक या तात्कालिक सम्बन्धों के अनुसार एक के अनुसार शत्रु तथा दूसरे के अनुसार उदासीन होते हैं। उन्हें शत्रु माना जाता है।

५. अतिशत्रु-जो ग्रह दोनों ही प्रकार से शत्रु होते हैं उन्हें आपस में महाशत्रु कहा जाता है।

सम्बन्ध चतुष्टय

उपर्युक्त प्रकार के सम्बन्धों के अतिरिक्त ग्रहों के चार प्रकार के सम्बन्ध और होते हैं, जिन्हें सम्बन्ध चतुष्टय कहा जाता है। इनके अनुसन्धानकर्ता के रूप में 'पाराशर' का नाम उल्लेख में आता है, जो 'वाराहमिहिर' से पूर्ववर्त्ती विद्वान हैं। कुछ लोग इन्हें महर्षि व्यास के पुत्र महर्षि पराशर बताते हैं। परन्तु ये वे पराशर नहीं हैं। इन दोनों के काल के बीच हजारों वर्ष का अन्तर है। महर्षि पराशर सहस्त्रार्जुन के समय पूर्णरूपेण महर्षि पद को प्राप्त कर चुके थे। ये महाभारतकाल से भी पूर्ववर्त्ती व्यक्तित्व थे।

इनके अनुसार ग्रहों के प्रभाव पर कुछ और भी सम्बन्धों का असर पड़ता है। ये सम्बन्ध हैं-

(१) युतिसम्बन्ध (२) दृष्टिसम्बन्ध (३) स्थानसम्बन्ध (४) एकान्तरसम्बन्ध।

इन सम्बन्धों के कारण ग्रहों में सहयोगी या पूरक प्रभाव उत्पन्न होता है, जिससे दोषपूर्ण निर्बल ग्रह भी बलि होकर बलवान् कारक बन जाते हैं।

१. **युतिसम्बन्ध**—एक राशि एवं एक ही भाव में बैठे एक से अधिक ग्रहों का आपसी सम्बन्ध 'युतिसम्बन्ध' कहलाता है।

२. **दृष्टिसम्बन्ध**—एक-दूसरे पर अपनी दृष्टि अर्थात् किरणों को डालने वाले ग्रहों का सम्बन्ध 'दृष्टिसम्बन्ध' कहलाता है।

३. **स्थानसम्बन्ध**—एक-दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में 'स्थानसम्बन्ध' होता है।

४. **एकान्तरसम्बन्ध**—जब एक ग्रह दूसरे की राशि में हो, तो उनमें एकान्तर सम्बन्ध होता है।

उपयुर्क्त में से 'युतिसम्बन्ध', 'स्थानसम्बन्ध' एवं 'एकान्तरसम्बन्ध' की समस्त व्याख्या उनकी परिभाषा में ही समाहित है। केवल दृष्टि सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या की गई है, जो इस प्रकार है—

दृष्टिसम्बन्ध

ग्रहों में दो प्रकार के दृष्टिसम्बन्ध माने गये हैं—

(१) साधारणदृष्टि या पाददृष्टि सम्बन्ध (२) विशेष दृष्टिसम्बन्ध

(क) साधारण या पाददृष्टि सम्बन्ध—

१. अपने स्थान से तीसरे एवं दशवें भाव को ग्रह एकपाददृष्टि से देखता है।

२. अपने स्थान से पाँचवें एवं नवें स्थान को ग्रह द्विपाददृष्टि से देखता है।

३. अपने स्थान से चौथे एवं आठवें स्थान को ग्रह त्रिपाददृष्टि से देखता है।
४. अपने स्थान से सातवें स्थान को ग्रह पूर्णदृष्टि से देखता है।
५. मंगल चौथे एवं आठवें स्थान को, बृहस्पति पाँचवें एवं नवें भाव को तथा शनि तीसरे एवं दशवें स्थान को भी पूर्णदृष्टि से देखता है।

इस सम्बन्ध का प्रभाव भी एक पाद का कम और द्विपाद का अधिक के क्रम से पूर्णदृष्टि तक मानना चाहिए।

ग्रहों का शुभाशुभ प्रभाव

ज्योतिष में ग्रहों को दो वर्ग में विभाजित किया गया है—(१) शुभग्रह (२) पापग्रह।

१. शुभग्रह—(i) बृहस्पति एवं शुक्र को पूर्ण शुभग्रह माना जाता है।

(ii) पूर्ण चन्द्रमा भी शुभग्रह माना जाता है। शुक्ल एकादशी से कृष्ण पंचमी तक चन्द्रमा को पूर्ण माना जाता है। कृष्ण एकादशी से शुक्ल पंचमी तक इसे क्षीण माना जाता है। शेष समय में यह मध्यम होता है।

(iii) शुभग्रह से मुक्त बुध भी शुभ माना जाता है।

2. पापग्रह—(i) सूर्य, मंगल, शनि, राहु एवं केतु पापग्रह हैं।

(ii) क्षीण चन्द्रमा भी पापग्रह है।

(iii) अशुभग्रह से युक्त बुध भी पापग्रह है।

ग्रहों के बल

भारतीय ज्योतिष में ग्रहों में छः प्रकार के बलों की स्थिति बतायी गयी है—

(१) स्थानबल (२) द्विगबल, (३) कालबल (४) चेष्टाबल (५) दृगबल (६) नैसर्गिकबल।

१. स्थानबल—जो ग्रह अपनी राशि, मित्र ग्रह की राशि, उच्चराशि, एवं मूलत्रिकोण में स्थित हो, उसे स्थानबल प्राप्त होता है और वह 'स्थानबल' कहलाता है।

२. द्विगबल—जन्मकुंडली का प्रथम भाव पूर्व, सप्तम् पश्चिम, चतुर्थ उत्तर एवं दशम् दक्षिण माना जाता है। बुध एवं बृहस्पति पूर्व में, शनि पश्चिम में, चन्द्रमा एवं शुक्र उत्तर में तथा सूर्य एवं मंगल दक्षिण में बली होते हैं। यह बल इनका दिशाबल कहा जाता है।

३. कालबल—ग्रहों को समयानुसार प्राप्त होने वाले बल 'कालबल' कहलाते हैं। चन्द्रमा, मंगल और शनि रात में, बृहस्पति, शुक्र दिन में तथा बुध रात-दिन दोनों में बली होते हैं।

४. चेष्टाबल—सूर्य एवं चन्द्रमा उत्तरायण में तथा मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि—अपनी वक्रगति या संघर्ष में चेष्टाबली होते हैं।

५. दृगबल—दृष्टि के प्रभाव से उत्पन्न बल को 'दृगबल' कहते हैं। ग्रहों पर शुभग्रहों की दृष्टि से बल एवं पापग्रहों की दृष्टि से बलहीनता प्राप्त होती है।

६. नैसर्गिकबल—ग्रहों के स्वाभाविक (प्राकृतिक) बल को नैसर्गिकबल कहते हैं। इसमें सूर्य को सर्वाधिक बली एवं शनि को सर्वाधिक निर्बल माना जाता है। इसी क्रम में बल का क्रमानुपाती पतन एवं उर्ध्वगमन माना जाता है।

ग्रहों की अवस्था

ग्रहों के फल देने की क्षमता उसकी अवस्थाओं के अनुसार घटती-बढ़ती हैं। ये अवस्थायें ५ मानी गयी हैं—

(१) बाल्यावस्था (२) कुमारावस्था (३) युवावस्था (४) वृद्धावस्था (५) मृत

इसका निर्धारण निम्नप्रकार से किया जाता है—

१. बाल्यावस्था—विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रह बाल्यावस्था में माँना जाता है। समराशि में २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह बाल्यावस्था में होता है।

२. कुमारावस्था—विषम राशियों में ६ से १२ एवं समराशियों में १९ से २४ अंश तक ग्रह के स्थित होने पर उसकी कुमारावस्था मानी जाती है।

३. युवावस्था—विषम एवं सम दोनों प्रकार की राशियों में १३ से १८ अंश तक में स्थित ग्रह युवावस्था में समझा जाता है।

४. वृद्धावस्था—विषम राशि में १९ से २४ एवं समराशि में ७ से १२ अंश तक में स्थित ग्रह वृद्ध माना जाता है।

५. मृत—विषम राशि में २५ से ३० एवं सम राशि में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रह मृत समझा जाता है।

ग्रहों की अवस्था के अनुसार फलप्रभाव निम्नलिखित प्रकार से होता है—

बाल्यावस्था—अल्प; **कुमारावस्था**—अर्द्ध

युवावस्था—पूर्ण; **वृद्धावस्था**—अर्द्ध

मृत—प्रभावहीन

ज्योतिष के नक्षत्र

ज्योतिषियों ने सम्पूर्ण आकाशमंडल को २७ भागों में विभक्त करके, प्रत्येक भाग को एक-एक नक्षत्र माना है। यह एक प्रकार से आकाशीय वृत्त में दूरी मापने का पैमाना है। प्रत्येक नक्षत्र का नाम अलग-अलग रखा गया है। इनमें

से प्रत्येक को ४ चरण एवं ६० अंशों में विभक्त किया गया है। इसके अंश को 'घटी कहा जाता है। यह कालचक्र के समयखंड का एक ऐसा पैमाना है, जो इसके गुणों को भी स्पष्ट करता है। इन नक्षत्रों के नाम निम्नलिखित हैं—

१ अश्विनी	८ पुष्य	१५ स्वाति	२२ श्रवण
२ भरणी	९ अश्लेषा	१६ विशाखा	२३ धनिष्ठा
३ कृत्तिका	१० मघा	१७ अनुराधा	२४ शतभिषा
४ रोहिणी	११ पूर्वाफाल्गुनी	१८ ज्येष्ठा	२५ पूर्वाभाद्रपद
५ मृगशिरा	१२ उत्तराफाल्गुनी	१९ मूल	२६ उत्तराभाद्रपद
६ आर्द्रा	१३ हस्त	२० पूर्वाषाढ़ा	२७ रेवती
७ पुनर्वसु	१४ चित्रा	२१ उत्तराषाढ़ा	

नक्षत्रों के स्वामी

उपर्युक्त नक्षत्रों के स्वामी २७ देवता माने गये हैं। इन देवताओं की अपनी अलग व्याख्या है। देवतागण वस्तुतः ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के विभिन्न रूपों के प्रतिनिधि प्रतीक नाम हैं। इनके गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। इस प्रकार नक्षत्रों के स्वामी देवता उन नक्षत्रों के समय में पृथ्वी के वातावरण में व्याप्त ब्रह्माण्डीय ऊर्जा तरंगों की प्रकृति एवं गुणों के द्योतक हैं। इन गुणों के प्रभाव से इस काल में जन्म लेने वाला शिशु प्रभावित होता है और उसी के अनुरूप ग्रहों की रश्मियों एवं विद्युतीय-चुम्बकीय बलों से जो मिश्रित ऊर्जा वातावरण में बनती है, उसके स्थान विशेष पर स्थिति के अनुरूप शिशु के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। नक्षत्रों के स्वामी देवताओं का निर्धारण इस प्रकार किया गया है—

नक्षत्रों के स्वामी

नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी
१ अश्विनी	अश्विनीकुमार	१५ स्वाति	पवन
२ भरणी	काल	१६ विशाखा	शुक्राग्नि
३ कृत्तिका	अग्नि	१७ अनुराधा	मित्र
४ रोहिणी	ब्रह्मा	१८ ज्येष्ठा	इन्द्र
५ मृगशिरा	चन्द्रमा	१९ मूल	निर्ऋति
६ आर्द्रा	रुद्र	२० पूर्वाषाढ़ा	जल
७ पुनर्वसु	अदिति	२१ उत्तराषाढ़ा	विश्वेदेवा

८ पुष्य	बृहस्पति	२२ अभिजित्	ब्रह्मा
९ अश्लेषा	सर्प	२३ श्रवण	विष्णु
१० मघा	पितर	२४ धनिष्ठा	वसु
११ पूर्वाफाल्गुनी	भग	२५ शतभिषा	वरुण
१२ उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा	२६ पूर्वाभाद्रपद	अजैकपाद
१३ हस्त	सूर्य	२७ उत्तराभाद्रपद	अहिर्बुध्न्य
१४ चित्रा	विश्वकर्मा	२८ रेवती	पूषा

नक्षत्रों के चरणों (उनमें से प्रत्येक के चौथे भाग को चरण कहा जाता है) में से प्रत्येक चरण के लिये ज्योतिष में वर्णमाला के एक-एक अक्षरों का निर्धारण किया गया है। शिशुओं के जन्म के समय जिस नक्षत्र का जो चरण होता है, उसी के निर्धारित अक्षर के अनुसार उसके नाम का प्रथमाक्षर रखा जाता है—

नक्षत्रों के चरणों का अक्षर

ऊपर बताया जा चुका है कि प्रत्येक नक्षत्र को ४ चरण तथा ६० अंशों में विभाजित किया गया है। ज्योतिषियों के प्रत्येक नक्षत्र के प्रत्येक चरण का एक-एक 'अक्षर' भी निर्धारित किया है। जिस नक्षत्र के जिस चरण के लिए जो अक्षर निश्चित है, उसका उल्लेख नीचे किया गया है। जो मनुष्य जिस नक्षत्र के जिस चरण के भोग-काल में जन्म लेता है, उसका नाम उसी चरणाक्षर के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति का जन्म अश्विनी नक्षत्र के तीसरे चरण में हुआ हो तो उसके नाम का आदि अक्षर 'चो' होगा और उसी के आधार पर उसका नाम 'चोवसिंह', 'चोइथराम' आदि रखा जाएगा।

किस नक्षत्र के किस चरण के लिए कौन-सा अक्षर नियत है, इसे निम्नानुसार समझ लें।

नक्षत्र नाम	चरणाक्षर				नक्षत्र नाम	चरणाक्षर			
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ		प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
१. अश्विनी	चू	चे	चो	ला	१५. स्वाति	रू	रे	रो	ता
२. भरणी	ली	लू	ले	लो	१६. विशाखा	ती	तू	ते	तो
३. कृत्तिका	आ	ई	ऊ	ए	१७. अनुराधा	ना	नी	नू	ने
४. रोहिणी	ओ	बा	बी	बू	१८. ज्येष्ठा	नो	या	यी	यू
५. मृगशिरा	बे	बो	का	की	१९. मूल	ये	यो	भा	भी

६. आर्द्रा	कू	घ	ङ	छ	२०. पूर्वाषाढ़ा	भू	धा	फा	ढा
७. पुनर्वसु	के	को	हा	ही	२१. उत्तराषाढ़ा	भे	भो	जा	जी
८. पुष्य	हू	हे	हो	डा	२२. अभिजित्	जू	जे	जो	खा
९. अश्लेषा	डी	डू	डे	डो	२३. श्रवण	खी	खू	खे	खो
१०.मघा	मा	मी	मू	मे	२४. धनिष्ठा	गा	गी	गू	गे
११.पू.फाल्गुनी	मो	टा	टी	टू	२५. शतभिषा	गो	सा	सी	सू
१२.उ.फाल्गुनी	टे	टो	पा	पी	२६. पू.भाद्रपद	से	सो	दा	दी
१३.हस्त	पू	ष	ण	ठ	२७. उ.भाद्रपद	दू	थ	झ	ञ
१४.चित्रा	पे	पो	रा	री	२८. रेवती	दे	दो	चा	ची

वार

भारतीय ज्योतिष के अनुसार आकाश-मण्डल में मुख्य ग्रहों की संख्या ७ है। ये ग्रह हैं—(१) शनि, (२) बृहस्पति, (३)मंगल, (४) रवि, (५) शुक्र, (६) बुध और (७) चन्द्रमा। इन ग्रहों की अवस्थिति क्रमशः एक दूसरे से नीचे है। अर्थात् शनि की कक्षा सबके ऊपर तथा चन्द्रमा की कक्षा सबसे नीचे है।

एक दिन-रात २४ घंटे का होता है। ज्योतिष में एक घंटे के समय के लिए 'होरा' शब्द प्रचलित है। यह 'होरा' शब्द 'अहोरात्र' शब्द का संक्षिप्त रूप है।

इस प्रकार ग्रहों, राशियों, भावों, एवं नक्षत्रों की स्थिति से उत्पन्न प्रभाव ही ज्योतिष के फलनिर्णय में निर्णायक तत्त्व हैं। ये ही रोग एवं दुर्घटनाओं का भी निर्णय करते हैं।

वार, तिथि,मिति आदि

वार—ज्योतिष में आकाशीय ग्रहों की संख्या कुल सात मानी गयी है। कक्षाओं की रश्मियों के अनुरूप इनका क्रम इस प्रकार निर्धारित किया गया है—(१) शनि, (२) बृहस्पति, (३) मंगल, (४) रवि, (५) शुक्र, (६) बुध और (७) चन्द्रमा।

ज्योतिषशास्त्र में दिन-रात को मिलाकर 'अहोरात्र' कहा जाता है और घंटे को होरा। यह माना गया है कि सौरमंडल में सर्वप्रथम सूर्य की ही उत्पत्ति हुई। अतः प्रथम सूर्योदय को 'सूर्यवार' कहा गया, जिसे हम रविवार के नाम से जानते हैं। दिन-रात २४ घंटे का होता है। अब प्रथम घंटे अर्थात् 'होरा' का स्वामी उपर्युक्त क्रम में बृहस्पति हुआ। इस प्रकार जब २५ वाँ घन्टा आया, तो उसका स्वामी 'चन्द्रमा' हो गया और २५ वाँ घंटा सूर्योदय का घंटा है, इसलिये इसका नाम 'चन्द्रमावार' या 'सोमवार' हो गया। इसी प्रकार दिनों के 'वार' का निर्धारण किया गया है।

तिथि एवं मिति—चन्द्रमा के एक मास में दो पक्ष होते हैं। एक कृष्णपक्ष दूसरा शुक्लपक्ष। इन दोनों के सम्मिलित कालखंड में चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर लगा लेता है। इस कालखण्ड में प्रत्येक पक्ष में चन्द्रमा एक कला-घटता या बढ़ता है। इस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा एक-एक कला बढ़ता है और कृष्णपक्ष में एक-एक कला घटता है। बढ़ने की कला को शुक्लपक्ष प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चौथी आदि एवं घटने के क्रम को कृष्णपक्ष की प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चौथी आदि कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक को तिथि-या-मिति कहा जाता है।

❑

अध्याय-३

ग्रहों, राशियों, भावों एवं नक्षत्रों के रोग और दुर्घटना क्षेत्र

ग्रहों, राशियों, भावों एवं नक्षत्रों के रोगादिक उत्पत्तियों के गुण एवं क्षेत्र निर्धारित हैं। इनकी गणना में इन्हीं मानक तालिकाओं का ध्यान रखा जाता है। इसलिये हम अलग-अलग इनके गुणों पर विचार करेंगे।

ग्रहः रोग एवं दुर्घटनायें

विभिन्न ग्रह विभिन्न प्रकार के रोगों आदि की उत्पत्ति के कारक का काम करते हैं। इनके क्षेत्र एवं प्रभाव इस प्रकार हैं—

१. **सूर्य**—यह अग्नितत्त्व से निर्मित (ऊर्जातत्त्व) मध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है। यह पुरुषों के दायें एवं स्त्रियों के बायें शरीर पर प्रभाव डालता है। इसके बली होने पर नेत्र आयु, अस्थि, सिर, हृदय, प्राणशक्ति, रक्त, मेदा एवं पित्त पर प्रभाव डालता है।

अपमान से उत्पन्न ग्लानि से युक्त दुर्घटनायें।

२. **चन्द्रमा**—यह जलीयतत्त्व से निर्मित दीर्घ कद वाला ग्रह है। यह पुरुष के बायें एवं स्त्री के दायें भाग को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर रक्तसंचार, उत्साह, मानसिकशक्ति, बायें प्राणवायु आदि की वृद्धि होती है। इसके निर्बल होने पर उत्साहहीनता, रक्तसंचार में मन्दता, कफरोग, पीलिया, वातरोग, नासिकारोग, मूत्रविकार, जलोदर, मुखरोग आदि की वृद्धि होती है। इसके निर्बल होने पर मानसिक रोग भी हो सकते हैं।

चन्द्रमा का प्रभाव शरीर में पुरुषों के बायें नेत्र, वक्ष, फेफड़े एवं उदर, मूत्राशय, वामरक्त प्रवाह, रसधातु शारीरिकशक्ति, मन तथा मस्तिष्क पर पड़ता है। स्त्रियों में यह प्रभाव दायीं ओर पड़ता है।

मस्तिष्क दोष से उत्पन्न हुई दुर्घटनायें।

३. **मंगल**—यह अग्नितत्त्व से निर्मित छोटे कद वाला ग्रह है। यह कपाल,

कान, मडा, स्नायु, पुट्ठे, शारीरिकशक्ति, धैर्य, पित्त, दाह, शोध, क्रोध, मानसिक तनाव आदि को प्रभावित करता है। इसके निर्बल होने पर रक्तविकार, उच्च रक्तचाप, रक्तस्राव व कुष्ठ, रक्तविकार से उत्पन्न फोड़े-फुन्सी, चोट, सूजन वात एवं पित्त विकार, महामारी से ग्रसित होने की स्थिति, दुर्घटनायें एवं दुर्घटनाओं से उत्पन्न रोग, गुप्त रोग, अग्निदाह, आदि में वृद्धि होती है।

उत्तेजना आवेग के कारण हुई दुर्घटनायें।

४. बुध—यह पृथ्वीतत्त्व से निर्मित सामान्य कदवाला जलीयग्रह है। यह जिह्वा, वाणी, स्वर, श्वास, ललाट, मज्जा के तन्तुओं, फुफ्फुस, केश, मुख, हाथ आदि को प्रभावित करता है। इसके निर्बल होने पर मानसिक रोग, हिस्टिरिया, चक्कर, **निमोनिया, जटिल प्रकार के ज्वर, पीलिया, उदरशूल, मन्दाग्नि, वाणीविकार,** कण्ठ के रोग, नासिका के रोग, स्नायुरोग आदि होते हैं।

मतिभ्रम एवं अज्ञानतावश हुई दुर्घटनायें।

५. बृहस्पति—यह आकाशीयतत्त्व से निर्मित मध्यम कद वाला जलीय ग्रह है। इसे गुरु भी कहा जाता है। यह वीर्य, रक्तप्रणाली, यकृत, त्रिदोष, कफ आदि को प्रभावित करता है। इसके निर्बल होने पर मज्जा के सत्त्व में विकार, यकृतरोग, उदररोग, मस्तिष्क विकार, प्लीहा रोग, स्थूलता, दन्तरोग, आलस्य, वायुविकार, मानसिक तनाव आदि उत्पन्न होते हैं।

हृदय से सम्बन्धित दुर्घटनायें।

६. शुक्र—यह जलीयतत्त्व से निर्मित मध्यम कद वाला ग्रह है। यह जननेन्द्रिय की सबलता, कामशक्ति, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, ठुड्डी, गर्भाशय, संवेग (आवेश) आदि को प्रभावित करता है। इसके निर्बल होने पर वीर्य सम्बन्धी दुर्बलता, यौनशक्ति एवं कामशक्ति की दुर्बलता, जननेन्द्रिय दुर्बलता, जननेन्द्रिय विकार, यौनरोग, नशे से उत्पन्न विकार, विषप्रभाव, प्रमेह, उपदंश, प्रदर, पीलिया, कफरोग, वायुरोग आदि होते हैं।

कामभाव एवं लालचवश किये गये कर्मों से उत्पन्न दुर्घटनायें।

७. शनि—यह वायुतत्त्व वाला, मस्तिष्क, रक्त, त्वचा, वात आदि को प्रभावित करता है। इसके दुर्बल होने पर पशुओं से हुई शारीरिक क्षति; सर्प, कुत्ते, कीड़े-मकोड़े के काटने, दम्मा, अंग-भंग, दुर्घटनायें, निराशा का आवेग, मानसिक अन्तुलन, आत्महत्या, हत्या, अपराधिक प्रवृत्ति से उत्पन्न दुर्घटनाओं से प्रभावित होता है।

दुर्भाग्यवश एवं आकस्मिक संकट के रूप में आयी दुर्घटनायें।

८. राहु—यह वायुतत्त्व से निर्मित मध्यम कद वाला ग्रह है। यह मस्तिष्क, रक्त, वायु आदि को प्रभावित करता है। इससे मृगी, मानसिक विक्षिप्तता, चेचक, कृमि प्रकोप, सर्पदंश, पशुओं से दुर्घटना, कुष्ठ, कैंसर आदि होते हैं।

षड्यंत्र के फलस्वरूप उत्पन्न दुर्धटनायें। यह षड्यंत्र अपना भी हो सकता है, शत्रु का भी।

९. केतु—यह वायुतत्त्व से निर्मित छोटे कद वाला ग्रह है। यह रक्त, त्वचा एवं वात को प्रभावित करता है। इसके निर्बल होने पर शरीर की श्रमशक्ति, प्रतिरोधशक्ति, सक्रियता आदि निर्बल होती हैं। इससे उत्पन्न रोग भी प्रभावित करते हैं।

शरीर के बाहरी स्वरूप पर लगने वाली आघातें।

विशेष—(१. उपर्युक्त ग्रहों के बली होने पर विपरीत प्रभाव होता है अर्थात् सम्बन्धित क्षेत्र में आरोग्यता प्राप्त होती है।

२. ज्योतिष में ग्रहों की व्याख्या प्रभाव के अन्तर्गत की गयी है, इसलिए अग्नि, जल और वायुतत्त्व की व्याख्या को ग्रहों के भौतिक स्वरूप से तुलना करना अज्ञानता का ही परिचायक होगा।

३. वैदिक-विज्ञान में प्रवृत्ति को अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु एवं आकाश से निर्मित बताया गया है। इस सिद्धान्त की आधुनिक विज्ञान में बड़ी आलोचना की गई हैं; किन्तु यह पदार्थ के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या है। यह एक अलग प्रकार का विश्लेषण है, जिसमें कहा गया है कि अग्नि (ऊर्जा), वायु (गैस) जल (तरलता), पृथ्वी (स्थूलता, ठोस भाव) ये चार मिलकर किसी पदार्थ का निर्माण करते हैं और पाँचवाँ तत्त्व आकाश उसकी सारशक्ति को नियंत्रित करके अपने अन्दर स्थित रखता है। सारा भ्रम इन शब्दों के आधुनिक अर्थ से उत्पन्न होता है।

नक्षत्र: रोग एवं दुर्घटनायें

इससे पूर्व दूसरे अध्याय में हम नक्षत्रों का परिचय दे आये हैं। नक्षत्रों का भी ज्योतिष योग के घटक के रूप में रोगों की उत्पत्ति में विशेष योगदान होता है। यहाँ हम उस पर चर्चा करेंगे। अट्ठाइसवें नक्षत्र अभिजित की गणना ज्योतिष में लगभग नहीं के बराबर की जाती है। इस नक्षत्र का उपयोग मुहूर्त्त आदि की गणना में किया जाता है। रोगों की उत्पत्ति में इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं है। अत: हम यहाँ २७ नक्षत्रों की रोग उत्पादक या कारक प्रकृति की तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं—

नक्षत्रों की रोगकारक प्रकृति और समय

क्र.सं.	नक्षत्र	रोग एवं दुर्घटनायें	रोगों का समय
१.	आर्द्रा	वात, अर्द्धांगवात, अनिद्रा, मतिभ्रम, अनिश्चय, मानसिक अन्यवस्था आदि।	१ दिन तक, ९ दिन तक, २५ दिन तक
२.	भरणी	तेज बुखार, दर्द, आलस्यजनित रोग, शिथिलता, बदन दर्द, मूर्च्छा, चक्कर आदि, परिस्थितियों से उत्पन्न दुर्घटनायें।	११ दिन तक २१ दिन तक ३० दिन तक (खतरनाक भी हो सकता है।)
३.	कृतिका	उदररोग, मस्तिष्क का दर्द जो रक्त नलिकाओं एवं स्नायुओं की दोषपूर्ण क्रियाओं से उत्पन्न होता है। अग्नि से उत्पन्न दुर्घटनाओं से यह क्रियाशील होता है। यह मूलरूप से स्नायविक दर्दों का कारक घटक है। ऐसे नेत्र रोग भी हो सकते हैं।	१० दिन तक २१ दिन तक
४.	रोहिणी	तीव्रसिर दर्द, वायुशूल, कुक्षिशूल, दर्द से चीखना-चिल्लाना, उन्माद, पागलपन (अस्थायी), प्रलाप आदि। भाग्य में वर्णित नियत दुर्घटनायें।	३ दिन तक ७ दिन तक ९ दिन तक १० दिन तक
५.	मृगशीर्ष	चर्म रोग, खुजली, खाज, एलर्जी से उत्पन्न चकत्ते, घमौरियाँ आदि।	३ दिन तक ५ दिन तक ९ दिन तक
६.	आर्द्रा	कफरोग, कफ से उत्पन्न खाँसी या ज्वर, स्नायु की दुर्बलता से उत्पन्न रोग पक्षाघात, पेट में वायु बनना, वायु से शूल उठना आदि, अतिशय क्रोध से उत्पन्न हुई दुर्घटनायें।	१० दिन तक १ महीने तक (खतरनाक भी हो सकता है।

क्र.सं.	नक्षत्र	रोग एवं दुर्घटनायें	रोगों का समय
७.	पुनर्वसु	कमर दर्द, पुश्त दर्द, कूल्हों में दर्द, सिरदर्द, गुर्दों के रोग, आदि।	७ दिन तक ९ दिन तक
८.	पुष्य	आकस्मिक ज्वर, पीड़ा, दर्द आदि। अज्ञानतावश किये कर्म से उत्पन्न हुई दुर्घटनायें।	७ दिन तक
९.	आश्लेषा	सर्पदंश, सम्पूर्ण स्नायुरोग, रक्त की विषाक्तता से उत्पन्न रोग, कष्टकारक शूल, असहनीय कष्टकारक रोग आदि।	९ दिन तक २० दिन तक ३० दिन तक (मृत्युदायक)
१०.	मघा	वायुविकार से उत्पन्न रोग, उदरविकार से उत्पन्न रोग, मुखरोग, जीभ आदि के छाले आदि। पितृपक्ष के अपमानित होने से उत्पन्न दुर्घटनायें।	२० दिन तक ३० दिन तक ४५ दिन तक २०० दिन तक ३०० दिन तक ४५० दिन तक
११.	पूर्वाफाल्गुनी	कर्णरोग, शिरोरोग, ज्वर, शूल, स्नायविक पीड़ा आदि।	८ दिन तक १५ दिन तक ३० दिन तक १५० दिन तक ३०० दिन तक
१२.	उत्तराफाल्गुनी	पित्तविकार से उत्पन्न रोग, पित्तज्वर, अस्थिभंग एवं सारे शरीर में शूल या दर्द आदि। हड्डियों को भंग करने-वाली दुर्घटनायें।	७ दिन तक १५ दिन तक ३० दिन तक ३० दिन तक ४५ दिन तक
१३.	हस्त	उदरशूल, मन्दाग्नि, उदरविकार आदि, इससे उत्पन्न अन्यविकार एवं ज्वर भी। अपमान से उत्पन्न दुर्घटनायें।	७ दिन तक ९ दिन तक १५ दिन तक पुनरावृत्ति भी हो सकती है।)

क्र.स.	नक्षत्र	रोग एवं दुर्घटनायें	रोगों का समय
१४.	चित्रा	दुर्घटना से उत्पन्न कष्टकारक पीड़ायें; आक्समिक कष्ट देने वाले रोगों का प्रकोप, आकस्मिक दुर्घटनायें।	८ दिन तक ११ दिन तक १५ दिन तक (मृत्युदायक भी)
१५.	स्वाति	जटिल जीवाणुओं से उत्पन्न रोग, निदान रहित रोग, जिनका उपचार अत्यन्त कठिन हो या हो ही नहीं पाये। वायुवेग से उत्पन्न दुर्घटनायें।	३० दिन तक ६० दिन तक १५० दिन तक ३०० दिन तक मृत्युपर्यन्त
१६.	विशाखा	वायुविकार, उदररोग, मेदा से सम्बन्धित रोग, कुक्षिशूल, सभी अंगों में पीड़ा आदि।	८ दिन तक १० दिन तक २० दिन तक ३० दिन तक
१७.	अनुराधा	तीव्र सिरदर्द, तीव्र ज्वर, संक्रमण से उत्पन्न रोग आदि।	६ दिन तक १० दिन तक २८ दिन तक
१८.	ज्येष्ठा	स्नायविक रोग, कम्पन, विकलांगता, वक्षरोग, लकवा आदि। आक्समिक अंग-भंग, की सम्भावनायें।	१५ दिन तक २१ दिन तक ३० दिन तक (मृत्युदायक भी)
१९.	मूल	उदरविकार, मुखरोग नेत्ररोग, सिस्पीड़ा आदि।	९ दिन तक १५ दिन तक २० दिन तक
२०.	पूर्वाषाढ़ा	वीर्ग्यदोष, धातुक्षय, सार दुर्बलता, गुप्त रोग, काम-जन्य रोग, यौनशक्ति। जल से सम्बन्धित दुर्घटनायें।	१५ दिन तक २० दिन तक ३० दिन तक ४० दिन तक २०० दिन तक

क्र.सं.	नक्षत्र	रोग एवं दुर्घटनायें	रोगों का समय
२१.	उत्तराषाढ़ा	उदरशूल, कटिशूल, अन्य सभी प्रकार के शूल।	२० दिन तक ४५ दिन तक
२२.	श्रवण	अतिसार, विशूचिका, मूत्रकृच्छ संग्रहणी रोग आदि। चेतना-शून्यता से उत्पन्न दुर्घटनायें।	३ या ६ दिन १० दिन तक २५ दिन तक
२३.	धनिष्ठा	आमाशय, गुर्दे, वस्ति आदि के रोग।	१३ दिन तक १५ दिन तक
२४.	शतभिषा	वात रोग, वातजनित रोग, ज्वर, सन्निपात, विषमज्वर। जल से उत्पन्न दुर्घटनायें।	३ दिन तक १० दिन तक २१ दिन तक ४० दिन तक
२५.	पूर्वाभाद्रपद	उल्टी, दस्त, दर्द, उदरविकार, मिचली, घबराहट, चक्कर आदि।	२ दिन तक १० दिन तक ५० दिन तक १०० दिन तक
२६.	उत्तराभाद्रपद	दन्त रोग, वातरोग, ज्वर आदि।	६ दिन तक १० दिन तक ४५ दिन तक
२७.	रेवती	मानसिक रोग, व्यभिचार से उत्पन्न रोग, वात रोग आदि।	१० दिन तक २८ दिन तक ४८ दिन तक १०८ दिन तक

राशिः रोग एवं दुर्घटनायें

जिस प्रकार ग्रह एवं नक्षत्र रोगों की उत्पत्ति के कारक घटक हैं; उसी प्रकार राशियाँ भी इसका एक घटक हैं।

राशि और अंग

राशियाँ	प्रभावित होने वाले अंग
मेष	मस्तिष्क, माथा (ललाट), शरीर एवं शिर के बाल।
वृष	आँख, कान, नाक, गाल, होठ (ओष्ठ), दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
मिथुन	कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, कोहनी, मणिबन्ध, हथेली, वक्ष एवं स्तन।
कर्क	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
सिंह	पेट, आँतें, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
कन्या	कमर एवं चूतड़ (नितम्ब)।
तुला	वस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
वृश्चिक	गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा।
धनु	ऊरु।
मकर	जानु एवं घुटना।
कुम्भ	जंघा, पिंडली।
मीन	टखना, पैर, पादतल एवं पैर की उंगलियाँ।

राशि और रोग

राशियाँ	रोग
मेष	नेत्ररोग, मुखरोग, मेदरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव, उन्माद एवं अनिन्द्रा।
वृष	गले एवं श्वासनली के रोग, घटसर्प तथा आँख, नाक एवं गले के रोग।
मिथुन	रक्तविकार, श्वास, फुफ्फुसरोग एवं मज्जारोग।
कर्क	हृदयरोग एवं रक्तविकार।
सिंह	उदरविकार, मेदवृद्धि एवं वायुविकार।
कन्या	जिगर, तिल्ली, अमाशय के विकार, अपचन, मन्दाग्नि एवं कमर में दर्द।
तुला	मूत्राशय के रोग, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ एवं बहुमूत्र।

वृश्चिक	गुप्तरोग, अर्श, भगंदर, उपदंश, शूक एवं संसर्ग-जन्य रोग।
धनु	यकृत दोष, ऋतु विकार, अस्थिभंग, मज्जारोग एवं रक्तदोष।
मकर	वातरोग, शीतरोग, चर्मरोग एवं रक्तचाप।
कुम्भ	जलोदर, मानसिक रोग, ऐंठन एवं गर्मी।
मीन	असहिष्णुता (एलर्जी), चर्मरोग रक्तविकार, आमवात, आंव, ग्रन्थि, गठिया।

इस प्रकार प्रत्येक राशि विभिन्न रोगों के लिये कारक बनाने में घटक का काम करती हैं। ज्योतिष में किसी एक घटक के प्रभाव से निष्कर्ष नहीं निकाला जाता। यह सभी घटकों के मिश्रित योग की गणना पर आधारित होता है।

भाव और रोग

राशियों की भाँति भावों में भी रोगोत्पादक कारक विद्यमान होते हैं। इसके लिये निम्नलिखित तालिका पर दृष्टिपात करें—

भाव	भाव के नाम	रोग
प्रथमभाव	तनु	तन से सम्बन्धित, स्वास्थ्यहीनता जो शारीरिक हो, शारीरिक सुख-दुःख, प्रकटप्रकृति, रंग, कद, गठन आदि।
षष्ठम् भाव	रिपु	आक्रमित रोग, शत्रु द्वारा चोट, व्रण, दुर्घटना से चोट आदि जो षड्यंत्र के अन्तर्गत हुआ हो।
अष्टम् भाव	मृत्यु	यह आयु का भाव है। ज्योतिषी पहले इसी की एवं तीसरे भाव की स्थिति से आयु की गणना करते हैं; फिर अन्य बातें देखते हैं। इसमें मृत्युदायक रोगों का योग होता है। आयु है, तो रोग भी दूर हो जायेगा, आयु नहीं है; तो शेष सभी गणनायें निरर्थक होती हैं। इसीलिये ज्योतिष में सैद्धान्तिक रूप से पहले इसी की गणना का निर्देश दिया गया है।

द्वादश भाव	व्यय	शक्तिहीनता, निरन्तर शारीरिक या जीवन शक्ति का क्षरण करने वाले रोग, रक्तक्षय, दृष्टिक्षय, शक्तिक्षय, चोरी, दुर्घटना आदि।

विशेष—कुछ विद्वान 'आयु' की गणना आठवें एवं तीसरे भाव से करते हैं। कुछ द्वितीय एवं सप्तम् भाव से भी आयु की गणना करते हैं। सप्तम् भाव से 'जाया' अर्थात् जन्मगत रोगाणुओं से होता है। द्वितीय भाव सहज व्यवस्था एवं गुणों का सूचक है।

भाव से प्रभावित अंग

भाव	शरीर के अंग
प्रथम भाव	मस्तिष्क, ललाट एवं सिर।
द्वितीय भाव	आँख, कान, नाक, गाल, होठ, दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
तृतीय भाव	कण्ठ, ग्रीवा, भुजा, कोहनी, हथेली, वक्षस्थल एवं स्तन।
चतुर्थ भाव	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
पंचम् भाव	पेट, आँतें, जिगर तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
षष्ठम् भाव	कमर, कूल्हा, नितम्ब।
सप्तम् भाव	वस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
अष्टम् भाव	गर्भाशय, जननेन्द्रिय, गुदा एवं अण्डकोष।
नवम् भाव	ऊरु
दशम् भाव	जानु एवं घुटना।
एकादश भाव	जंघा एवं पिंडली।
द्वादश भाव	टखना, पैर, तलवा (पादतल) एवं पैर की उँगलियाँ।

भाव के अनुसार रोग-विचार एवं दुर्घटना विचार

१. प्रथम भाव—सिर-दर्द, मस्तिष्क शून्यता, मानसिक दुर्बलता, इससे उत्पन्न चक्कर, मानसिक व्याधियाँ, नजला एवं मानसिक दुर्बलता से उत्पन्न दुर्घटनायें।

२. द्वितीय भाव—नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, नासिकारोग, दन्तरोग, गले के रोग, मृत्युकारक रोग, कष्टकारी दुर्घटनायें।

३. तृतीय भाव—श्वासरोग, दम्मा, दमफूलना, क्षय रोग, फेफड़े के रोग, खाँसी, कण्ठ एवं गले की खराबी, हस्त दुर्घटनायें एवं हस्त विकलांगता।

४. चतुर्थ भाव—वक्षरोग, हृदय की अस्थियों, मानसिक विकार एवं उक्त स्थानों पर ही आघातजन्य दुर्घटनायें।

५. पंचम् भाव—मंदाग्नि, अरुचि, जिगररोग, पित्तरोग, तिल्ली-गुर्दे के रोग, उदररोग एवं पेट पर लगी चोटें।

६. षष्ठम् भाव—कमररोग, पेडुरोग, आँतरोग, एपेन्डोसाइटिक, हर्निया, पथरी, अस्मरी, कमर पर लगने वाली चोटें।

७. सप्तम् भाव—प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, उपदंश, पथरी, गर्भाशय, वस्ति में होने वाले रोग आदि।

८. अष्ठम् भाव—गुप्तरोग, वीर्यरोग, भगन्दर, उपदंश, कामजन्यरोग, वृषणरोग, डिम्बाशयरोग, मूत्रकृच्छ, योनिरोग आदि। काम दुर्बलता या प्रबलता से उत्पन्न अक्रोश या क्षुब्धता एवं उनसे उत्पन्न दुर्घटनायें।

९. नवम् भाव—मासिक धर्म रोग, डिम्बाशयरोग, यकृतरोग, रक्तविकार, वायुविकार, कूल्हे का दर्द, मज्जारोग आदि।

१०. दशम् भाव—कम्पन, गठिया, चर्मरोग, अस्थिदर्द, जोड़ों का दर्द, वायुजनित रोग आदि। सम्मान में ठेस लगने से उत्पन्न क्षोभ और उक्त के कारण हुई दुर्घटनायें।

११. एकादश भाव—पैरों के रोग, पैरों में लगी दुर्घटनावश चोटें, पैरों का कटना, पैरों की हड्डी का टूटना, पैरों की हड्डी या जोड़ों में दर्द, शीत रोग, शीत-प्रकोप से उत्पन्न दुर्घटनायें, रक्तविकार।

१२. द्वादश भाव—शारीरिक दुर्बलता, असहिष्णुता से उत्पन्न दुर्घटनायें, नेत्रविकार, पोलियो, एलर्जी, रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी आदि।

द्रेषकाण पद्धति

किसी की जन्मकुंडली को देखकर उसके जीवनकाल के रोगों, दुर्घटनाओं एवं मृत्यु की प्रकृति एवं समय को ज्ञात करने के लिये ज्योतिष में ग्रह, राशि, भाव एवं नक्षत्र के सम्मिलित प्रभाव को गणना द्वारा निकाला जाता है।

इस सम्बन्ध में भारतीय ज्योतिष के कुछ प्राचीन ग्रन्थों में एक और पद्धति प्राप्त होती है, जिससे यह ज्ञात किया जाता है कि शरीर के किस अंग पर रोग का प्रकोप होगा। वैसे इस पद्धति के बिना भी परिणाम सिद्ध ही निकलते हैं, फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ जान लेना समीचीन होगा।

इस पद्धति में शरीर को तीन भागों में—सिर, कण्ठ एवं वस्तिक्षेत्र में बाँटा गया है। कहा गया है कि प्रथम द्रेषकाण लग्न में हो, तो सम्पूर्ण सिर के अंगों

का, द्वितीय द्रेषकाण हो, तो कण्ठ से वस्ति के ऊपर तक एवं तृतीय द्रेषकाण हो, तो वस्ति एवं वस्ति के नीचे तक के अंगरोगों का विचार किया जाता है।

इन तीनों की तालिकायें निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की गयी हैं—
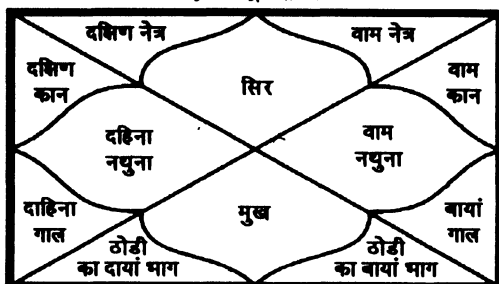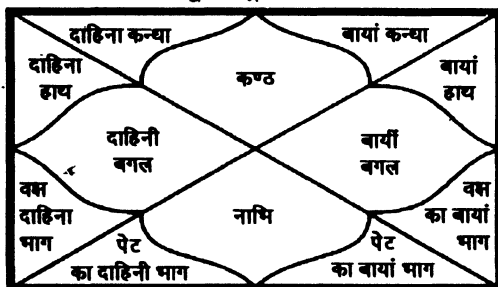
तृतीय द्रेषकाण
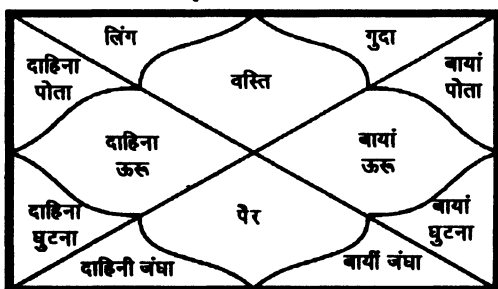
टिप्पणी—उपर्युक्त कुंडलियों में जिस भाव में जिन अंगों का नाम लिखा है, उस भाव के गुणों से उक्त का समावेश करके मिश्रित फल ज्ञात किया जाता है। ❑

अध्याय-४

रोग एवं दुर्घटनाओं से सम्बन्धित ज्योतिषीय गणनाओं के सिद्धान्त

रोगों एवं दुर्घटनाओं के ज्ञान हेतु ज्योतिष में कुंडली को आधार बनाया जाता है। हम पूर्व ही कह आये हैं कि कुंडली के भावों की अपनी अलग-अलग प्रभावोत्पादकता है। रोग की गणना में सर्वप्रथम इन्हीं भावों का ध्यान रखा जाता है।

यूँ तो रोग एवं दुर्घटनायें किसी भी भाव से सम्बन्धित हो सकती हैं, यदि अन्य योग रोगकारक हैं तो, परन्तु कुछ निश्चित भावों को इसमें विशिष्ट महत्त्व दिया जाता है। ये भाव छठा, आठवाँ एवं बारहवाँ है। इन भावों से सर्वप्रथम रोग गणना की जाती है, जिनके सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

१. षष्ठम् भाव—इस भाव का नाम 'रिपु' है। रिपु शत्रु को कहते हैं। रोग भी शत्रु ही होते हैं, जो आक्रमण करके शरीर को कष्ट पहुँचाते हैं। इसी प्रकार दुर्घटनाओं के कारण शत्रु भी होते हैं। अतः सर्वप्रथम रोग एवं दुर्घटनाओं का विचार षष्ठम् भाव से करना चाहिये।

(i) षष्ठम् भाव में जो ग्रह स्थित होगा, वह अपने गुणों के अनुरूप या कारक भाव के अनुरूप रोग या दुर्घटना उत्पन्न करता है।

(ii) षष्ठम् भाव का कारक ग्रह किसी अन्य भाव में स्थित ग्रह को प्रभावित कर रहा हो, तो उस प्रभावित भाव के अनुरूप अंगों या रिश्तों को रोग या दुर्घटना से प्रभावित करेगा।

(iii) जब षष्ठम् भाव का कारक ग्रह किसी भाव में स्थित ग्रह पर अपनी दृष्टि डाल रहा हो, तो दृष्टि क्षमता के अनुसार उस भाव के धर्म को भी प्रभावित करेगा।

२. अष्ठम भाव—अष्ठम् भाव 'आयु' का भाव है। रोग से आयु भी प्रभावित होती है। इससे आयु पर आक्रमण होता है, इसलिये रोगों एवं गम्भीर दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में अष्ठम् भाव की भी गणना की जाती है—

(i) अष्ठम् भाव में स्थित ग्रह यदि नीच या पापग्रह हो और उसका प्रभाव अष्ठम् भाव को प्रभावित कर रहा हो, तो वह अनिष्टकारी परिणाम देगा।

(ii) इस भाव के कारक ग्रह जिस भाव में होंगे, उसको प्रभावित करेंगे।

(iii) इस भाव के कारक ग्रहों की दृष्टि जिन भावों पर होगी, उन भावों के अंगों या रिश्तों को भी ये दोषपूर्ण बनायेंगे।

३. द्वादश भाव—इस भाव का धर्म व्यय कराना है। यह शारीरिक शक्ति का भी व्यय कराता है। इसलिये रोग एवं दुर्घटना में इसकी भी गणना की जाती है।

(i) इस भाव में जो ग्रह स्थित होगा, वह अपने गुण के अनुरूप अंगों या शारीरिक अवयवों को क्षतिग्रस्त करेगा।

(ii) इस भाव का कारक ग्रह जहाँ स्थित होगा, उस भाव को प्रभावित करेगा।

(iii) इस भाव के कारक ग्रह की दृष्टि जिस भाव पर पड़ेगी, उस भाव के गुणों एवं अंगों आदि को दृष्टि के अनुरूप प्रभावित करेगी।

विशेष—(i) यहाँ यह स्मरण रखें कि नीच, क्षीण या दुष्टग्रह स्थिति ही रोगों को उत्पन्न करती है। ऐसा नहीं है कि षष्ठम् भाव में उच्चस्थ सूर्य स्थापित हो, तो भी वह हानि करेगा।

(ii) 'लघुपाराशरी' में कहा गया है कि सूर्य, चन्द्र एवं लग्नेश यदि अष्ठम् भाव के स्वामी हों, तो भी अशुभ नहीं करते। इसी प्रकार व्ययेश (बारहवें भाव का स्वामी) त्रिकोणभाव का स्वामी होने पर शुभफल देता है।

(iii) यदि किसी भाव का स्वामी षष्ठम्भाव, अष्ठम्भाव एवं द्वादश भाव में स्थित है, तो उस भाव के फल को प्रभावित करता है।

४. लग्नेश—लग्नेश उस ग्रह को कहते हैं, जो लग्नभाव का स्वामी या कारक होता है।

(i) यदि लग्न में पापग्रह या नीचग्रह है, तो वह सम्पूर्णशरीर को प्रभावित करेगा।

(ii) यदि लग्नेश किसी भाव में स्थित है और वह पापित या नीच है, तो वह उस भाव के गुणों, अंगों, आदि को प्रभावित करेगा।

(iii) इसी प्रकार लग्नेश षष्ठम् भाव में स्थित हो, तो वह सम्पूर्ण शरीर को रोग ग्रस्त करेगा।

(iv) यदि लग्न में कोई ग्रह स्थित है, तो वह अपनी स्थिति के अनुसार शरीर को प्रभावित करेगा अर्थात् उच्च होगा तो शुभफल देगा, नीच या पापित होगा, तो अशुभ फल देगा।

ग्रहों का अंगों पर प्रभाव इस प्रकार पड़ता है—

लग्न का ग्रह	प्रभाव
सूर्य	अस्थि
चन्द्र	रक्त
मंगल	मांस
बुध	त्वचा
गुरु	वसा
शुक्र	वीर्य
शनि	स्नायु

[illegible]

है। इसे हम पूर्व ही बता आये है। किन्तु यदि कोई ग्रह लग्नेश में स्थित है, तो उससे प्रभावित अंगों में से जिसका विस्तार शरीर में अधिक होगा, वह उस पर सर्वाधिक प्रभाव डालेगा। उपर्युक्त तालिका इसी नियम के अन्तर्गत बनायी गयी है। लग्नेश ग्रहों के दुर्बल, हीन, नीच या पापित होने पर उपर्युक्त तालिका के अनुसार अंगों में रोग उत्पन्न होते हैं जैसे—

१. **अस्थि रोग या दुर्घटनायें**—हड्डी का टूटना, हड्डी का ज्वर, अस्थियों की दुर्बलता, हड्डी में दर्द, मज्जा में रोग।

२. **रक्तरोग एवं दुर्घटनायें**—रक्तदोष, रक्तस्राव, ऐसी दुर्घटनायें जिनमें रक्त अधिक निकले, रक्तचाप स्कार्बुद, ब्लड कैंसर, मानसिक उत्तेजना, मादक द्रव्यों को लेने की प्रवृत्ति, उत्तेजनात्मक मादकता, हृदयरोग आदि। मादकता का सम्बन्ध भी रक्त के दाब पर निर्भर करता है।

३. **मांस से सम्बन्धित रोग एवं दुर्घटनायें**—मांस में कहीं भी घाव, अर्बुद, गाँठ, दर्द, ऐंठन, सूनापन आदि का होना, मांसल स्थान पर लगी चोट आदि।

४. **त्वचा**—तमाम प्रकार के चर्म रोग, जिनमें दाद, खाज, खुजली, एलर्जी, चकत्ते, कुष्ठ आदि हैं और त्वचा के जलने या छिलजाने की दुर्घटना भी।

५. **मेदा**—कमर, वस्ति, मेदा, उदर, आँत आदि के रोग एवं पेट में चोट, चाकू आदि के बाद की सम्भावनायें।

६. **वीर्य**—सभी प्रकार की धातु (वीर्य) दुर्बलता, यौनरोग कामशक्ति का अभाव, कामेक्षा का अभाव, यौन अंगों की दुर्बलता से उत्पन्न मानसिक चोट, निराशा, निराशा में हुई दुर्घटना।

७. शनि—स्नायु दर्द, स्नायुविकार, अन्य सभी प्रकार के स्नायविक विकार, हाथ-पैर आदि। स्नायुओं को प्रभावित करने वाली दुर्घटनायें।

विशेष—ज्योतिष में केवल ग्रह और भाव के योग से ही निष्कर्ष को सिद्ध नहीं माना जाता। इसमें राशियों एवं नक्षत्रों के बाद पंचांग की भी सहायता ली जाती है, जिससे वातावरण एवं जातक के 'योग' का तुलनात्मक निष्कर्ष निकाला जा सके। राशियों एवं नक्षत्रों की गति विस्मयकारी गणना सूत्र है। यह वर्ष में भी है, मास में भी और दिन में भी।

५. यदि कोई ग्रह शत्रु की राशि वाले भाव में बैठा हुआ हो, तो वह बुरा प्रभाव डालेगा। शत्रुता ग्रह से होती है; किन्तु सभी राशियों के स्वामी ग्रह हैं, इसलिये राशियों की भी शत्रुता या मित्रता होती है। कुंडली में लग्न की राशि से गणना बायीं ओर से की जाती है और पहले मेष एवं अन्त में मीन (देखें तालिका) मानकर सभी राशियों के अंक दिये होते हैं। अंकों से पता चलता है कि किसी विशेष भाव में बैठा ग्रह किस प्रकार की राशि में है (देखिये कुंडली)।
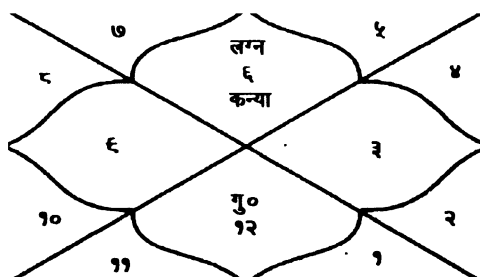
इस कुंडली में गुरु आठवें भाव में है। वहाँ बारहवीं राशि मीन है। गुरु स्वराशि पर है अर्थात् यह अपनी ही राशि पर है। इसका प्रभाव शुभ होता है। आठवें भाव का कारक शनि है। गुरु शनि सम है। अर्थात् शनि न गुरु का दोस्त है, न दुश्मन। अतः यहाँ गुरु अपने स्वभाव से ही बली रहेगा। ऐसी स्थिति में नहीं, पर जब गुरु शुक्र की राशि में हो, जैसे शुक्र या बुध की राशि पर, तो यह शोथ, मांसल स्थानों के दर्द, पैरों की पीड़ा आदि को उत्पन्न करेगा और यह खतरनाक भी हो सकता है। इसी प्रकार का फल नीच राशि में ग्रह के स्थित होने पर भी होता है; पर रोग की प्रवृत्तियाँ बदल जाती हैं।

नीच राशि, शत्रु राशि में स्थित या निर्बलग्रह

लग्नेश होकर नीचराशिस्थ ग्रह	रोग
सूर्य	कर्णरोग
चन्द्र	जलोदर
मंगल (मेष लग्न का स्वामी)	हृदयरोग एवं फेफड़ों में विकार
मंगल (वृश्चिक लग्न का स्वामी)	नितम्ब एवं ऊरु प्रदेश में व्रण
बुध (मिथुन लग्न का स्वामी)	घुटनों में दर्द
बुध (कन्या लग्न का स्वामी)	मूत्ररोग
गुरु (धनु लग्न का स्वामी)	मुखरोग
गुरु (मीन लग्न का स्वामी)	कर्णरोग, फाइलेरिया
शुक्र (वृष लग्न का स्वामी)	उदर विकार
शुक्र (तुला लग्न का स्वामी)	नेत्ररोग
शनि (मकर लग्न का स्वामी)	हृदय शूल
शनि (कुम्भ लग्न का स्वामी)	साँस की नली में विकार, गलरोग

नीच राशिगत, अर्स्तगत या निर्बलग्रह

सूर्य	पित्तज्वर, दाह, नेत्र, पीड़ा एवं हृदय दौर्बल्य
चन्द्र	कफजरोग, शीतज्वर, उन्माद एवं जलोदर
मंगल	जलना, गिरना, गुप्तरोग, शिरशूल
बुध	त्रिदोष, चर्मरोग, कर्णरोग
गुरु	सूजन (शीफ) नितम्ब एवं पैर में पीड़ा
शुक्र	वीर्यविकार, नेत्ररोग, मुखरोग एवं मूत्ररोग
शनि	दर्द, वायुविकार, स्नायुविकार

६. यदि कोई ग्रह परमउच्च या परमनीच स्थिति के बीच छः राशियों में कहीं स्थित हो, वह अवरोही ग्रह कहलाता है। यह अपने पूर्ण अवरोहणकाल में अपनी प्रकृति के अनुरूप रोग उत्पन्न करता है। ग्रहों की रोग प्रकृति या दुर्घटनाओं के लिये (इससे सम्बन्धित अध्याय देखें)।

७. राशियों को अंशों में विभाजित किया गया है, यह हम पहले ही बता आये हैं। अंशों को भी विभाजित किया गया है। पहले इसके दो भाग किये गये हैं, जिनमें से प्रत्येक को षष्ठयंश कहते हैं। इसके बाद इसे ६० कलाओं में बाँटा

गया हैं। इनमें से प्रत्येक षष्ठयंश या अर्द्धअंश का स्वामी एक-एक भाव बताया गया है। ये भाव उनके गुण-प्रभाव के प्रतीक हैं।

षष्ठ्यंशों के देवता

प्रत्येक राशि में ३० अंश होते है। इस तरह प्रत्येक राशि में ६० षष्ठ्यंश होते हैं।

इनके स्वामी इस प्रकार हैं—

षष्ठ्यंश	देवता	षष्ठ्यंश	देवता
१हले	घोर	३१वें	मृत्युकर
२सरे	राक्षस	३२वें	काल
३सरे	देव	३३वें	दावाग्नि
४थे	कुबेर	३४वें	घोरा
५वें	यक्ष	३५वें	अधम
६ठे	किन्नर	३६वें	कण्टक
७वें	भ्रष्ट	३७वें	सुधा
८वें	कुलग्न	३८वें	अमृत
९वें	गरल	३९वें	पूर्णचन्द्र
१०वें	अग्नि	४०वें	विषदग्ध
११वें	माया	४१वें	कुलनाश
१२वें	यम	४२वें	मुख्य
१३वें	वरुण	४३वें	वंशक्षय
१४वें	इन्द्र	४४वें	उत्पात्क
१५वें	कला	४५वें	काल
१६वें	सर्प	४६वें	सौम्य
१७वें	अमृत	४७वें	मृदुष्ट्र
१८वें	चन्द्र	४८वें	सुशीतल
१९वें	मृदु	४९वें	दंष्टाकराल
२०वें	कोमल	५०वें	इन्द्रमुख
२१वें	पद्म	५१वें	प्रवीण
२२वें	विष्णु	५२वें	कालाग्नि
२३वें	गुरु	५३वें	दण्डायुध

२४वें	शिव	५४वें	निर्मल
२५वें	देव	५५वें	शुभाकर
२६वें	आर्द्र	५६वें	अशोधन
२७वें	कलि	५७वें	शीतल
२८वें	क्षितीश	५८वें	सुधा समुद्र
२९वें	कमलाकर	५९वें	भ्रमण
३०वें	मन्दात्मज	६०वें	इन्द्ररेखा

इस तालिका को देखें किसी राशि के जिस अंश के अद्धांश में जो 'भाव प्रतीक' दिया गया है, उसका फल उस कालखण्ड में वैसा ही होगा। अशुभ भाव रोग उत्पन्न करेंगे और उस रोग की प्रकृति उस भाव नाम के अनुरूप ही होगी। उसी भाव से सम्बन्धित दुर्घटनाओं की भी सम्भावना बढ़ जायेगी।

८. कोई ग्रह कहीं स्थित है, पर उसके कारक योग का भाव किसी पापग्रह से दृष्ट है, तो उसकी दृष्टि का प्रभाव उस ग्रह पर पड़ेगा और उससे सम्बन्धित रोग उत्पन्न होंगे या दुर्घटनायें होंगी।

दृष्टि प्रभाव के सिद्धान्त

जिस भाव में भी 'सूर्य' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय नें समझ लेना चाहिए।

'सूर्य' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
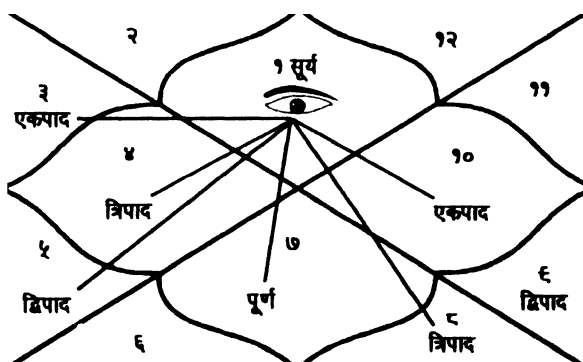
'चन्द्रमा' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
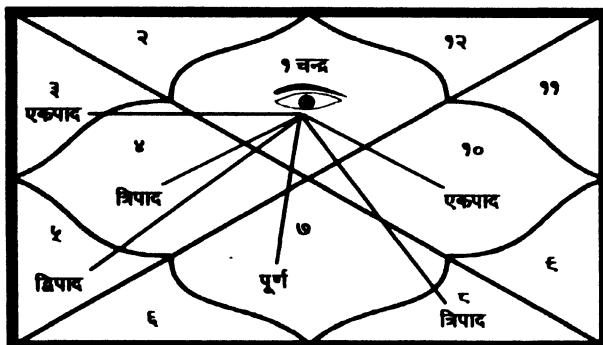
जिस भाव में भी 'चन्द्रमा' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।

'मंगल' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
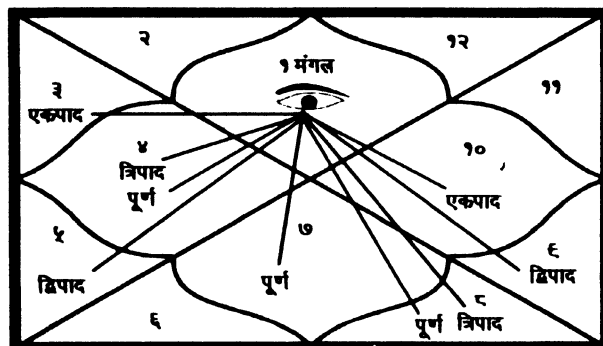
जिस भाव में भी मंगल बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।

'बुध' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
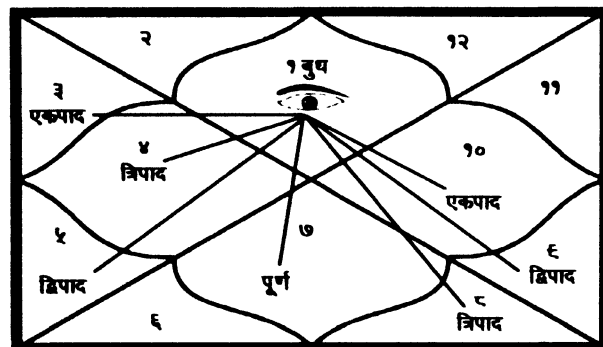
जिस भाव में भी 'बुध' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।

'गुरु' की विभिन्न भावों पर दृष्टि

जिस भाव में भी 'गुरु' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर उसका खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।
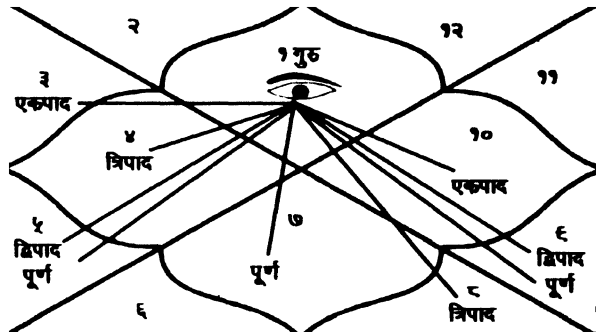
'शुक्र' की विभिन्न भावों पर दृष्टि

जिस भाव में भी 'शुक्र' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।
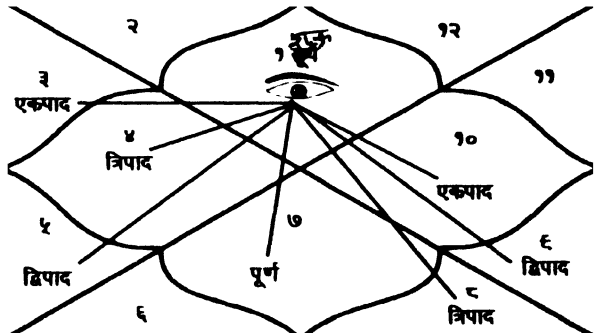
'शनि' की विभिन्न भावों पर दृष्टि

जिस भाव में भी 'शनि' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।
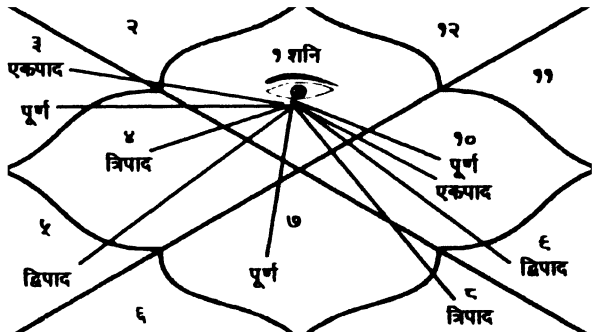
'राहु' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
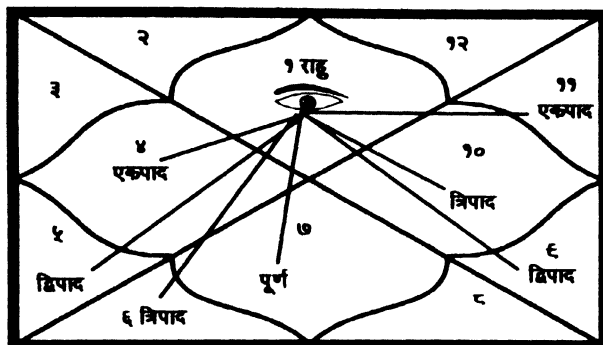
जिस भाव में भी 'राहु' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पूर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।

'केतु' की विभिन्न भावों पर दृष्टि
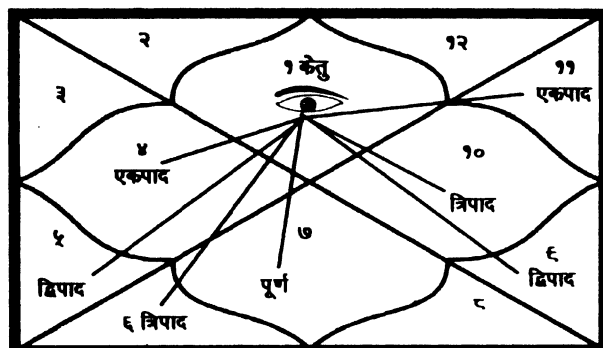
जिस भाव में भी 'केतु' बैठा हो, उस भाव से उपर्युक्त आधार पर, उसकी खण्ड तथा पर्णदृष्टि के विषय में समझ लेना चाहिए।

विशेष टिप्पणी—कुछ विद्वानों के मतानुसार राहु तथा केतु की खण्ड दृष्टियाँ एकपाद, द्विपाद तथा त्रिपाद होती ही नहीं हैं। प्राचीन भारतीय ज्योतिष में राहु-केतु की न तो ग्रहों के अन्तर्गत गणना की गई है और न इनके दृष्टि-सम्बन्ध का ही कोई उल्लेख किया गया है।

मृत्यु विचार

अल्पायु में हुई मृत्यु या जातक के जीवन की गणना का महत्त्व ज्योतिष में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। गणना चाहे रोग की करनी हो या भोग की, दोनों ही स्थिति में जातक के जीवन का विचार सर्वप्रथम किया जाता है। जीवन है, तभी रोग या भोग है; यदि जीवन ही नहीं है, तो शेष गणनायें निरर्थक हैं।

इसके सिद्धान्त की तालिका इस प्रकार है—

मृत्यु-योग के घटक

घटक	विश्लेषण
लग्न या लग्नेश निर्बल हों	इससे जीवन पर खतरा उत्पन्न हो जाता है। यदि अन्य योग भी नकारात्मक हों, तो अल्पायु में मृत्यु हो जाती है।
अष्टम भाव या इस भाव का कारक ग्रह निर्बल हो	यह भी मृत्युदायक होता है, यदि तीसरे, छठे, द्वादश आदि या अन्य भावों से इसे बल न मिल रहा हो।
चन्द्रमा क्षीण या पापित हो	इससे बाल्यावस्था में ही जीवन का खतरा उत्पन्न हो जाता है। यदि अन्य योग सकारात्मक नहीं हों, तो मृत्यु हो जाती है।
पापग्रहों का बढ़ा हुआ प्रभाव	यदि नीच या पापग्रह सबल हों और शुभग्रह निर्बल हों, तो भी जीवन क्षीण हो जाता है। मृत्यु अल्पायु में तो होती ही है, शरीर एवं मन भी अस्वस्थ एवं दुर्बल बना रहता है।

पापग्रह का सिद्धान्त एवं त्रिक स्थान

९ ग्रहों में सोम, चन्द्रमा, बृहस्पति एवं शुक्र को शुभग्रह, बुध को शून्य एवं सूर्य, मंगल, शनि, राहु एवं केतु को अशुभ या पापग्रह माना गया है। कुछ विशिष्ट योग में केतु को भी शुद्ध माना जाता है।

१. पापग्रह जिस भाव में रहते हैं, उसके प्रभाव को नष्ट या क्षीण करके रोग-ग्रस्त बना देते हैं या दुर्घटना का शिकार बना देते हैं।
२. कोई भाव दो पापग्रहों के बीच हो या कोई राशि दो पापग्रहों के बीच हो, तो उस भाव या राशि के अंगों में रोग उत्पन्न करते हैं।
३. यदि बारहवें स्थान का पापग्रह मार्गी एवं दूसरे स्थान का पापग्रह वक्री (इन गतियों का विवरण आगे देखिये) हों, तो यह सम्पूर्ण रूप से भावों को नष्ट कर देती है।
४. षष्ठम्, अष्ठम् एवं द्वादश भाव को त्रिक् स्थान कहते हैं। यह क्रमशः रोग, मृत्यु,

हानि या स्वास्थ्य, जीवन और लाभ की सूचना देने वाले स्थान हैं। यदि किसी भाव का स्वामी इन स्थानों में हो, तो उस भाव के फल को नष्ट कर देता है।

५. इन तीनों भावों अर्थात् त्रिक स्थान के स्वामी ग्रह, जिन भावों में होंगे, वहाँ के भाव और राशि दोनों के फल को नष्ट कर देंगे। इस प्रकार ही इन स्थानों पर स्थित ग्रहों की दृष्टि का भी प्रभाव पड़ता है।

अनिष्ट स्थान का सिद्धान्त

शुभग्रहों के लिये तृतीय, षष्ठम्, अष्ठम् एवं द्वादश स्थान अनिष्टकारक माने जाते हैं। इसी प्रकार पापग्रहों के लिये तृतीय, षष्ठम् एवं एकादश स्थान अनिष्टकारी माने जाते हैं। इन भावों में उपर्युक्त नियमों के अनुसार यदि कोई ग्रह बैठा हो, तो वह अपनी राशि या भाव के फल को नष्ट कर देता है।

निर्बलता का सिद्धान्त

यदि कोई राशि, भाव या उसके स्वामी अथवा कारक ग्रह निर्बल हों, तो उस भाव से सम्बन्धित अंगों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

भाव से भाव का सिद्धान्त

किसी भाव से चौथे, पाँचवें, आठवें, नवें एवं बारहवें भाव में पापग्रह का स्थित होना या इन पर पापग्रह की दृष्टि का पड़ना हानिकारक होता है और वह उस भाव के अंगों में रोग या दुर्घटना उत्पन्न करता है।

ग्रह सम्बन्ध का सिद्धान्त

यदि किसी भाव या राशि का सम्बन्ध रोगकारक ग्रह से हो, तो वह भाव अपने से सम्बन्धित अंगों में रोग या दुर्घटना उत्पन्न करता है।

ग्रह और रोग

इन सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक ग्रह जब इन स्थितियों से ग्रसित होता है, तो वह रोग एवं दुर्घटनायें उत्पन्न करता है।

इसका मुख्य विवरण इस प्रकार है—

सूर्य

हृदयरोग, नेत्ररोग, नाभिरोग, कुक्षिरोग, पित्तरोग, तेजज्वर, जलन, मिर्गी, चर्मरोग, अस्थिरोग, विषाक्त पद्धार्थ के सेवन से उत्पन्न रोग, अग्निदुर्घटना, नेत्र दुर्घटना, क्षय रोग, अतिसार, मानसिक उद्विग्नता, शस्त्र या ठोस पद्धार्थ से चोट, शिरोरोग आदि।

चन्द्र

रक्तचाप, रक्तविकार, मानसिक उद्वेग, पागलपन, अनिद्रा, नींद में चलने का रोग, आलस्य, कफ, अतिसार, शीतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, पीलिया, शोथ, व्याकुलता, कामला, जलीयरोग, पीनस, स्त्री से प्राप्त रोग, प्रमेह आदि। मानसिक उत्तेजना में दुर्घटना या आत्महत्या।

मंगल

उत्तेजना, रक्तहीनता, रक्तचाप, अवसाद, खुजली, अंग-भंग, घाव, रक्तविकार (अन्य), मज्जारोग, तृष्णारोग, लालच में किये गये कर्म से दुर्घटना और हानि, खुजली, गुल्म, अर्बुद आदि।

बुध

मतिभ्रम, मानसिक असंतुलन, नेत्ररोग, गले का रोग, विषाक्तरोग, चर्मरोग, पीलिया, दाद, कुष्ठ, गुप्त यौनरोग, अन्य गुप्तरोग, वायुविकार, मन्दाग्नि, विशूचिका, मूर्च्छा, हिस्टिरिया, जड़ता, त्रिदोष, नासिकारोग, चमड़े के जलने या कट जाने से हुई दुर्घटना, पेट से सम्बन्धित दुर्घटना आदि।

बृहस्पति

शोथ, आँत की कोई भी बीमारी, गुल्मरोग, मूर्च्छा, बुद्धिहीनता (इसे चेतना शून्यता समझना चाहिए) उल्टी, स्थूलता, आलस्य, जड़ता, मतिभ्रम, कफ से उत्पन्न रोग, किसी भारी स्थान से टकराने या चट्टान आदि के गिरने से दुर्घटना आदि।

शुक्र

पाण्डुरोग, कफरोग, वायु विकाररोग, नेत्ररोग, मूत्ररोग, वीर्यरोग, कामदुर्बलता, यौनरोग, कामच्छा की कमी, कामांगों की दुर्बलता या रोग, श्वास फूलना, दम्मा, स्त्री से प्राप्त रोग, श्लेषमाविकार, काम की उत्तेजना का अभाव, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, धातुक्षय, जलीय शोथ, शारीरिक दुर्बलता, कामजन्य दुर्घटनायें, जो कामावेग के बुद्धिभ्रम से किये गये कर्म द्वारा उत्पन्न हों।

शनि

मानसिक रोग, जिसमें हिंसाजनक उत्तेजना हो; सिर में तेज पीड़ा, मानसिक अवसाद से उत्पन्न तनाव, जो आत्महत्या तक करवा दे, कैंसर, पक्षाघात, जननेंद्रिय रोग, शारीरिक पीड़ा, पोलियो, वायुशूल, हिंसाभाव [illegible] उत्तेजना से दुर्घटना, निराशा में हुई दुर्घटना आदि।

राहु

(प्राचीनतम् भारतीय ज्योतिष में राहु-केतु की मान्यता नहीं है। बाद में इन्हें पृथ्वी की छाया के प्रभाव से इनको स्थान दिया गया है; क्योंकि यह छाया भी परिवर्तन के अनुसार वातावरण पर प्रभाव डालती है।)

हृदयरोग, श्वासरोग, मानसिकरोग, गुप्तरोग दूसरे के षड्यंत्र से प्राप्त रोग या दुर्घटना, स्वयं के षड्यन्त्र से प्राप्त रोग या दुर्घटना, विषप्रकोप (यह दिया भी जा सकता है, अखाद्य सेवन के रूप में भी हो सकता है और किसी जहरीले कीड़े या पशु के काटने जैसा भी हो सकता है) अरुचि, कृमि, पैरों से सम्बन्धित दुर्घटनायें, उद्-बन्ध, गण्डमाला, कुष्ठ आदि।

केतु

विषरोग, चर्मरोग, चकत्ते आदि, एलर्जी, गुप्तरोग, गुप्त षड्यंत्र से प्राप्त दुर्घटनायें, गुप्त योजनाओं के क्रियान्वन में होने वाली दुर्घटनायें, स्वास्थ्य की सर्वांग हानि, गुप्तहानि, मज्जारोग, कामदुर्बलता, चिन्ताजन्यरोग, साहस दिखाने के क्रम में हुई दुर्घटनायें आदि।

विशिष्ट तत्त्व

ज्योतिष में चाहे सम्पूर्ण भविष्यफल निकाला जा रहा हो या रोग, दुर्घटना, लाभ, हानि, स्वास्थ्य, विवाह आदि में से किसी एक पर विचार किया जा रहा हो, सम्पूर्ण कुंडली की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। केवल किसी ग्रह या भाव, राशि या भाव में से किसी एक योग के आधार पर फल नहीं निकला जाता, इसलिये निष्कर्ष निकालने में जल्दीबाजी न करके सभी स्थितियों का परीक्षण कर लेना चाहिये।

❑

अध्याय-५

रोग-विचार की प्रक्रिया

इस पुस्तक में आगे अनेक प्रकार के रोगों के ग्रहयोग दिये गये हैं; जो अपने आप में एक वृहत् संकलन हैं, किन्तु किसी शास्त्र की किसी भी शाखा का अध्ययन शुद्ध परिणामों का ज्ञान नहीं होता। यह अध्ययन तभी पूरा होता है, जब उसके परिणामों को प्राप्त करने के नियमों, तत्त्वों एवं प्रक्रिया का ज्ञान किया जाये। रोगों की संख्या एवं प्रकार असंख्य है। कुछ निश्चित परिणामों के आधार पर न तो सभी रोगों की पहचान की जा सकती है, न ही उनके योगों का ज्ञान किया जा सकता है। इसलिये यह आवश्यक है कि जो भी व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से इसका अध्ययन पूर्ण करना चाहते हैं; उन्हें ज्योतिष के मूलभूत तत्त्वों, नियमों एवं प्रक्रिया का ज्ञान करना चाहिये।

इसमें पूर्व के अध्याय में हम ज्योतिष के मूलसूत्रों का वर्णन विस्तार से कर आये हैं। यहाँ हम यह बतायेंगे कि किसी की जन्मकुंडली को किस प्रकार देखा जाना चाहिये और किस प्रकार उसके परिणामों का ज्ञान करना चाहिये।

जन्मकुंडली के संकेत-सूत्र

निम्नलिखित कुंडली को देखें और निम्नलिखित पर ध्यान दें—
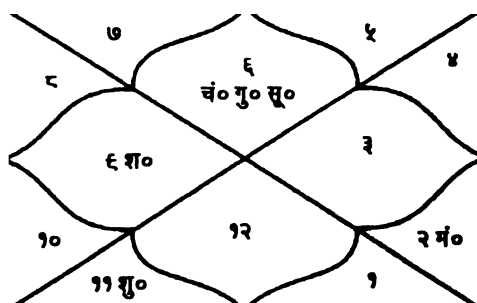
जन्मकुंडली का उदाहरण

१. इस कुंडली में १२ खाने हैं। इन खानों को 'भाव' कहा जाता है।

२. प्रत्येक भाव के निश्चित प्रभाव आदि होते हैं और कुंडली में इनका क्रम भी निश्चित होता है।
३. 'भावों' की गणना ऊपर के बीच वाले खाने से (जिसमें उदाहरण कुंडली में ६ लिखा है) की जाती है और गण्ना बायीं ओर से की जाती है।
४. 'भावों' के खानों की आकृति दो प्रकार की है। एक चार भुजाओं वाली एवं एक तीन भुजाओं वाली। तीन भुजाओं वाले भाव को 'त्रिकोण' कहते हैं।
५. भावों के मध्य जो अंक लिखे हैं, वे राशियों के सूचक हैं। ज्योतिष में सबसे पहले 'मेष' और सबसे अन्त में 'मीन' राशि के बीच सभी राशियों के क्रम हैं। ये संख्यायें उसी क्रम के अनुरूप होती हैं। उदाहरण कुंडली में '६' का अर्थ 'कन्या राशि' है।
६. प्रथम भाव को लग्न कहा जाता है। इसमें जातक के जन्म के समय राशियों एवं ग्रहों की स्थिति को लिखा जाता है। इस भाव में जो राशि होती है, उसे लग्न राशि कहते हैं।
७. 'भावों' में जो अक्षर लिखे होते हैं, वे ग्रहों के नाम के प्रारम्भिक अक्षर होते हैं।
८. ग्रहों की दृष्टि के सम्बन्ध में पूर्व ही बताया जा चुका है।
९. भाव के कारक ग्रह और उसमें स्थित राशि के स्वामी ग्रह की शत्रुता-मित्रता का प्रभाव भी ज्योतिषीय गणना का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।
१०. शुभग्रह का साथ या दृष्टि पापग्रह के प्रभाव को कम कर देती है।
११. पापग्रह का साथ या दृष्टि शुभग्रह के प्रभाव को कम कर देती है।
१२. भावों पर यदि शुभग्रह की दृष्टि हो, तो उस भाव के विषय में समुन्नति होती है।
१३. भावों पर यदि पापग्रह की दृष्टि हो, तो उस भाव के विषय की क्षति होती है।
१४. ग्रहों के प्रभाव में राशियों (उसके साथ के) का योगदान, उसके स्वामी ग्रह शत्रुता-मित्रता के आधार पर होता है।
१५. होरा, घटी, अंश आदि का विवरण जन्म के समय के साथ कुंडली में दिया होता है; जिससे प्रत्येक समय अंश का प्रभाव निकाला जा सकता है।
१६. परिणाम पर दशा एवं अन्तर्दशा आदि का भी प्रभाव होता है। इसे हम आगे बता रहे हैं।
१७. जिस भाव में जो राशि होती है, उस राशि का स्वामी ही उस भाव का स्वामी माना जाता है।
१८. छठे, आठवें और बारहवें भाव के स्वामी जहाँ भी बैठे होते हैं, उस भाव को नुकसान पहुँचाते हैं।
१९. स्वग्रही उस भाव में अच्छा फल देता है।
२०. जिस भाव में शुभग्रह रहता है, उस भाव का फल उत्तम तथा पापग्रह होने से अशुभफल देता है।

२१. ग्यारहवें भाव में सभी ग्रह अच्छा फल देते हैं।
२२. १, ४, ५, ७, १० स्थानों में शुभग्रह अच्छा फल देते हैं।
२३. ३, ६, ११वें स्थान में पापग्रह अच्छाफल देते हैं।
२४. ग्रह जिस भाव को देखता है, उस पर अपना प्रभाव डालता है।

ग्रहों को रोगकारक बनाने के हेतु

रोगों की उत्पत्ति के लिये भारतीय ज्योतिष में ग्रहों को उत्तरदायी माना गया है; किन्तु ग्रह कोई भी हो वह अपने आप में रोगकारक नहीं होता। ग्रहों को रोग कारक बनाने में विभिन्न 'कारणों' का योगदान होता है। ये निम्नलिखित हैं—

१. रोग भाव का प्रतिनिधित्व।
२. अष्ठम् एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व।
३. रोग भाव में स्थिति।
४. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना।
५. नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता।
६. अवरोहीपन।
७. कूरषष्ठ्यंश में स्थिति।
८. पापग्रहों से प्रभावित होना।
९. अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

भावों एवं राशियों को रोगकारक बनाने के हेतु

उपर्युक्त प्रकार से भाव एवं राशियाँ भी निम्नलिखित कारणों से रोगकारक बनती हैं:—

१. पापग्रहों के मध्य में स्थिति।
२. पापग्रहों से युति या पापग्रहों की दृष्टि।
३. त्रिक स्थान से सम्बन्ध।
४. स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।
५. भाव, राशि या इनके स्वामियों की निर्बलता।
६. भाव से चतुर्थ, अष्ठम् एवं द्वादश स्थान में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों का होना।
७. रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध।
८. शुभग्रहों का प्रभाव न होना।

इन सभी स्थितियों के अनुसार ज्योतिषीय गणना करके सम्बन्धित रोग का कारण ज्ञात करना चाहिये।

❑

अध्याय-६

रोग एवं दुर्घटनाओं की उत्पत्ति एवं प्रभाव का काल

इससे पूर्व जो भी बताया गया है, उससे यह तो ज्ञात होता है कि विभिन्न योगों के प्रभाव से कोई रोग उत्पन्न होगा, किन्तु यदि वह रोग जन्मगत नहीं है, तो उसकी उत्पत्ति एवं उस रोग के प्रभाव का समय क्या होगा?—यह प्रश्न एक महन्त्वपूर्ण प्रश्न है। ज्योतिष में रोग के लिये ही नहीं, सभी प्रकार के फलों के समय को ज्ञात करने के लिये दशाफलसूत्र का प्रयोग किया जाता है। इसमें माना गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवनकाल में ग्रहों की दशाओं का समय निश्चित होता है। इसी प्रकार प्रत्येक दशा के अन्दर भी ग्रहों का काल वर्गीकृत होता है, जिसे अन्तर्दशा कहते हैं। इन अन्तर्दशाओं में भी सूक्ष्म-दशाओं के रूप में ग्रहों के काल का वर्गीकरण किया गया है। किसी भी रोग या घटना के सम्भावित समय का ज्ञान इसी दशा जिसे महादशा भी कहते हैं तथा इसके सूक्ष्म वर्गीकरण के सूत्र पर ज्ञात किया जाता है इसे जानने के लिये सर्वप्रथम यह जानना जरूरी है कि दशायें क्या हैं?

दशायें

सम्पूर्ण जीवनकाल क़ो एक निश्चित समयावधि का मानकर उसमें विभिन्न ग्रहों के समय का निर्धारण करना ग्रहदशायें कहलाती हैं। इसमें प्रत्येक ग्रह की समयावधि भी निश्चित होती है। जातक जिस समय जन्म लेता है, उस समय जो नक्षत्र चल रहा होता है, उसके स्वामीग्रह की दशा उस समय चल रही होती है। अत: जातक का जन्म उसी ग्रह की दश या महादशा में माना जाता है।

इसके लिये सिद्धान्त यह है कि बालक के जन्म के समय जितना नक्षत्र बीत चुका होता है, माना यह जाता है कि बालक जन्म से पूर्व ही उस नक्षत्र के स्वामीग्रह को उसी अनुपात में दशा के अंश को भोग चुका है।

भारतीय ज्योतिष की विभिन्न शाखाओं में दशाओं के अनेक प्रकारों का

व्यवहार किया जाता है; किन्तु इनमें से तीन प्रमुख हैं—(१) विंशोत्तरी (२) अष्टोत्तरी (३) योगिनी ।

दशाफल के लिये प्रमुख रूप से विंशोत्तरी दशा को ही महत्त्व दिया जाता है; किन्तु परिणाम की शुद्धता का ख्याल करके अनेक विद्वान् ज्योतिषी तीनों प्रकार की दशाओं में गणना करके फल निकालना उचित समझते हैं।

विंशोत्तरी दशा-विचार

इसमें मनुष्य की आयु को १२० वर्ष मानकर ग्रहों की कालावधि का निर्धारण किया जाता है।

अष्टोत्तरी दशा-विचार

इसमें मनुष्य की आयु १०८ वर्ष मानकर ग्रहों की कालावधि का निर्धारण किया गया है।

योगिनी दशा-विचार

इसमें ३६ वर्ष को विभिन्न कालावधियों में वर्गीकृत किया गया है। समय समाप्त होने पर पुन: प्रारम्भ से इसकी पुनरावृत्ति होती है।

विंशोत्तरी दशा-विचार

इन ग्रहों का क्रम भी इसी प्रकार से रहता है। जन्म-नक्षत्र के अनुसार ग्रह की दशा मानी गई है अर्थात् बालक के जन्म के समय में जो नक्षत्र होता है उस नक्षत्र से सम्बन्धित ग्रह की दशा भी आरम्भ हो जाती है। अगले पृष्ठों पर ग्रह, उनकी दशा, वर्ष तथा उससे सम्बन्धित नक्षत्र दिए जा रहे हैं।

उदाहरणार्थ—यदि किसी का जन्म पुनर्वसु नक्षत्र में हो तो उसके जन्म से बृहस्पति की दशा प्रारम्भ होती है जो १६ वर्ष की मानी गई है, इसके बाद शनि की दशा प्रारम्भ होगी, जिसकी अवधि १९ वर्ष है, इसी प्रकार आगे समझनी चाहिए।

जन्म के समय बालक का नक्षत्र जितने अंश भोग चुका होता है यानी बालक के जन्म के समय जितने अंशों तक नक्षत्र बीत चुका होता है, उसी अनुपात में उस ग्रह की दशा भी बालक अपने जन्म से पूर्व भोग लेता है।

उदाहरणार्थ—भरणी नक्षत्र से आधे अंश बीतने पर बालक का जन्म हुआ तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि भरणी से सम्बन्धित ग्रह शुक्र की आधी दशा (१० वर्ष) बालक अपने जन्म से पूर्व भोग चुका है। इसी प्रकार अन्य स्थिति में भी समझना चाहिए।

जन्म-नक्षत्र द्वारा ग्रहदशा बोधक-चक्र

सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु
६ वर्ष	१० वर्ष	७ वर्ष	१८ वर्ष	१६ वर्ष
कृ.	रो.	मृ.	आर्द्रा	पुन.
उ. फा.	ह.	चि.	स्वा:	वि.
उ. षा.	श्र.	न.	श.	पू. भा.

शनि	बुध	केतु	शुक्र
१९ वर्ष	१७ वर्ष	७ वर्ष	२० वर्ष
पुष्य	आश्ले.	मं.	पू. फा.
अनु.	ज्ये.	मं.	पू. षा.
उ. भा.	रे.	मं.	भ.

अन्तर्दशा

प्रत्येक ग्रह की महादशा में ९ ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, जैसे सूर्य की महादशा में पहली अन्तर्दशा सूर्य की, दूसरी चन्द्रमा की, तीसरी भौम की, चौथी राहु की, पाँचवीं गुरु की, छठी शनि की, सातवीं बुध की, आठवीं केतु की और नवीं शुक्र की होती है। इसी प्रकार अन्य ग्रह में भी समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जिस ग्रह की महादशा में उसी ग्रह की अन्तर्दशा से प्रारम्भ होकर ९ ग्रहों की अन्तर्दशा होती है।

अन्तर्दशा निकालने का सरल नियम यह है कि दशा-दशा को परस्पर गुणा कर १० से भाग देने से लब्ध मास और शेष को ३ से गुणा करने पर दिन होते हैं।

सूर्यान्तर्दशा चक्र

सू.	चं.	भौ.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ग्रहा
०	०	०	०	०	०	०	०	१	वर्ष
३	६	४	१०	९	११	१०	४	०	मास
१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०	दिन

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

चं.	भौ.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ग्रहा
०	०	१	१	१	१	०	१	०	वर्ष
१०	७	६	४	७	५	७	८	६	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

भौमान्तर्दशा चक्र

भौ.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ग्रहा
०	१	०	१	०	०	१	०	०	वर्ष
४	०	११	१	११	४	२	४	७	मास
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०	दिन

राहचन्तर्दशा चक्र

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ग्रहा
२	२	२	२	१	३	८	१	१	वर्ष
८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	मास
१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	दिन

गुरुवान्तर्दशा चक्र

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ग्रहा
२	२	२	०	२	०	१	०	२	वर्ष
१	६	३	११	८	९	४	११	४	मास
१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	दिन

शन्यन्तर्दशा चक्र

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	रा.	बृ.	श.	ग्रहा
३	२	१	३	०	१	१	२	२	वर्ष
०	८	१	२	११	७	१	१०	६	मास
३	९	९	०	१२	०	९	६	१२	दिन

बुधान्तर्दशा चक्र

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ग्रहा
२	०	२	०	१	०	२	२	२	वर्ष
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मास
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	दिन

केत्वन्तर्दशा चक्र

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ग्रहा
०	१	०	०	०	१	०	१	०	वर्ष
४	२		७	४	११	१	१	११	मास
२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	दिन

शुक्रांतर्दशा चक्र

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ग्रहा
३	१	१	१	३	२	३	२	१	वर्ष
४	०	८	२	०	८	२	१०	२	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

उदाहरणार्थ—सूर्य की महादशा में अन्तर्दशा निकालनी है।

६ × ६ = ३६ ÷ १० = ३, शेष ६

६ × ३ = १८ दिन

अर्थात् सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा ३ मास, १८ दिन की होती है।

सुविधा के लिए पृष्ठ ९७-९८ पर प्रत्येक ग्रह के अन्तर्दशा-चक्र दिए गये हैं, जिनके द्वारा बिना गणित के अन्तर्दशा का ज्ञान किया जा सकता है।

प्रत्यन्तर्दशा-विचार

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की महादशा में नौ ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, ठीक उसी प्रकार एक अन्तर्दशा में नौ ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा चलती है। जैसे सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा ३ मास, १८ दिन है। इस ३ मास, १८ दिन में उसी क्रम और परिणामानुसार प्रत्यन्तर भी होता है।

प्रत्यन्तर्दशा निकालने का नियम यह है कि महादशा के वर्षों को अन्तर और प्रत्यन्तर्दशा के वर्षों से गुणा कर ४० का भाग देने पर जो अनादि आते हैं, वे ही प्रत्यन्तर्दशा के दिन होंगे।

उदाहरणार्थ—सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है।

सूर्य की महादशा ६ वर्ष × चन्द्रमा की महादशा १० वर्ष

६ ×१० = ६०

= ६० × १० (चन्द्रमा का प्रत्यन्तर मास) = ६००

६०० ÷ ४० = १५ दिन

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि सूर्य की महादशा में चन्द्रमा के अन्तर में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर १५ दिन का होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के प्रत्यन्तर दिन भी निकाल लेने चाहिएँ। विस्तार-भय से प्रत्यन्तर्दशा के चक्र नहीं दिए जा रहे हैं।

अष्टोत्तरी दशा-विचार

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, अष्टोत्तरी दशा का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में हैं, परन्तु कुशल ज्योतिषी विंशोत्तरी तथा अष्टोत्तरी दशा—दोनों का अध्ययन कर फलाफल निर्देश करता है।

अष्टोत्तरी दशा में मानव की पूर्ण आयु १०८ वर्ष मानकर उसका विभाजन किया है इसके अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रदशा १५ वर्ष, भौमदशा ८ वर्ष, बुधदशा १७ वर्ष, शनिदशा १० वर्ष, गुरुदशा १९ वर्ष, राहुदशा १२ वर्ष और शुक्र दशा २१ वर्ष की होती है।

विंशोत्तरी दशा की तरह ही जन्म-नक्षत्र से ही अष्टोत्तरी दशा का ज्ञान किया जाता है। नीचे दिए अष्टोत्तरी-दशा ज्ञात करने के चक्र से यह स्पष्ट हो जायेगा।

अष्टोत्तरी भुक्त भोग्य—जन्म से पूर्व बालक कितनी दशा भोग चुका है इसके लिए भयात के पलों की दशा के वर्षों से गुणा कर भभोग के पलों का भाग देने से भुक्त वर्षादि आ जाते है। सम्पूर्ण ग्रहदशा में भुक्त वर्षादि निकाल देने से भोग्य वर्षादि आ जाता है।

अष्टोत्तरी अन्तर्दशा साधन—दशा-दशा का परस्पर गुणा कर १०८ का भाग देने से लब्ध वर्ष और शेष को पुन: १२ से गुणा कर १०८ का भाग देने से लब्ध मास, शेष को पुन: ३० से गुणा कर १०८ का भाग देने से दिन आते हैं।

उदाहरणार्थ—सूर्य में चन्द्र का अन्तर निकालना है।

६ × १५ = ९० ÷ १०८ – ० (लब्धि) वर्ष

जन्म-नक्षत्र से अष्टोत्तरी दशा ज्ञात करने का चक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	श.	बृ.	रा.	शु.	ग्रहा
६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१	वर्ष
	मं.	ह.	अनु. पू.	भा.	घ. उ.	भा.	कृति	नक्षत्र
आर्द्रा	पू.फा.चि.		उ.षा.		श.	रे.	रो.	नक्षत्र
पुन.	उ.फा.	स्व.	ज्ये.	अभि.	पू.भा.	अ.	मृग.	नक्षत्र
पुष्य		वि.	मू.	श्र.		भ.		
आश्ले.								

सूर्यान्तर्दशा चक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	ग्रहा
०	०	०	०	०	१	०	१	वर्ष
४	१०	५	११	६	०	८	२	मास
०	०	१०	१०	२०	२०	०	०	दिन

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	सू.	ग्रहा
२	१	२	१	२	१	२	०	वर्ष
१	१	४	४	७	८	११	१०	मास
०	१०	१०	२०	२०	०	०	०	दिन

भौमान्तर्दशा चक्र

भौ.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	ग्रहा
०	१	०	१	०	१	०	१	वर्ष
७	३	८	४	१०	६	५	१	मास
३	३	२६	२६	२०	२०	१०	१०	दिन
२०	३०	४०	४०	०	०	०	०	घटी

बुधान्तर्दशा चक्र

बु.	श.	गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	ग्रहा
२	१	२	१	३	०	२	१	वर्ष
८	६	११	१०	३	११	४	३	मास
३	२६	२६	२०	२०	१०	१०	३	दिन
२०	४०	४०	०	०	०	०	२०	घटी

शन्यन्तर्दशा चक्र

श.	गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	भौ.	बु.	ग्रहा
०	१	१	१	०	१	०	१	वर्ष
११	८	१	११	६	४	८	६	मास
३	३	१	१०	२०	२०	२६	२६	दिन
२०	२०	०	०	०	०	४०	४०	घटी

गुरुवन्तर्दशा चक्र

गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.	श.	ग्रहा
३	२	३	१	२	१	२	१	वर्ष
४	१	८	०	७	४	११	९	मास
३	१०	१०	२०	२०	२६	२६	३	दिन
२०	०	०	०	०	४०	४०	२०	घटी

राहवन्तर्दशा चक्र

रा.	शु.	सू.	चं.	भौ.	बु.	श.	गु.	ग्रहा
१	२	०	१	१	०	१	२	वर्ष
४	४	८	८	१०	१०	१	१	मास
०	०	०	०	२०	२०	१०	१०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्रान्तर्दशा चक्र

शु.	सू.	चं.	भौ.	बु.	श.	गु.	रा.	ग्रहा
४	१	२	१	३	१	३	२	वर्ष
१	२	११	६	३	११	८	४	मास
०	०	०	२०	२०	१०	१०	०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

९० × १२ = १०८० ÷ १०० = १० मास

इस प्रकार सूर्य में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर १० मास सिद्ध हुआ।

योगिनी दशा

योगिनी दशा ३६ वर्ष की मानी गई है। ३६ वर्ष के बाद पुन: इसकी पुनरावृत्ति होती है। योगिनी दशा का अध्ययन भी पूर्ण फलादेश के लिए परमावश्यक है।

विंशोत्तरी अष्टोत्तरी दशा की तरह योगिनी दशा भी जन्म नक्षत्र से ही निकाली जाती है। नीचे योगिनी नाम, उनके स्वामी ग्रह, दशा, वर्ष और सम्बन्धित नक्षत्र दिए गये हैं, जिससे पाठकों को समझने में सुविधा रहे।

जन्म नक्षत्र से योगिनी दशाबोधक चक्र

मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रा	उल्का	सिद्धा	संकटा		योगिनी	नाम
चं	सू.	गु.	मं.	बु.	श.	शु.	रा.	के.	स्वामी	ग्रहा
१	२	३	४	५	६	७	८		दशा	वर्ष
आर्द्रा पुन.	पू.		आश्ले. मं. पू.		फा	उ.	फा.	ह	जन्म	नक्षत्र
चि. स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये	मू.	पू.	शा	उ	षा.	जन्म	
श्र.	ध	श	पू भा उ भा रे		रो	मृ			जन्म	
			अश्वि	भ	कृ					

योगिनी दशा को भी भुक्त-योग विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी दशा की तरह ही जाना जाता है।

अन्तर्दशा साधन

दशा-दशा की वर्ष-संख्या को परस्पर गुणा कर ३६ से भाग देने पर अन्तर्दशा वर्षादि आते हैं। पाठकों की सुविधार्थ नीचे योगिनी अन्तर्दशा चक्र दिए जा रहे हैं—

मंगला में अन्तर्दशा चक्र

मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	यो.
०	०	०	१	१	१	०	०	वर्ष
०	०	१	१	१	२	२	२	मास
१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०	दिन

पिंगला में अन्तर्दशा चक्र

पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	यो.
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
१	२	२	३	४	४	५	०	मास
१०	०	२०	१०	०	२०	१०	२०	दिन

धान्या में अन्तर्दशा चक्र

धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं	यो.
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
३	४	५	६	७	८	१	२	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

भ्रामरी में अन्तर्दशा चक्र

भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	यो.
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
५	६	८	९	१०	१	२	४	मास
१०	२०	०	१०	२०	१०	२०	०	दिन

भद्रिका में अन्तर्दशा चक्र

भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	यो.
०	०	०	१	०	०	०	०	वर्ष
८	१०	११	१	१	३	५	६	मास
१०	०	२०	१०	२०	१०	२	२०	दिन

उल्का में अन्तर्दशा चक्र

उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	यो.
१	१	१	०	०	०	०	०	वर्ष
०	२	४	२	४	६	८	१०	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

सिद्धा में अन्तर्दशा चक्र

सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	यो.
१	१	०	०	०	०	०	१	वर्ष
४	६	२	४	७	९	११	२	मास
१०	२०	१०	२०	०	१०	२०	०	दिन

संकटा में अन्तर्दशा चक्र

सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	यो.
१	०	०	०	०	१	१	१	वर्ष
९	२	५	८	१०	१	४	६	मास
०	२०	१०	०	२०	१०	०	२०	दिन

रोग के काल का ज्ञान

जब ग्रह किसी अनिष्टकारक भाव में, नीच राशि में, शत्रु राशि में, पापग्रहों के साथ या स्वयं पापित, निर्बल, नीच, पापदुष्ट, क्रूर षष्ठयंश आदि में स्थित होते हैं, तो रोग का योग बनता है। यह रोग कब फलित होगा, इसका ज्ञान दो प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है—

१. योग की गणना से।

२. दशाओं की गणना से।

वस्तुत: योग परिणाम भी दशाओं की गणना पर ही आधारित कुछ पूर्व निश्चित परिणाम होते हैं। अत: इसके काल का वास्तविक निर्धारण दशाओं की

सूक्ष्मगणना से ही सम्भव है। इसकी गणना का नियम यह है कि जो ग्रह अनिष्टकारक योग में है, उस ग्रह की जब-जब जीवनकाल में महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा होगी, उस ग्रह से सम्बन्धित अंग प्रभावित होंगे और योग के अनुसार रोग उत्पन्न होंगे।

प्रश्न यह उठता है कि सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा क्या है?....

वस्तुतः ये दशाओं के अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा के बाद के सूक्ष्म वर्गीकरण हैं और इन खण्डों (काल खण्डों) के निर्धारण के नियम निम्नलिखित हैं—

सूक्ष्मदशा एवं उसके साधन की रीति

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में ९ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ होती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तरदशा में ९ ग्रहों की सूक्ष्मदशा तथा प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में ९ ग्रहों की प्राणदशाएँ होती हैं।

प्रत्यन्तरदशा मान को ग्रहों की पृथक्-पृथक् दशा वर्ष संख्या से गुणाकर, गुणनफल में १२० का भाग देने से उस प्रत्यन्तर दशा में चलने वाली पृथक्-पृथक् सूक्ष्मदशाओं का मान होता है।

उदाहरणार्थ—सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य की प्रत्यन्तरदशा ५ दिन एवं २४ घटी की होती है। अतः ५ दिन एवं २४ घटी को घट्यात्मक बनाकर, इस ३२४ को सूर्य की दशावर्ष-संख्या=६ से गुणा कर, १२० का भाग देने से लब्ध्य=१६ घटी, १२ पल—यह सूर्य की प्रत्यन्तरदशा में उसकी सूक्ष्मदशा का मान हुआ। इस प्रकार सूर्य की प्रत्यन्तरदशा में सभी ग्रहों की सूक्ष्मदशा का मान निम्नलिखित होगा—

ग्रह	सूक्ष्मदशा का मान
सूर्य	१६ घटी १२ पल
चन्द्र	२७ घटी ० पल
मंगल	१८ घटी ५४ पल
राहु	४६ घटी ३६ पल
गुरु	४३ घटी १२ पल
शनि	५१ घटी १८ पल
बुध	४५ घटी ५४ पल
केतु	१८ घटी ५४ पल
शुक्र	५४ घटी ० पल

इसी तरह से प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तरदशा में सब ग्रहों की सूक्ष्मदशा का मान निकाला जा सकता है।

प्राणदशा एवं उसके साधन की रीति

जिस प्रकार प्रत्येक की प्रत्यन्तरदशा में ९ ग्रहों की सूक्ष्म दशाएँ चलती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में भी सभी ९ ग्रहों की प्राण-दशाएँ चलती हैं। जैसे—सूर्य की प्रत्यन्तरदशा में उसकी सूक्ष्मदशा १६ घटी १२ पल या लगभग ६।। घंटे की सूक्ष्मदशा के समय में भी ९ ग्रहों की प्राणदशाएँ चलती हैं। इस प्राणदशा के द्वारा प्रतिक्षण परिवर्तनशील सांसारिक घटनाचक्र की यथार्थरूप से जानकारी की जा सकती है।

प्राणदशा का साधन करने के लिए सूक्ष्मदशा के मान को ग्रहों की दशावर्ष संख्या में पृथक्-पृथक् गुणाकर गुणनफल में १२० का भाग देने से लब्धि प्राणदशा का मान होती है।

उदाहरणार्थ—सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में उसकी सूक्ष्मदशा १६ घटी १२ पल या ९७२ पल की होती है। इस सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा निकालने के लिए उक्त सूक्ष्मदशा मान= ९७२ पल को, सूर्य की दशावर्ष संख्या= ६ से गुणाकर, १२० का भाग दिया तो लब्धि ४८ पल एवं ३६ विपल सूर्य की प्राणदशा का मान हुआ। इसी प्रकार सूर्य के पूर्वोक्त सूक्ष्मदशा मान को चन्द्रमा आदि की दशावर्ष संख्या (१०, ७, १८, १६, १९, १७, ७ एवं २०) से पृथक्-पृथक् गुणाकर सर्वत्र १२० का भाग देने से समस्त ग्रहों की प्राणदशा का मान आ जाता है; जो इस प्रकार है—

सूर्य की सूक्ष्मदशा में समस्त ग्रहों की प्राणदशा का मान

ग्रह	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
घटी	०	१	०	२	२	२	२	०	२
पल	४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२
विपल	३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०

उक्त रीति से अन्य ग्रहों की सूक्ष्मदशाओं में भी समस्त ग्रहों की प्राणदशा के मान जाने जा सकते हैं।

रोग का समय

रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है—

१—योग द्वारा तथा २—दशा द्वारा। योग में बतलाये गये वर्ष में रोगोत्पत्ति के काल का निर्धारण दशाफल नियमों की अपेक्षा रखता है।

दशा का फल दो प्रकार का होता है—

(१) साधारण, तथा (२) विशिष्ट।

ग्रह साधारणतया जो फल देते हैं—वह साधारण फल कहलाता है।

ग्रहस्थान, स्थिति, बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं—वह विशिष्ट फल कहलाता है।

साधारण फल वह है जिसकी अनुभूति मात्र होती है। जबकि विशिष्ट फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है। रोगोत्पत्ति को साधारण फल न मानकर विशिष्ट फल रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीच या शत्रु राशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नीचांशगत, निर्बल, अनिष्टस्थान में स्थित तथा क्रूर षष्ठयंश आदि में स्थित ग्रह रोगकारक होता है। जीवन में जब-जब ऐसे ग्रह की दशा अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा आती है, तब-तब रोग होता है। इस प्रकार हम योग में बतलाये वर्षों के तथा उक्त ग्रहों की दशाओं के द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण कर सकते हैं।

योग द्वारा रोगोत्पत्तिकाल का ज्ञान

१. षष्ठभाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि-राहु से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।
२. षष्ठभाव में मंगल तथा अष्ठम्भाव में षष्ठेश हो तो छठे या ८वें वर्ष में ज्वर होता है।
३. षष्ठभाव में गुरु हो तथा चन्द्रमा गुरु की राशि में हो तो १९वें या २२वें वर्ष में कुष्ठरोग होता है।
४. षष्ठभाव में राहु, केन्द्र में शनि एवं अष्ठम्भाव में लग्नेश हो तो २६वें वर्ष में क्षयरोग होता है।
५. द्वादशेश षष्ठ में तथा षष्ठेश द्वादश में हो तो २९ या ३०वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।
६. शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो ४५वें वर्ष में रक्तकुष्ठ होता है।
७. लग्नेश लग्न में तथा शनि षष्ठभाव में हो तो ४९वें वर्ष में वातरोग होता है।
८. अष्ठमेश षष्ठभाव में, द्वादशेश लग्न में तथा चन्द्रमा षष्ठेश के साथ हो तो ८वें वर्ष में पशु से चोट लगती है।

९. षष्ठ या अष्ठम्भाव में राहु हो तो जातक को १ या २ वर्ष की आयु में अग्नि-भय होता है।
१०. षष्ठ या अष्ठम् में सूर्य हो तथा उसमें १२वें चन्द्रमा हो तो ५वें या ९वें वर्ष में जल से भय होता है।
११. अष्ठम्भाव में शनि तथा सप्तम्भाव में मंगल हो तो १०वें या ३०वें वर्ष में विस्फोट आदि से चोट लगती है।
१२. अष्टमेश अपने नवांश में राहु के साथ अष्ठम्भाव से त्रिकोण में हो तो १८वें या २२वें वर्ष में गठिया या प्रमेह होता है।
१३. लग्नेश एवं षष्ठेश दोनों षष्ठस्थान में हों तो १०वें एवं १९वें वर्ष में कुत्ते से भय होता है।

दशा के द्वारा रोगोत्पत्तिकाल का ज्ञान

किस-किस ग्रह की दशा में कौन-कौन सा रोग हो सकता है? यह जानकारी ग्रहों के दशाफल के आधार पर कर लेनी चाहिए—

सूर्य की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिर-दर्द होता है किन्तु वह किसी कारण से रोगकारक हो तो इसकी दशा में होने वाले रोगों का विवरण इस प्रकार है—

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही सूर्य की दशा में	अग्निपीड़ा, जलना
परमनीचस्थ सूर्य की दशा में	विपत्ति एवं मृत्यु
अतिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में	शारीरिक कष्ट

रोगोत्पत्ति का सम्भावित समय

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
शुत्रुराशिगत सूर्य की दशा में	अग्नि एवं चोर से भय
समराशिगत सूर्य की दशा में	लड़ाई में चोट
नीचग्रह से युक्त सूर्य की दशा में	मनोविकार
पापदृष्ट सूय की दशा में	कृशता या कमजोरी
नीचांशस्थ सूर्य की दशा में	ज्वर एवं प्रमेह

षष्ठस्थ सूर्य की दशा में	गुल्म, अतिसार, मूत्रकृच्छ एवं प्रमेह
अष्ठम्भावस्थ सूर्य की दशा में	अग्निभय, ज्वर एवं अतिसार
द्वादशभावस्थ सूर्य की दशा में	विषभय
द्वितीयभावस्थ सूर्य की दशा में	वाग्विकार
चतुर्थभावस्थ सूर्य की दशा में	विष या अग्नि से भय
स्थानबलहीन सूर्य की दशा में	सन्ताप
क्रूरषष्ठयंशगत-सूर्य की दशा में	कोपाधिक्य, सिरदर्द
सर्पद्रिष्काणयुक्त सूर्य की दशा में	विषभय

चन्द्रमा की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

चन्द्रमा की दशा में सामान्यतया सर्दी, जुकाम, खाँसी, मूत्राधिक्य, मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं किन्तु जब यह किसी कारण से रोगकारक हो जाता है, तो विविध रोगों को उत्पन्न करता है। विविध स्थितियों में इसकी दशा में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही चन्द्रमा की दशा में	तालाब या जलाशय में गिरना
नीचांशगत चन्द्रमा की दशा में	मानसिक-विकार एवं नेत्ररोग
अतिशत्रु राशिगत चन्द्रमा की दशा में	कलह एवं उद्वेग
नीच राशिगत चन्द्रमा की दशा में	अग्निभय
क्षीणचन्द्रमा की दशा में	उन्माद
पापयुक्त चन्द्रमा की दशा में	अग्निभय एवं मनोव्यथा
षष्ठभावगत चन्द्रमा की दशा में	मूत्रकृच्छ
अष्ठम्भावस्थ चन्द्रमा की दशा में	जलभय या जलोदर
क्रूरद्रेष्काणयुत चन्द्रमा की दशा में	विविध रोग

मंगल की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

मंगल की दशा में सामान्यतया रक्तविकार, चोट, दुर्घटना, लड़ाई तथा राजा से शारीरिक दण्ड का प्रकोप होता है; किन्तु जब यह रोगकारक हो जाता है तो अपनी दशा के समय में निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है।

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही मंगल की दशा में	अग्नि भय एवं राजदण्ड

नीचस्थ मंगल की दशा में	चोरपीड़ा, अग्निभय
शत्रुराशिगत मंगल की दशा में	प्रमाद, मूत्रकृच्छ्र, गुदा नेत्ररोग
नीचग्रहयुत मंगल की दशा में	मानसिक विकार
केन्द्रस्थ मंगल की दशा में	विषजन्य रोग
सप्तमस्थ मंगल की दशा में	मूत्रकृच्छ एवं गुदारोग
द्वितीयभावस्थ मंगल की दशा में	मुख एवं नेत्र के रोग
पंचमस्थ मंगल की दशा में	जड़ता एवं बुद्धिभ्रम
अष्ठम्स्थ मंगल की दशा में	विस्फोट, विसर्प, फोड़ा
नीचांशगत मंगल की दशा में	राजा से शारीरिक दण्ड
वक्री मंगल की दशा में	सर्पदंश

बुध की दशा में होने वाले रोग

बुध की दशा में सामान्यतया ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है किन्तु जब यह रोगकारक बन जाता है, तो दशाकाल में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

दशायें	उत्पन्न होनेवाले रोग
अवरोही बुध की दशा में	मानसिक कष्ट, चोरभय
शत्रुराशिस्थ बुध की दशा में	विपत्ति
समराशिगत बुध की दशा में	फोड़ा-फुन्सी
नीचराशिगत बुध की दशा में	मानसिक रोग
पापदृष्ट बुध की दशा में	कृच्छ्र रोग
तृतीयभावस्थ बुध की दशा में	जड़ता एवं गुल्म
पचमस्थ बुध की दशा में	चिन्ता, सिरदर्द
षष्ठ या अष्ठमस्थ बुध की दशा में	चर्मरोग, वमन, पाण्डु (पीलिया)
द्वादशस्थ बुध की दशा में	अंगों में विकलता, अपमृत्यु
अस्तंगत बुध की दशा में	मानसिकव्यथा, आँख व कान के रोग
षष्ठयंशगत बुध की दशा में	चोर, अग्नि एवं राजा से भय

गुरु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

गुरु की दशा में सामन्यतया गुल्म, उदरविकार एवं स्थूलता बढ़ जाती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो उसकी दशा के समय में निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते है—

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही गुरु की दशा में	स्वास्थ्य में अनेक गड़बड़ी
अतिनीचांशगत गुरु की दशा में	मानसिक व्यथा
नीचग्रहयुत गुरु की दशा में	मानसिक रोग
नीचांशयुत गुरु की दशा में	गुल्म, विचर्चिका
अस्तंगत गुरु की दशा में	अनेक रोग
षष्ठस्थ गुरु की दशा में	मेदोरोग, वातरोग, उदररोग

शुक्र की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

शुक्र की दशा में सामान्यतया वीर्यरोग, कामरोग एवं स्त्रीजन्यरोगों के होने की सम्भावना रहती है; किन्तु जब यह रोगकारक हो जाता है तो विविध स्थितियों में अपनी दशा में निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है।

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही शुक्र की दशा में	हृदय शूल
परम नीचगत शुक्र की दशा में	मानसिकरोग
अतिशत्रु राशिगत शुक्र की दशा में	गुल्म, संग्रहणी, नेत्ररोग
समराशिगत शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म, नेत्ररोग, गुदारोग
सप्तमस्थ शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म
षष्ठस्थ शुक्र की दशा में	शस्त्र से चोट
क्रूरषष्ठ्यंशगत शुक्र की दशा में	चोर एवं अग्निभय

शनि की दशा में होने वाले रोग

शनि की दशा में सामान्यतया कृशता, वायु विकार एवं व्यग्रता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है, तब यह विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में निम्नलिखित रोग उत्पन्न करता है यथा—

दशायें	उत्पन्न होनेवाले रोग
अतिशत्रु राशिगत शनि की दशा में	चोर एवं राजा से भय
शत्रु राशिगत शनि की दशा में	कृशता
समराशिगत शनि की दशा में	क्षय, वातरोग, पित्तरोग
लग्नस्थ शनि की दशा में	कृशता, सिर-दर्द
तृतीयस्थ शनि की दशा में	मानसिक रोग

पंचमस्थ राशिगत शनि की दशा में	जड़ता
षष्ठस्थ राशिगत शनि की दशा में	वातव्याधि, विषभय
सप्तमस्थ राशिगत शनि की दशा में	मूत्रकृच्छ
व्ययगत राशिगत सूर्य की दशा में	अग्निभय
क्रूरद्रेष्काणगत राशिगत शनि की दशा में	चोर, राजा एवं अग्नि से भय

राहु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदरविकार, मानसिक उद्वेग तथा छोटी-मोटी बीमारियाँ चलती रहती हैं। इसकी दशा के समय में शत्रुओं के प्रपंच तथा अभिचारजन्यरोग भी होते हैं। जब यह रोगकारक हो जाता है, तब तो निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है—

दशायें	उत्पन्न होने वाले रोग
नीचराशिस्थ राहु की दशा में	विषभय
लग्नस्थ राहु की दशा में	विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय
द्वितीयस्थ राहु की दशा में	मानसिक विकार
चतुर्थ राहु की दशा में	मनोव्यथा
पंचमस्थ राहु की दशा में	बुद्धिभ्रम
षष्ठस्थ राहु की दशा में	प्रमेह, गुल्म, क्षय, पित्तप्रकोप एवं चर्म रोग
सप्तमस्थ राहु की दशा में	सर्पदंश
अष्ठमस्थ राहु की दशा में	दुर्घटना में मृत्यु
व्ययराशिगत राहु की दशा में	मानसिक रोग
पापराशिगत राहु की दशा में	प्रमेह, मूत्रकृच्छ, क्षय एवं खाँसी
पापदृष्ट राहु की दशा में	अग्निभय

केतु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

केतु की दशा के समय में सामान्यतया, भ्रम, भय एवं मन में चंचलता रहती है किन्तु जब यह रोगकारक बन जाता है, तब अपनी विविध दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है।

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
लग्नगत केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट, हैजा

द्वितीयभावगत केतु की दशा में	मानसिक व्यथा
तृतीयभावगत केतु की दशा में	मानसिक विकलता
पंचम्भावगत केतु की दशा में	बुद्धिभ्रम
षष्ठभावगत केतु की दशा में	चोर, अग्नि एवं विष से भय
सप्तम्भावगत केतु की दशा में	मूत्रकृच्छ्र, मानसिक रोग
अष्ठम्भावगत केतु की दशा में	श्वास, खाँसी, संग्रहणी, क्षय
दशम्भावगत केतु की दशा में	मन में जड़ता आदि विकार
द्वादशभावगत केतु की दशा में	नेत्रविकार, नेत्रनाश
पापदृष्ट केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, चर्मरोग

अन्तर्दशा द्वारा रोगोत्पत्तिकाल का निर्णय

प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना फल देता है, जो ग्रह परस्पर एक दूसरे को देखते हैं, एक दूसरे की राशि में होते हैं या एक साथ किसी भी राशि में होते हैं—आपस में सम्बन्धी कहलाते हैं तथा जो ग्रह आपस में मिलकर कोई योग बनाते हैं या एक जैसे प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं—वे सधर्मी कहलाते हैं। इस प्रकार किसी भी रोगकारक ग्रह की दशा में जब-जब उसके सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आती है, तब-तब मनुष्य के शरीर में रोग पैदा होते हैं।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में भी रोग उत्पन्न होते हैं—

१. षष्ठेश की अन्तर्दशा में
२. अष्ठमेश की अन्तर्दशा में
३. दशाधीश से षष्ठस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में
४. दशाधीश से व्ययगत पापग्रह की अन्तर्दशा में
५. दशाधीश से अष्ठमस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में
६. मारकेश ग्रह की अन्तर्दशा में
७. अरिष्ट योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में
८. अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा में
९. पापग्रहों की अन्तर्दशा में
१०. रोगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में

किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन-सा रोग होगा ?

सूर्य आदि ग्रहों की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. सूर्य की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोग की तालिका—

दशापात	अन्तदशापात ग्रह	राग
सूर्य	नीचस्थ सूर्य	नेत्ररोग
"	द्वितीयेश सूर्य	हृदय दुर्बलता
"	सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
"	क्षीण या पापयुक्त चन्द्रमा	मनोव्यथा
"	षष्ठाष्टमव्ययगत चन्द्रमा	जलभय, मानसिकरोग, मूत्रकृच्छ
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु
"	त्रिकस्थ मंगल	मानसिक रोग
"	पापदृष्टयुत मंगल	चोट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
"	राहु	सर्पदंश
"	सूर्य से अष्ठम् व्यय में स्थित राहु	अतिसार, गुल्म, क्षय
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित राहु	सर्पभय
"	सूर्य से षष्ठ या अष्ठम् में स्थित गुरु	देहपीड़ा
"	सूर्य से अष्ठम्/व्यय में स्थित शनि	वातशूल, ज्वर, अतिसार
"	द्वितीयेश/सप्तम् शनि	अपमृत्यु
"	सूर्य से षष्ठ/अष्ठम् में स्थित बुध	देहपीड़ा,
"	नीचस्थ बुध	मनस्ताप
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	जड़ता, ज्वर
"	केतु	देहपीड़ा, मनोव्यथा
"	सूर्य से अष्ठम्/व्यय में स्थित केतु	दन्तरोग, मूत्रकृच्छ
"	सूर्य से षष्ठ/अष्ठम्/व्यय में स्थित शुक्र	मानसिक क्लेश
"	रन्ध्रेश/रि:फेश शुक्र	अपमृत्यु

२. चन्द्रमा की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापात	अन्तदशापात ग्रह	राग
चन्द्रमा	नीचस्थित पापयुत चन्द्रमा	देहालस्य, मनस्ताप
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	देह में जड़ता

"	अष्ठम्/व्यय में स्थित पापयुत मंगल	देहकष्ट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	घाव, चोट, अंगभंग
"	लग्न/त्रिकोण में स्थित राहु	सर्पभय, पशु से चोट
"	चन्द्रमा से अष्ठम्/व्यय में स्थित राहु	मनोव्यथा, सर्पभय
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित राहु	देहवाधा, कृशता
"	षष्ठ/अष्ठम् में स्थित गुरु	मानसिक तनाव
"	चन्द्रमा से त्रिकस्थ गुरु	मनोव्यथा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
"	द्वितीय त्रिकस्थान में स्थित शनि	शस्त्राघात
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहवाधा, वातव्याधि
"	चन्द्रमा से त्रिकस्थान में स्थित बुध	देहपीड़ा
"	नीचराशिस्थ बुध	देहकष्ट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	ज्वर
"	केतु	मनोव्यथा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
"	उच्चस्वराशि में स्थित सूर्य	आलस्य, ज्वर
"	चन्द्रमा से अष्ठम्/व्यय में स्थित सूर्य	सर्पदंश, ज्वर
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	विषमज्वर

३. मंगल की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
मंगल	अष्ठम्/व्यय में स्थित मंगल	मूत्रकृच्छ
"	पापयुत/पापदृष्ट मंगल	व्रण
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	देह में जड़ता, मानसिक रोग
"	अष्ठम्/द्वादश में स्थित राहु	सर्पदंश
"	पापयुत/पापदृष्ट राहु	वात एवं पित्तरोग
"	सप्तम् में स्थित राहु	अपमृत्यु
"	त्रिकस्थ/नीचस्थ/निर्बल गुरु	पित्तरोग, प्रेतपीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
"	अष्ठम्/व्यय में स्थित शनि	मनोव्यथा

"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	मानसिक रोग
"	मंगल से केन्द्र/त्रिकोण/एकादश में स्थित शनि	मूत्रकृच्छ
"	मंगल में अष्ठम्/व्यय में स्थित शनि	वातव्याधि, शूल
"	षष्ठ/व्यय में स्थित अस्तंगत बुध	हृदयरोग
"	मंगल के साथ स्थित बुध	अनेक रोग
"	मंगल से त्रिक में स्थित बुध	दस्युओं से चोट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	भयंकर रोग
"	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित केतु	दंतरोग, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ
"	मंगल से द्वितीय/सप्तम् स्थित केतु	महाव्याधि
"	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित शुक्र	देहपीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	दीर्घकालीन रोग
"	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित सूर्य	मानसिक रोग, ज्वर, अतिसार
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	सर्पभय, ज्वर
"	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित चन्द्र	युद्ध में चोट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	अपमृत्यु

४. राहु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
राहु	अष्ठम्/द्वादश स्थान में स्थित राहु	चोर से चोट
"	पापयुत/पापदृष्ट राहु	चोट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश के साथ स्थित या सप्तम् स्थान में स्थित राहु	सदैव रोग, महाकष्ट
"	त्रिकस्थान/नीचराशि में स्थित या अस्तंगत गुरु	हृदय रोग
	राहु से ६, ८,वें स्थान में स्थित गुरु	देहपीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
"	षष्ठ/व्यय में स्थित नीच/शत्रुराशिस्थ शनि	राजदण्ड, मानसिक रोग

"	राहु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत शनि	हृदयरोग, गुल्मरोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
"	त्रिकस्थान में स्थित तथा शनि से दृष्ट बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
"	राहु से ६, ८ या १२वें स्थित पापयुत बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
"	राहु से ६, ८ या १२वें स्थित पापयुत बुध	सर्पभय
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	अपमृत्यु
"	केतु	वातज्वर
"	अष्ठमेश के साथ स्थित केतु	जड़ता, मानसिक व्यथा
"	अष्ठम्/व्यय में स्थित निर्बल केतु	सर्पदंश, मानसिक रोग
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित केतु	दीर्घकालीन रोग
"	त्रिकस्थान/शत्रुराशि/नीचराशि में पापयुत शुक्र	शूल
"	राहु से ६, ८ या १२वें स्थित पापयुत शुक्र	मूत्रकृच्छ, प्रमेह, रुधिरातिसार
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
"	राहु से ६, ८ या १२वें में नीचस्थ सूर्य	ज्वर, अतिसार
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	महारोग
"	राहु से ६, ८ या १२वें में स्थित निर्बल चन्द्र	घाव, चोट, फोड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	अपमृत्यु
"	राहु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत मंगल	सर्पभय, व्रणभय, देहपीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	आलस्य, कमजोरी

५. गुरु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
गुरु	त्रिकस्थान में नीचनवांश में स्थित गुरु	महादु:ख, लम्बी बीमारी
"	सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट

"	त्रिकस्थान में नीच/अस्तंगत शनि	मानसिक रोग, ज्वरव्रण
"	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित शनि	शरीर में दर्द
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
"	मंगल से दृष्ट बुध	ज्वर, व्रण, दाह, नेत्ररोग
"	त्रिकस्थान में पापयुत बुध	अकस्मिक मृत्यु
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	मृत्युतुल्य कष्ट
"	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत केतु	मानसिक रोग
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित केतु	शारीरिक कष्ट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	लम्बी बीमारी
"	गुरु से ६, ७, ८ या १२वें स्थित सूर्य	सिरदर्द, ज्वर
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	शरीर में दर्द
"	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित सूर्य पापयुत चन्द्र	चोट से पीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	देहपीड़ा
"	गुरु से ८ या १२वें में स्थित पापयुत दृष्ट मंगल	अनेक रोग, नेत्ररोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	जड़ता
"	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत राहु	व्रण, क्षुद्ररोग, मूर्च्छा
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित राहु	देहपीड़ा

६. शनि की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शनि	अष्टम्/व्यय में अस्तंगत/पापयुत शनि	व्याकुलता, भय
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहपीड़ा
"	शनि से अष्टम्/व्यय में स्थित केतु	शीतज्वर, अतिसार, व्रण
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित केतु	शीतला
"	त्रिकस्थ नीचगत/अस्तंगत शुक्र	मानसिक रोग

"	शनि से ६, ८ या १२वें में स्थित शुक्र	नेत्ररोग, ज्वर, दंतरोग, हृदयरोग, गुप्तरोग, पेड़ से गिरना
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	महाक्लेश
"	शनि से १, ८ या १२वें स्थित सूर्य	हृदयरोग, मानसिकरोग, ज्वर
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	देहपीड़ा
"	क्षीण, पापयुत/दृष्ट, नीच क्रूर राशि में स्थित चन्द्र	महाकष्ट
"	शनि से ८ या १२वें में स्थित निर्बल चन्द्र	आलस्य
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	कमजोरी
"	अष्टम्/व्यय में स्थित नीच/अस्तंगत-मंगल	व्रण, शस्त्राघात, ग्रन्थि
"	सप्तमेश/अष्टमेश मंगल	अनेक कष्ट
"	राहु	मानसिक रोग
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित राहु	देहपीड़ा
"	त्रिकस्थान में नीचगत पापयुत गुरु	कुष्ठ
"	शनि से ६, ८ या १२ में स्थित पापयुत गुरु	मानसिक रोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	देहबाधा

७. बुध की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
बुध	त्रिक में स्थित नीच/अस्तंगत पापयुत्‌दृष्ट बुध	शूल
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	वातशूल
"	बुध से ८ या ११वें में स्थित केतु	वाहन से गिरना, वृश्चिकदंश
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित केतु	शरीर में जड़ता, लकवा
"	बुध से ६, ८, १२ में स्थित बलहीन शुक्र	हृदयरोग, ज्वर, अतिसार
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु

"	बुध से १, ६, १२ में स्थित पापयुत सूर्य	शस्त्रघात, सिरदर्द, मनोव्यथा
"	द्वितीयेश/सप्तममेश सूर्य	अपमृत्यु
"	नीच या शत्रुराशिगत चन्द्रमा	देहबाधा
"	बुध से ६, ८, १२वें में स्थित पापयुत चन्द्रमा	चोर एवं अग्नि से भय
"	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	देहबाधा
"	अष्टम्/व्यय में स्थित नीचस्थ मंगल	शस्त्रघात, व्रण, ताप, ज्वर, ग्रंथि
"	बुध से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत मंगल	नृपाग्निचोर भय
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
"	लग्न, अष्टम् या व्यय में स्थित राहु	हृदयरोग
"	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	अपमृत्य
"	त्रिकस्थ, नीच/अस्तंगत पापदृष्ट गुरु	चोरभय, देहपीड़ा
"	बुध से ६, ८, १२वें में स्थित निर्बल गुरु	अङ्गताप, व्याकुलता
"	द्वितीय/सप्तम में स्थित गुरु	शरीर में दर्द
"	बुध से ८ या १२वें में स्थित शनि	बुद्धिनाश, मानसिक-रोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु

८. केतु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
केतु	अष्टम्/व्यय में स्थित नीच/अस्तंगत ग्रहों से युत केतु	हृदय रोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश से सम्बन्धित केतु	रोग भय
"	केतु से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत शुक्र	नेत्ररोग, व्रण, हृदयरोग
"	अष्टम्/व्यय में स्थित पापयुत सूर्य	सर्प, विष या रोगभय, गर्मी, ज्वर
"	केतु से ८, १२ में स्थित पापयुत सूर्य	मानसिक कष्ट
"	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
"	षष्ठ/व्यय में स्थित नीच क्षीण चन्द्रमा	मानसिक ताप, मनोव्यथा, जड़ता

"	केतु से ६, १२ में स्थित निर्बल चन्द्रमा	व्याकुलता
"	अष्टमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु
"	केतु से २, ८, १२ में स्थित मंगल	प्रमेह, मूत्रकृच्छ
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	ताप, ज्वर, विषभय अपमृत्यु
"	अष्टम्/व्यय में स्थित पापयुत दृष्ट राहु	बहुमूत्र, शीतज्वर, प्रमेह, शूल
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित राहु	महारोग
"	केतु से ६, ८, १२ में स्थित नीचस्थ गुरु	सर्पभय, व्रण
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
"	शनि	मनोव्यथा
"	अष्टम्/व्यय में स्थित शनि	आलस्य
"	केतु से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत शनि	देह सन्ताप, मानसिकताप
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	मृत्युतुल्य कष्ट
"	त्रिकस्थान में पापयुत दृष्ट बुध	मनोव्यथा
"	केतु से ६, ८, १२ में बलहीन बुध	राजदंड से देहपीड़ा
"	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	अपमृत्यु

९. शुक्र की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होनेवाले रोगों की तालिका—

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शुक्र	त्रिकस्थान में स्थित पापयुतदृष्ट शुक्र	चोरभय
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	मृत्युभय
"	षष्ठ/अष्ठम् में नीचराशि/पापवर्ग में स्थित सूर्य	ताप, मानसिक रोग, नानारोग भय
"	सप्तमेश सूर्य	देहपीड़ा
"	शुक्र से ६, ८, १२ में नीच/अस्तंगत चन्द्र	मनस्ताप
"	शुक्र से ६, ८, १२ में मंगल	शीतज्वर
"	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	देहपीड़ा
"	उपचयस्थान में स्थित राहु	ज्वर, अजीर्ण, मनोव्यथा
"	द्वितीयस्थ/सप्तमस्थ राहु	आलस्य

"	शुक्र से ६, ८, १२ में पापयुत गुरु	चोर से पीड़ा, मनोव्यथा, नाना रोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट
"	नीचस्थ शनि	शारीरिक क्लेश, आलस्य
"	शुक्र से ८, १२ में स्थित शनि	अनेक रोग
"	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहपीड़ा
"	शुक्र से ६, ८, १२ में निर्बल पापयुत दृष्टबुध	शीत वात ज्वर
"	सप्तमेश बुध	शारीरिक पीड़ा
"	शुक्र से ८, ११ में पापयुत केतु	व्रण, सिरदर्द, मनोव्यथा, प्रमेह
"	द्वितीय/सप्तम् में स्थित केतु	शरीर पीड़ा

किस ग्रह की प्रत्यन्तर-दशा में कौन-सा रोग होगा?

प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में सभी ९ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ चलती रहती हैं। प्रत्यन्तर दशाओं में सबसे छोटी दशा सूर्य की होती है, और ५ दिन २४ घटी रहती है। सबसे बड़ी दशा शुक्र की होती है, और ६ माह २० दिन रहती है। इस प्रकार प्रत्यन्तर दशा द्वारा ५ दिन से ६ माह २० दिन तक के योगमान वाले विविध कालखण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी की जा सकती है।

सूर्य आदि ग्रहों की अन्तर्दशा में विभिन्न ग्रहों की प्रत्यन्तर-दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	शिरोरोग
"	चन्द्र	उद्वेग, मनोव्यथा
"	मंगल	शस्त्रघात, अग्निपीड़ा
"	राहु	श्लेष्मा, शस्त्रभय
"	शनि	लम्बी बीमारी
"	केतु	मृत्युभय
चन्द्र	शनि	वात, पित्तजन्यरोग
"	केतु	अपमृत्यु

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
मंगल	मंगल	रक्तस्राव, मृत्युभय
"	शनि	अंगों में विकलता
मंगल	बुध	ज्वर
"	केतु	आलस्य, शस्त्रघात, सिरदर्द
"	शुक्र	शस्त्रभय, अतिसार, वमन
राहु	राहु	शस्त्रघात, अनेक रोग
"	शनि	निरंतर वायुविकार
"	केतु	बुद्धिनाश
"	शनि	योगिनी का भय
"	सूर्य	ज्वर, अपमृत्यु
"	चन्द्र	उद्वेग, चिंता, शरीर में विकलता
"	मंगल	भगन्दर, रक्तपित्त
गुरु	केतु	जलभय, अपमृत्यु
"	मंगल	शस्त्रुभय, गुप्तरोग, मन्दाग्नि
"	राहु	मृत्युभय
शनि	शनि	देहपीड़ा
"	केतु	मन में चिंता, भय एवं त्रास
"	सूर्य	ज्वर
"	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
"	राहु	अपमृत्यु
बुध	केतु	उदररोग, कामला, रक्तपित्त
"	सूर्य	मानसिक रोग
"	मंगल	शस्त्रघात
"	राहु	आकस्मिक रोग
"	शनि	वात एवं पित्तजन्यरोग
केतु	केतु	आकस्मिक दुर्घटना
"	शुक्र	नेत्ररोग, सिरदर्द
"	चन्द्र	मतिभ्रम, आमवात
"	मंगल	शस्त्रघात, अग्निपीड़ा

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
"	राहु	क्षुद्ररोग
"	शनि	देहपीड़ा
"	बुध	बुद्धिनाश
शुक्र	सूर्य	वातज्वर, सिरदर्द
"	मंगल	रक्तपित्त
"	केतु	अपमृत्युभय

किस ग्रह की सूक्ष्मदशा में कौन-सा रोग होगा?

सूर्य आदि ग्रहों की प्रत्यन्तर-दशा में विभिन्न ग्रहों की सूक्ष्मदशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रत्यन्तरदशाधीश	सूक्ष्मदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	मृत्युभय
"	मंगल	रक्तस्राव
"	शनि	मानसिक वेदना
चन्द्रमा	मंगल	कुक्षिरोग
"	शनि	राजदण्ड, अंग-भंग
"	सूर्य	निरंतर क्लेश
मंगल	मंगल	अपस्मार
"	राहु	अंग में रोग, अग्निभय
राहु	राहु	मतिभ्रम, शून्यता
"	गुरु	दीर्घकालीन रोग
"	बुध	अरुचि
"	मंगल	अर्श, गुल्म
गुरु	शनि	मनस्ताप
"	सूर्य	वातपित्तप्रकोप, शूल
"	चन्द्र	नेत्ररोग, कुक्षिरोग
"	मंगल	विष प्रयोग
"	राहु	साँप, बिच्छू से भय
शनि	शनि	वातपीड़ा
"	केतु	कुष्ठ, सर्वाङ्ग पीड़ा

"	सूर्य	देहपीड़ा
"	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
बुध	मंगल	अग्निदाह, विषोत्पत्ति, जड़ता
"	राहु	अग्निभय, सर्पभय
"	शनि	असाध्य रोग
केतु	मंगल	घोड़े से गिरना, गुल्म, शिरोरोग
शुक्र	सूर्य	हृदय शूल
केतु	राहु	वमन, रक्तविकार, पित्तरोग
शुक्र	मंगल	जड़ता
"	राहु	अग्नि एवं सर्पभय
"	केतु	मुख, नेत्र एवं शिर में रोग

प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में सभी ग्रहों की प्राणदशाएँ चलती रहती हैं। इन प्राणदशाओं में सबसे छोटी दशा का मान ४८ पल ३६ विपल अर्थात् लगभग २० मिनिट तथा सबसे बड़ी दशा का मान ५ दिन ३० घटी होता है। इस प्रकार हम प्राणदशा द्वारा २० मिनिट से लेकर ५ दिन तक के विविध कालखण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी कर सकते हैं।

सूर्य आदि ग्रहों की सूक्ष्मदशा में विभिन्न ग्रहों की प्राणदशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

सूक्ष्मदशाधाश	प्राणदशाधाश	राग
सूर्य	सूर्य	चोर एवं अग्निभय
"	राहु	विषभय
"	शनि	मृत्यु
चन्द्र	मंगल	क्षय, कुष्ठ, रक्तस्राव, भूत का आवेश
"	शनि	मूर्छा, आकस्मिक वेदना
"	केतु	विषभय, उदररोग
"	सूर्य	मनोव्यथा
मंगल	मंगल	रक्तपित्त
"	शनि	अग्निभय
"	केतु	ऊपर से गिरना, नेत्ररोग

"	सूर्य	ज्वर, उन्माद
"	चन्द्र	शीतोष्ण व्याधि (सर्द-गरमी)
राहु	शनि	शारीरिक कष्ट
"	सूर्य	अर्श
गुरु	सूर्य	वातपित्त-प्रकोप, शूल
"	चन्द्र	नेत्ररोग
"	राहु	सर्प एवं बिच्छू का भय
शनि	शनि	ज्वर, कुष्ठ, उदररोग
"	सूर्य	नेत्ररोग, शिरोरोग
"	मंगल	गुल्म, अग्नि एवं विषभय
बुध	सूर्य	दाह, ज्वर, उन्माद
"	मंगल	कुक्षिरोग, दन्तरोग, नेत्ररोग, अर्श
केतु	केतु	वाहन से गिरना
"	सूर्य	चोराग्नि भय, मनोव्यथा
"	मंगल	पित्तप्रकोप, सन्निपात
"	गुरु	शस्त्रघात, व्रण, हृदयरोग
शुक्र	सूर्य	गरमी
"	मंगल	ज्वर, चेचक, फोड़ा, खुजली, गाँठ

प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

प्रश्नशास्त्र में रोगारम्भकाल का गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया है। रोग कब होगा? इसकी ठीक-ठीक भविष्यवाणी करने के लिए प्रश्नशास्त्र के आचार्यों ने कुछ महत्त्वपूर्ण योग बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्रमा हो, चन्द्रमा के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में रोग की शुरूआत होती है।
२. प्रश्नकालीन स्पष्ट गुलिक (मान्दि) के नवांश या द्वादशांश के नक्षत्र में जब चन्द्रमा आता है तब-तब रोग होता है।
३. स्पष्टगुलिक एवं स्पष्ट चन्द्रमा के योग नक्षत्र में जब चन्द्रमा आता है, तब रोग होता है।
४. पृच्छक के विपत्, प्रत्यरि या वध नक्षत्र में चन्द्रमा के आने पर रोग होता है।
५. आरूढ़राशि से षष्ठेश जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकाल से उतने मास में रोग होता है।

६. आरूढ़ लग्न के नक्षत्र से षष्ठेश जितना आगे हो, प्रश्नकालीन सूर्य नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र पर जब सूर्य जाता है, तब रोग होता है।
७. प्रश्नकालीन नक्षत्र से षष्ठेशाश्रित नक्षत्र जितना आगे हो, उस संख्या को षष्ठेश के अयनादिकाल से गुणाकर रोगारम्भ का समय जाना जा सकता है।
८. प्रश्नकालीन षष्ठेश के भुक्त नवांशों की संख्या को उसके काल (अयन, ऋतु मास, पक्ष, दिन या क्षण) से गुणाकर रोगारम्भ का समय बतलाना चाहिए।

रोग दिन में होगा या रात में?

प्रश्न कुंडली में जो ग्रह रोग (षष्ठ) स्थान में स्थित हो वह दिवाबली हो तो दिन में और यदि वह रात्रिबली हो तो रात्रि में रोग प्रारम्भ होता है। यदि प्रश्न कुंडली में षष्ठस्थान में कोई ग्रह न हो तो षष्ठेश द्वारा विचार करना चाहिए। अर्थात् यदि षष्ठेश ग्रह दिवाबली हो तो दिन में तथा वह रात्रिबली हो तो रात्रि में रोग होता है।

किस प्रहर में रोग होगा?

प्रश्नकर्ता या उसका दूत जिस दिशा में बैठा हो, पूर्व आदि अनुलोम क्रम से गणनाकर उस दिशा की संख्या जान लेनी चाहिए फिर सूर्योदय से गणना कर उतने संख्यक प्रहर में रोगारम्भ बतलाना चाहिए।

गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

गोचरीय क्रम से विविध राशियों में ग्रहों का परिभ्रमण भी मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी देता है। अतः ज्योतिषशास्त्र में गोचरीय ग्रहस्थितिवश रोगारम्भकाल का विचार किया जाता है। गोचरीय ग्रहस्थितिवश रोगारम्भ का निर्णय निम्नलिखित योगों के द्वारा किया जाता है—

१. जन्मकुंडली में षष्ठेश जिस राशि में हो उस राशि में गोचरीय क्रम से जब-जब चन्द्रमा पहुँचता है, तब-तब रोग होता है।

२. लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा की पापग्रहों के साथ जब-जब युति एवं दृष्टि होती है, तब-तब रोग होता है।

३. रोगकारक ग्रह जब-जब अनिष्ट स्थान में आता है, तब-तब रोग होता है।

४. रोगकारक ग्रह जब-जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा की युति या दृष्टि द्वारा प्रभावित करता है, तब-तब रोग होता है।

रोगारम्भ-काल का निर्णय

उक्त विवेचन के द्वारा यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन में आने

वाली ग्रहों की दशा प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति तथा गोचरीय ग्रहस्थिति, उसके जीवन में होने वाले रोगों की महत्त्वपूर्ण सूचना देती है। महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं प्रश्नकालीन या गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा जीवन में समय-समय पर होने वाले रोगों की जानकारी दी जा सकती है।

दशा, अन्तर्दशा एवं प्रतयन्तरदशा द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण किया जाता है। इन दशाओं का काल स्थूल या अपेक्षाकृत लम्बा होता है तथा रोगोत्पत्ति के वास्तविक क्षण की जानकारी करने के लिए सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं गोचरीय ग्रहस्थिति का उपयोग किया जाता है।

❑

अध्याय-७

आयु विचार

ज्योतिषीय गणना के किसी भी क्षेत्र का फल ज्ञात करने से पूर्व ज्योतिषीगण सैद्धान्तिकरूप से जातक की आयु का विचार कर लेते हैं। ज्योतिष का यह आचार नियम निरर्थक नहीं है। आयु है, तभी किसी भोग या रोग के सुख-दुःख का महत्त्व है। आयु ही नहीं है, तो अन्य गणनायें निरर्थक ही होती हैं।

ज्योतिष के फलितशास्त्र के नियमानुसार आयु का विचार निर्णय योग, निसर्गादिभेद एवं दशाओं के द्वारा किया जाता है। इन्हें योगायु, निसर्गायु एवं दशायु कहा जाता है। इन सभी विधियों से निर्णीत आयु के फल के सार को ही आयु माना जाता है।

योगायु

योगायु का निर्णय मुख्यतया ६ प्रकार के योगों से किया जाता है। ये निम्नलिखित हैं—

योग	आयु
१. सद्योरिष्ट योग	अधिकतम १ वर्ष तक
२. अरिष्ट योग	२ वर्ष से १२ वर्ष तक
३. अल्पायु योग	१३ से ३३ वर्ष तक
४. मध्यायु योग	३४ से ७० वर्ष तक
५. दीर्घायु योग	७१ से १०० वर्ष तक
६. अमितायु योग	१०१ से १२० वर्ष तक

विशेष—बाद वाले तीनों योगों अर्थात् क्रम संख्या ४ से ६ तक की आयु का निर्धारण मारकेश आदि की दशाओं की गणना से किया जाता है।)

सद्योरिष्ट योग

१. संध्याकाल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा राशियों के अन्तिम नवांश में पापग्रह स्थित हो।

वाली ग्रहों की दशा प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति तथा गोचरीय ग्रहस्थिति, उसके जीवन में होने वाले रोगों की महत्त्वपूर्ण सूचना देती है। महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं प्रश्नकालीन या गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा जीवन में समय-समय पर होने वाले रोगों की जानकारी दी जा सकती है।

दशा, अन्तर्दशा एवं प्रतयन्तरदशा द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण किया जाता है। इन दशाओं का काल स्थूल या अपेक्षाकृत लम्बा होता है तथा रोगोत्पत्ति के वास्तविक क्षण की जानकारी करने के लिए सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं गोचरीय ग्रहस्थिति का उपयोग किया जाता है।

❑

अध्याय-७

आयु विचार

ज्योतिषीय गणना के किसी भी क्षेत्र का फल ज्ञात करने से पूर्व ज्योतिषीगण सैद्धान्तिकरूप से जातक की आयु का विचार कर लेते हैं। ज्योतिष का यह आचार नियम निरर्थक नहीं है। आयु है, तभी किसी भोग या रोग के सुख-दुःख का महत्त्व है। आयु ही नहीं है, तो अन्य गणनायें निरर्थक ही होती हैं।

ज्योतिष के फलितशास्त्र के नियमानुसार आयु का विचार निर्णय योग, निसर्गादिभेद एवं दशाओं के द्वारा किया जाता है। इन्हें योगायु, निसर्गायु एवं दशायु कहा जाता है। इन सभी विधियों से निर्णीत आयु के फल के सार को ही आयु माना जाता है।

योगायु

योगायु का निर्णय मुख्यतया ६ प्रकार के योगों से किया जाता है। ये निम्नलिखित हैं—

योग	आयु
१. सद्योरिष्ट योग	अधिकतम १ वर्ष तक
२. अरिष्ट योग	२ वर्ष से १२ वर्ष तक
३. अल्पायु योग	१३ से ३३ वर्ष तक
४. मध्यायु योग	३४ से ७० वर्ष तक
५. दीर्घायु योग	७१ से १०० वर्ष तक
६. अमितायु योग	१०१ से १२० वर्ष तक

विशेष—बाद वाले तीनों योगों अर्थात् क्रम संख्या ४ से ६ तक की आयु का निर्धारण मारकेश आदि की दशाओं की गणना से किया जाता है।)

सद्योरिष्ट योग

१. संध्याकाल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा राशियों के अन्तिम नवांश में पापग्रह स्थित हो।

२. केन्द्र के चारों भावों में पापग्रह हों और इनमें से किसी एक के साथ चन्द्रमा हो।
३. चन्द्रमा के पूर्वाध में पापग्रहो तथा चन्द्रमा भी इनके साथ हो।
४. दूसरे एवं बारहवें भाव में पापग्रह हो।
५. सातवें भाव से दूसरे एवं बारहवें स्थान में पापग्रह हों।
६. लग्न एवं आठवें में पापग्रह हों, बारहवें में क्षीण चन्द्रमा हो और केन्द्र में कोई शुभग्रह न हो।
७. शनि, मंगल एवं सूर्य आठवें में हो और शुभग्रहों से दृष्ट न हो।
८. लग्न में शनि हो, चन्द्रमा वृश्चिक या किसी अन्य जलराशि में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में हो।
९. शनि सातवें में हो, चन्द्रमा वृश्चिक या किसी अन्य जलराशि में हो।
१०. चन्द्रमा पंचम में हो, मंगल चन्द्रमा या लग्न के नवांश में हो और उस पर बृहस्पति की दृष्टि न हो।
११. शनि, मंगल और सूर्य छठे में हो और शुभग्रहों से दृष्ट न हों।
१२. लग्नेश नीच राशि या आठवें भाव में हो और शनि सातवें में हो।
१३. लग्नेश नीच राशि या आठवें में हो और शनि नीच हो।
१४. जन्म के समय सूर्य, मंगल एवं चन्द्रमा बलहीन होकर आपोक्लिम में हो।
१५. दिन में जन्म हो और गुरु मेष, वृश्चिक या मकर राशि में हो।
१६. केतु के उदय होने वाले नक्षत्र में शिशु का जन्म हो।
१७. दो राशियों की सन्धि के समय जन्म हो और लग्नेश पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो।
१८. चन्द्रमा आठवें में हो।
१९. सभी पापग्रह लग्न और आठवें में हों।
२०. लग्न एवं चन्द्रमा दोनों पापग्रहों के मध्य हो।
२१. लग्न द्रेष्काण या चन्द्र द्रेष्काण का स्वामी निर्बल होकर त्रिक् में हो।
२२. छठे या आठवें में कोई पापग्रह पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो।
२३. सभी पापग्रह लग्न या सातवें में हों।
२४. दसवें भाव का सूर्य मेष, वृश्चिक या मकर में हो।
२५. छठे या आठवें भाव का चन्द्रमा किसी पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो।
२६. लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं सभी पापग्रह केन्द्र में हों।
२७. कर्क, वृष एवं मेष को छोड़कर क्षीण चन्द्रमा लग्न में अन्य किसी भी राशि में हो और पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।

२८. क्षीण चन्द्रमा क्रूर ग्रहों के साथ हो और उसे राहु देखता हो।
२९. लग्न का मंगल शुभग्रहों के प्रभाव से रिक्त हो।
३०. मंगल शनि के साथ छठे या आठवें में हो।
३१. सप्तम्भाव में शनि और मंगल हो और शुभग्रहों के प्रभाव से रिक्त हो।
३२. सूर्य, मंगल और शनि लग्न, द्वितीय, छठे, सातवें एवं आठवें भाव में हो।
३३. चन्द्रमा लग्न, चौथे, पाँचवें, आठवें या दसवें भाव में पापग्रहों के साथ हो और शुभग्रहों के प्रभाव से रिक्त हो।
३४. लग्नेश पापग्रहों के साथ आठवें या सातवें में हो।
३५. पापग्रहों से युक्त या दृष्ट लग्नेश छठे, सातवें या आठवें में हो।
३६. छठे या आठवें भाव के शुभग्रहों पर वक्री पापग्रहों की दृष्टि हो।
३७. दूसरे-बारहवें, छठे-आठवें, आठवें-नवमें या छठे-बारहवें भाव में सभी पापग्रह हों।
३८. लग्न का शनि पापग्रहों से दृष्ट हो।
३९. लग्न का शनि पापग्रहों से युक्त हो।
४०. राहु, सिंह, वृश्चिक या कुम्भ लग्न में पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।
४१. कर्क या सिंह में राहु, चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ हो।

अरिष्ट योग

१. लग्न में क्षीण चन्द्रमा तथा सभी पापग्रह केन्द्र और आठवें भाव में हों।
२. चन्द्रमा केन्द्र या आठवें भाव में दो पापग्रहों के मध्य में हो।
३. जन्म के समय क्षीण चन्द्रमा छठे एवं आठवें भाव में हो।
४. लग्न का चन्द्रमा राहु के साथ या उसके प्रभाव में हो, मंगल आठवें में हो।
५. लग्न में सूर्य या चन्द्रमा और सभी पापग्रह त्रिकोण या आठवें में हों।
६. लग्न में चन्द्रमा, आठवें में मंगल एवं बारहवें में शनि हो।
७. छठे या आठवें भाव में स्थित कर्क के बुध को चन्द्रमा देखता हो।
८. चन्द्रमा पापग्रहों के साथ लग्न, त्रिकोण, आठवें या बारहवें भाव में हो और शुभग्रहों के प्रभाव से रिक्त हो।
९. मेष या वृश्चिक राशि में आठवें भाव में स्थित गुरु को सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और शनि देखते हों तथा वह शुक्र के प्रभाव से रिक्त हो।
१०. सूर्य, चन्द्र, मंगल और बृहस्पति एक साथ हों।
११. चन्द्रमा, मंगल, गुरु एवं शनि एक साथ हों।
१२. सूर्य, चन्द्रमा, मंगल एवं शनि एक साथ हों।

१३. लग्न में सूर्य, मंगल एवं शनि हों, सातवें भाव में वृष या तुला में क्षीण चन्द्रमा हो और इन पर गुरु का प्रभाव न हो।
१४. सूर्य, चन्द्रमा एवं मंगल पाँचवें में हो।
१५. मकर के नवांश में शनि हो और वह बुध से युक्त या दृष्ट हो।
१६. सूर्य के साथ स्थित बुध को शुभग्रह देखते हों।
१७. लग्न में चन्द्रमा और सूर्य-शनि आठवें में हों।
१८. लग्न में चन्द्रमा और सूर्य-शनि आठवें में शुक्र से प्रभावित हों।
१९. लग्नेश या राशीश दुर्बल होकर दुःस्थान में स्थित हो।
२०. जिस बालक का जन्म दिनमृत्यु, दिनरोग या विषघटी में हो। (उनके सम्बन्ध में इस अध्याय के अन्त में देखें।)
२१. चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ मंगल हो।
२२. छठे, आठवें या बारहवें का सूर्य कर्क या सिंह में हो।
२३. केन्द्रस्थ राहु पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
२४. छठे या आठवें भाव के चन्द्रमा को पापग्रह देखते हों या शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रह देखते हों।
२५. सूर्य एवं मंगल के साथ चन्द्रमा मिथुन में हो या कन्याराशि में हो और अन्य ग्रहों के प्रभाव से रिक्त हो।
२६. चन्द्रमा सप्तम में हो तथा अष्टमेश लग्न में हो और उसे शनि देखता हो।
२७. लग्नेश एवं चन्द्रमा आठवें में हो तथा इन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
२८. मंगल की राशि में बृहस्पति एवं बृहस्पति की राशि में मंगल हो।
२९. छठे या आठवें भाव का बुध कर्क में हो।
३०. दूसरे, छठे या आठवें भाव का बृहस्पति मंगल की राशि में हो।
३१. छठे, आठवें या बारहवें का सूर्य कर्क या सिंह में हो।
३२. केन्द्र, छठे या आठवें भाव के शनि मंगल की राशि में हो और उसे बली मंगल देखता हो।
३३. चतुर्थभाव के शनि के साथ सूर्य हो।
३४. लग्न के राहु पर पापग्रह की दृष्टि हो।
३५. आठवेंभाव के राहु पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
३६. चौथे में राहु और केन्द्र में चन्द्रमा हो।
३७. सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहु हो।
३८. सूर्य और चन्द्रमा केन्द्र में हों और उन्हें मंगल, शनि देखते हों।
३९. केन्द्र, छठे या आठवें का चन्द्रमा मंगल की राशि में हो।

अल्पायु योग

१. लग्न में शत्रुग्रह की राशि में शनि हो और शुभग्रह तीसरे, छठे, नवमें तथा बारहवें में हों।
२. कन्या के नवांश में स्थित शनि को बुध देखता हो।
३. तुला के नवांश में स्थित शनि को गुरु देखता हो।
४. चन्द्रमा लग्न या सप्तम् में हो और शनि एवं चन्द्रमा स्थित राशि में हो या एक पर दूसरा द्विस्वभाववाली राशि में हो।
५. सिंह के नवांश में शनि हो और उसे लग्नेश देखता हो।
६. कर्क के नवांश में शनि हो और उसे लग्नेश देखता हो।
७. मिथुन के नवांश में शनि को लग्नेश देखता हो।
८. लग्नेश एवं अष्टमेश एक-दूसरे की राशि में छठे और बारहवें भाव में पापग्रह के साथ हों।
९. गुरु के नवांश में शनि हो और उसे राहु देखता हो।
१०. गुरु के नवांश में शनि राहु से दृष्ट हो और लग्नेश उच्चराशि के नवांश में हो
११. केन्द्र में पापग्रह हों, उन्हें चन्द्रमा एवं शुभग्रह नहीं देखते हों तथा चन्द्रमा छठे या आठवें भाव में हो।
१२. कर्क में गुरु के साथ सूर्य हो और अष्टमेश केन्द्र में हो।
१३. लग्न में शत्रु-राशि में शनि हो तथा तीसरे, छठे, नवमें एवं बारहवें भाव में शुभग्रह हों।
१४. अष्टमेश पापग्रह हो और उसे बृहस्पति देखता हो तथा लग्न की राशि का अधिकपति आठवें में हो।
१५. चन्द्रमा और शनि एक ही भाव में हों या एक-दूसरे को देख रहे हों और सूर्य आठवें में हो।
१६. जन्मराशि के अधिपति और अष्टमेश के बीच चन्द्रमा हो और गुरु बारहवें में हो।
१७. अष्टमेश पापग्रह हो, उसे गुरु देखता हो और लग्नेश भी अष्ठम में हो।
१८. अष्टमेश केन्द्र में हो और लग्नेश निर्बल हो।
१९. पापग्रह छठे, आठवें एवं बारहवें भाव में हों।
२०. अष्टमेश या शनि क्रूर षष्ठयंश में पापग्रह के साथ हों।
२१. दूसरे एवं बारहवें भाव में पापग्रह हों और उनपर शुभग्रहों का प्रभाव न हो।
२२. यदि लग्नेश एवं सभी शुभग्रह तीसरे, छठे, नवमें या बारहवें भाव में हों।

२३. लग्नेश के नवांश की राशि और अष्टमेश के द्वादशाँश की राशि स्थिर हों या एक चर और दूसरी द्विस्वभाव वाली हो।
२४. लग्नेश एवं अष्टमेश के द्वादशाँश की राशि स्थिर हो या एक चर, दूसरी द्विस्वभाव वाली हो।
२५. जन्मराशि तथा अष्टम्भाव के अधिपति परस्पर शत्रु हों; लग्नेश एवं अष्टमेश परस्पर शत्रु हों तथा लग्नेश एवं सूर्य आपस में शत्रु हों।
२६. केन्द्र में स्थित अष्टमेश लग्नेश से बलवान हो और पापग्रह आठवें या बारहवें में हो।
२७. लग्नेश पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।
२८. निर्बल लग्नेश हो और निर्बल अष्टमेश केन्द्र के किसी भाव में हो।
२९. निर्बल लग्नेश हो और निर्बल अष्टमेश आठवें में हो।
३०. लग्न द्रेष्काण राशि एवं चन्द्र द्रेष्काण राशि, दोनों स्थिर हों या इनमें से एक चर-दूसरी द्विप्रकृति वाली हो।
३१. अष्टमेश नीचराशि में हो, शनि निर्बल हो तथा पापग्रह लग्न में हो।
३२. लग्नेश निर्बल हो, अष्टमेश बलवान हो।
३३. लग्नेश-षष्ठेश एक ही भाव में हों और अष्टमेश पापग्रहों के साथ छठे में हो।
३४. लग्नेश के साथ व्ययेश एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश अष्टम् में हो और इन दोनों को पापग्रह देखते हों।
३५. अष्टमेश पापग्रहों के साथ लग्न मे हों, लग्नेश पर बृहस्पति की दृष्टि न हो और वह छठे या बारहवें में हो और चन्द्रमा छठे, आठवें एवं बारहवें में हो।
३६. लग्नेश के साथ द्वादशेश एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश आठवें में हो और इन्हें पापग्रह देखते हों।
३७. लग्नेश बलहीन हो, सभी पापग्रह केन्द्र में हों और इन पर शुभग्रहों का प्रभाव न हो।
३८. आठवें भाव में बलवान अष्टमेश हो तथा लग्नेश निर्बल हो।
३९. लग्नेश दुर्बल हो और छठे, आठवें एवं बारहवें भाव में पापग्रह हो।
४०. लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश तीनों तीसरे, छठे, नवमें या बारहवें में हों।
४१. लग्नेश, दशमेश एवं शनि तीनों आठवें में हों।
४२. लग्नेश एवं अष्टमेश छठे या बारहवें में हों।
४३ शनि एवं मंगल लग्न में, चन्द्रमा आठवें में एवं बृहस्पति छठे में हो।

मध्यमायु योग

१. लग्नेश एवं सभी शुभग्रह पणफर (२, ५, ८ एवं ११वें भाव में) हों।
२. अष्टमेश एवं सभी क्रूरग्रह पणफर में हों।
३. लग्नेश एवं अष्टमेश में सम्बन्ध हों और लग्नेश एवं सूर्य में भी सम्बन्ध हों।
४. बुध, गुरु एवं शुक्र दूसरे, तीसरे एवं ग्यारहवें भाव में हों।
५. लग्नेश की अन्तर्दशा की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि द्विस्वभाव वाली हों या एक चर, दूसरी स्थिर हों।
६. लग्नेश के नवांश की राशि एवं उस राशि के अधिपति के नवांश की राशि द्विस्वभाव वाली हों या एक चर-दूसरी स्थिर हों।
७. लग्न के द्रेष्काण की राशि तथा चन्द्रमा के द्रेष्काण की राशि द्विस्वभाव वाली हों या एक चर-दूसरी द्विस्वभाव वाली हों।
८. लग्नेश निर्बल हो, गुरु केन्द्र में या त्रिकोण में हो और पापग्रह त्रिक में हो।
९. दो शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों और शनि बलवान होकर छठे या आठवें में हो।
१०. भाग्येश के साथ लग्नेश हो, कर्मेश उच्चराशि में केन्द्र में हो, पंचमेश पर बृहस्पति की दृष्टि हो।
११. लग्न का चन्द्रमा मेष या वृश्चिक में पापग्रहों से दृष्ट हो।
१२. क्रूरग्रह दशम में हो, दशमेश एवं पंचमेश के साथ शनि बारहवें भाव में हो।
१३. मंगल लग्न में, अष्टमेश केन्द्र में तथा बृहस्पति तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें भाव में हो।
१४. लग्न का सूर्य दो पापग्रहों एवं शत्रुग्रहों की दो राशियों के मध्य हो।
१५. मिथुन लग्न में दो पापग्रहों के मध्य लग्नेश हो, तथा बृहस्पति चौथे में हो।
१६. लग्नेश पापग्रहों के साथ आठवें में हो और शुभग्रह केन्द्र में न हो।
१७. मंगल के साथ अष्टमेश लग्न में बैठा हो।
१८. लग्न में राहु, सातवें में बृहस्पति और उच्चराशि का शनि दसवें भाव में हो।
१९. मेष का पूर्ण चन्द्रमा लग्न में हो और उसको शुभग्रह देखते हों।
२०. लग्नेश पापग्रह के साथ आठवें में और शनि छठे में हो।
२१. लग्न में अकेला शनि हो तथा आठवें या बारहवें भाव में चन्द्रमा हो।

२२. धनु राशि का गुरु लग्न में हो और मंगल राहु के साथ आठवें में बैठा हो।
२३. अष्टमेश सातवें में और पापग्रहों से युक्त चन्द्रमा छठे या आठवें में हो।
२४. कर्क का चन्द्रमा लग्न में हो और सातवें में सूर्य और दसवें में शनि हो।
२५. अष्टमेश के साथ गुरु लग्न में हो।
२६. पापग्रहों के साथ कुम्भ का गुरु केन्द्र में हो।
२७. अष्टमेश सातवें में, पापग्रह से युक्त चन्द्रमा छठे में या आठवें में हो।
२८. चन्द्रमा के साथ सूर्य दसवें में हो, शनि लग्न में हो, गुरु चौथे भाव में हो।
२९. नीच राशि का शनि केन्द्र यात्रिकोण में और सभी शुभग्रह केन्द्र में हों।

दीर्घायु योग

१. लग्नेश केन्द्र में एवं पापग्रह छठे में हों।
२. लग्नेश एवं सभी शुभग्रह केन्द्र में हों।
३. अष्टमेश एवं सभी पापग्रह आपोक्लिम में हों।
४. लग्नेश शुभग्रहों के साथ हो, केन्द्र में शुभग्रहों और लग्नेश को बृहस्पति देखता हो।
५. लग्नेश केन्द्र में बृहस्पति एवं शुक्र के साथ हो।
६. तीन ग्रह उच्चराशि में हों, लग्नेश अष्टमेश के साथ हो और आठवें में पापग्रह न हों।
७. लग्नेश बलवान हो और तीन ग्रह उच्चराशि में हों।
८. लग्नेश बलवान हो और तीन ग्रह स्वराशि में हों।
९. उच्चराशि के किसी ग्रह के साथ शनि हो।
१०. उच्चराशि के किसी ग्रह के साथ अष्टमेश हो।
११. तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें में पापग्रह एवं केन्द्र या त्रिकोण में शुभग्रह हों।
१२. छठे, सातवें एवं आठवें में शुभग्रहों, तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें में पापग्रह हों।
१३. आठवें भाव में पापग्रह हों तथा दशमेश उच्चराशि में हो।
१४. अष्टमेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो।
१५. जन्मलग्न में द्विस्वभाव वाली राशि हो, लग्नेश केन्द्र, उच्चराशि या मूलत्रिकोण में हो।
१६. लग्न में द्विस्वभाव वाली राशि हो तथा लग्नेश से पहले, चौथे, सातवें एवं दसवें स्थान में पापग्रह हों।
१७. सूर्य, मंगल, शनि—तीनों चरनवांश में हों तथा बृहस्पति एवं शुक्र स्थिर नवांश में हों और शेष ग्रह द्विस्वभाव वाली राशियों के नवांश में हों।

१८. लग्न द्रेष्काण राशि एवं चन्द्र द्रेष्काण राशि ये दोनों चर हों तथा इनमें एक स्थिर दूसरी द्विस्वभाव वाली हो।
१९. लग्नेश एवं अष्टमेश की द्वाददांश राशि अचल हो।
२०. बुध, गुरु एवं शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो।
२१. लग्नेश बलवान होकर केन्द्र में बैठा हो और पापग्रहों से दृष्ट न हो।
२२. लग्नराशि का ग्रह एवं अष्टमेश और सूर्य परस्पर मित्र हों।
२३. लग्नेश अष्टमेश से एवं लग्न नवांशेश अष्टमेश के नवांशेश से अधिक बलवान हों।
२४. लग्नेश एवं लग्नेशधिष्ठित राशि पर केन्द्र में स्थित शुभग्रहों की दृष्टि हो।
२५. अष्टमेश केन्द्र में, त्रिकोण में या स्वराशि में तथा बारहवें भाव में उच्चराशि हो।
२६. लग्नेश तथा अष्टमेश केन्द्र-त्रिकोण में अपनी उच्चराशि में हो।
२६. अष्टमेश लग्न में हो और लग्नेश बृहस्पति तथा शुक्र से युक्त हो।
२७. अष्टमेश लग्न में हो और लग्नेश बृहस्पति एवं शुक्र से दृष्ट हो।
२८. अष्टमेश अपनी उच्चराशि में शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो और आठवें भाव का कारक ग्रह बलवान हो।
२९. लग्नेश अष्टमेश के साथ छठे भाव एवं आठवें भाव में हो तथा षष्ठेश या द्वादेश लग्नेश के साथ हो।
३०. अष्टमेश स्वराशि में हो।
३१. लग्नेश एवं लग्नेशाधिष्ठित राशीश ये दोनों चर राशि में हों।
३२. अष्टमेश एवं तृतीयेश केन्द्र त्रिकोण में हों अथवा नवमें एवं ग्यारहवें भाव में उच्चराशि हो।
३३. तृतीयेश एवं दशमेश केन्द्र या तृतीयभाव में आयुभाव के कारक ग्रह के साथ हो।
३४. लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश केन्द्र, त्रिकोण या बारहवें भाव में हो।
३५. शुभग्रह अपनी राशि में हो तथा अष्टमेश सातवें या आठवें भाव में हो।
३६. लग्नेश केन्द्र में राहु और शुक्र के साथ हो।
३७. लग्नेश केन्द्र में राहु और शुक्र से दृष्ट हो।
३८. स्वउच्चराशि स्थित किसी भी ग्रह की सूर्य, शनि एवं अष्टमेश पर दृष्टि हो।
३९. लग्न से छठे भाव तक सभी शुभग्रह बलवान स्थिति में हों तथा सातवें से बारहवें तक सभी पापग्रह निर्बल हों।
४०. केन्द्र में शुभग्रह हों, आठवें को छोड़कर पापग्रह हों और छठे में चन्द्रमा हो।

४१. लग्नेश से केन्द्र में बृहस्पति हो तथा तीसरे, छठे, ग्यारहवें एवं बारहवें भाव में पापग्रह हों।

अमितायु योग

१. कर्क का चन्द्रमा एवं बृहस्पति लग्न में, बुध एवं शुक्र केन्द्र में तथा शेष ग्रह तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें में हों।

२. सूर्य, मंगल एवं बृहस्पति-शनि के नवांश में नवमें भाव में बलवान हों।

३. सूर्योदय के समय जन्म हो और गुरु एवं शनि एक ही नवांश में नवम् या दशम् भाव में शुभग्रहों से दृष्ट हो।

४. मेष का अन्तिम नवांश लग्न में, बृहस्पति एवं शुक्र के साथ हो; वृष के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंहासनांश हो।

५. कर्क लग्न का गुरु गोप्ररांश में तथा शुक्र त्रिकोण के पारावतांश में हो।

निसर्गायु योग

इस योग की गणना मनुष्य की ठीक-ठीक आयु का ज्ञान करने के लिये की जाती है।

निसर्ग आयु चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
आयुवर्ष	२०	१	२	९	१८	२०	५०

अध्याय-८

रोग एवं दुर्घटना के मृत्युयोग

जब मृत्युयोग पर विचार कर लिया जाता है, तो रोग के उत्पत्तिकाल एवं योगों की गणना करने से उस आयुयोग की गणना के परिणाम की शुद्धता का भी ज्ञान हो जाता है। वैसे तो आयु का निर्धारण ही रोग के साध्य एवं असाध्य होने का ज्ञान करा देता है, तथापि रोगों की साध्यता का ज्ञान गणना के परिणाम को बल प्रदान करता है।

मृत्युदायक रोगों का विचार आठवें एवं तीसरे भाव के ग्रहों, राशियों, तृतीयेश एवं अष्टमेश की स्थितियों एवं मृत्युकारक योगों से किया जाता है। आठवें में कोई ग्रह न होने या किसी ग्रह की दृष्टि न होने पर रोग से मृत्यु-अमृत्यु की गणना तीसरे भाव से की जाती है। यदि तृतीय भाव में भी कोई ग्रह न हो और वह किसी ग्रह से दृष्ट न हो, तो आठवें की राशि से मृत्यु का विचार करना चाहिये। इसके सम्बन्ध मे जातक ग्रन्थों में इस प्रकार बताया गया है—

१. जन्मकुंडली में-शनि कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु होती है।
२. दो पापग्रहों के मध्य में स्थित चन्द्रमा कन्या राशि में हो तो रक्तविकार या शोथरोग से मृत्यु होती है।
३. द्वितीय स्थान में शनि, चतुर्थ में चन्द्रमा एवं दशम में मंगल हो तो शरीर में कीड़े पड़ने से मृत्यु होती है।
४. क्षीण चन्द्रमा पर बलवान् मंगल की दृष्टि हो तथा अष्टम्भाव में शनि हो तो गुदा रोग, कृमिरोग या दाह से मृत्यु होती है।
५. अष्टम्भाव में स्थित क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो तो गुदारोग, नेत्ररोग या शस्त्र के घाव से मृत्यु होती है।
६. लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।
७. सप्तमेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।
८. क्षीण चन्द्रमा अष्टम् में हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है।

९. अष्टम् स्थान में निर्बल सूर्य या मंगल हो तथा द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो पित्तरोग से मृत्यु होती है।
१०. अष्टमस्थान में जलचर राशि में चन्द्रमा या गुरु हो तो क्षयरोग से मृत्यु होती है।
११. अष्टम् स्थान में शुक्र हो और उसे पापग्रह देखते हों तो वातरोग, क्षय या प्रमेह से मृत्यु होती है।
१२. सूर्य के स्थान में बुध हो और उसे पापग्रह देखते हों तो त्रिदोष या ज्वर से मृत्यु होती है।
१३. अष्टम् स्थान में राहु हो और उसे पापग्रह देखता हो तो फोड़ा-फुंसी, गरमी या सर्पदंश से मृत्यु होती है।
१४. अष्टम् स्थान में राहु हो तो चेचक या पित्तरोग से मृत्यु होती है।
१५. लग्नेश यदि मेष के नवांश में हो तो तपज्वर से, वृष के नवांश में हो तो श्वास एवं शूल से, मिथुन के नवांश में हो तो सिर पीड़ा से, कर्क के नवांश में हो तो वात एवं उन्माद से, सिंह के नवांश में हो तो स्फोट से, कन्या के नवांश में हो तो मन्दाग्नि या गुप्तरोग से, तुला के नवांश में हो तो ज्वर से, वृश्चिक के नवांश में हो तो घाव से, धनु के नवांश में हो तो वातरोग से, मकर के नवांश में हो तो शूलरोग से, कुम्भ के नवांश में हो तो हिंसक जीव के काटने से तथा मीन के नवांश में हो तो ज्वर या अतिसार से मृत्यु होती है।
१६. क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य क्रमशः अष्टम्, दशम, लग्न एवं चतुर्थ स्थान में हो तो अनेक रोगों से मृत्यु होती है।
१७. क्षीण चन्द्रमा मंगल, शनि एवं सूर्य यदि दशम, नवम, लग्न एवं पंचम स्थान में हो तो अनेक रोगों से मृत्यु होती है।
१८. अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।
१९. अष्टमेश मंगल के साथ लग्न में हो तो स्फोटरोग से मृत्यु होती है।
२०. चन्द्रमा अष्टमेश में हो तथा राहु के साथ शनैश्चर हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है।
२१. लग्नेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हों तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।
२२. षष्ठभाव में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो कफ या अतिसार से मृत्यु होती है।
२३. अष्टम् स्थान में सूर्य एवं शनि हो तो विभूतिरोग से मृत्यु होती है।
२४. चतुर्थ भाव में शनि मंगल तथा दशम में शनि हो तो शूलरोग से मृत्यु होती है।

२५. क्षीण चन्द्रमा के साथ पापग्रह नवम, पंचम या लग्न में हो तो शूलरोग से मृत्यु होती है।

२६. चतुर्थ में रवि तथा दशम में मंगल हो और इनमें से किसी एक को क्षीण चन्द्रमा देखता हो तो शूलरोग से मृत्यु होती है।

दुर्घटना से मृत्यु के योग

१. लग्न एवं चतुर्थ स्थानों में से एक में सूर्य तथा दूसरे में मंगल हो तो पत्थर की चोट से मृत्यु होती है।

२. शनि, चन्द्रमा एवं मंगल क्रमशः चतुर्थ, सप्तम एवं दशम में हों तो कुएँ में गिरने से मृत्यु होती है।

३. लग्न में द्विस्वभाव राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।

४. मकर या कुम्भ राशि में स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तो फांसी से या जलने से मृत्यु होती है।

५. अष्टम, दशम, लग्न एवं चतुर्थ भाव में क्रमशः क्षीणचन्द्र, मंगल, शनि एवं सूर्य हो तो लाठी की चोट से मृत्यु होती है।

❑

अध्याय-९

भारतीय ज्योतिष में रोगों एवं दुर्घटनाओं के प्रकार

भारतीय ज्योतिष में रोगों पर दो दृष्टि से विचार करके उन्हें वर्गीकृत किया गया है। एक कारण की दृष्टि से, दूसरा प्रकृति की दृष्टि से।

१. कारण की दृष्टि से—कारण की दृष्टि से रोग एवं दुर्घटनायें दो प्रकार की मानी गयी हैं—

१. सहज अथवा जन्मजात

२. आगन्तुक अथवा वातावरणीय या भक्ष्य पदार्थों से उत्पन्न रोग (भक्ष्य पदार्थ में वायु तक की गणना की गयी है)।

२. प्रकृति की दृष्टि से—प्रकृति की दृष्टि से भी रोगों एवं दुर्घटनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है—

१. शारीरिक

२. मानसिक

शारीरिक या मानसिक-रोगों को लक्षणों के आधार पर अनेक नामों में वर्गीकृत किया गया है, जिसका विस्तृत विवरण आयुर्वेद में प्राप्त होता है।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सहज रोग उन जन्मजात रोगों से सम्बन्धित है, जो जन्म से ही होते हैं; जैसे 'अन्धत्व'। ज्योतिष में इसका कारण माता-पिता के पूर्व कर्म और जातक के पूर्व कर्म हैं। आगन्तुक रोगों का कारण उस शरीर द्वारा पूर्व में अर्जित कर्म है, जिसमें रोग होता है। इसलिये मैंने इन्हें 'कारण के आधार पर वर्गीकरण' माना है।

परिचय

१. सहजरोग—सहजरोग उन रोगों को कहते हैं, जो जन्मजात होते हैं। जैसे—अंगों का जन्म से ही विकृत होना, जन्मजात बधिरता, जन्मगत अन्धत्व आदि।

२. सहज-दुर्घटनायें—जो दुर्घटनायें शिशु के जन्म लेते समय हों, उन्हें सहज

या जन्मजातम दुर्घटनायें कहते हैं; जैसे—जन्म के समय उल्टा हो जाना, किसी अंग में आघात लगना, नाल का लिपट जाना, नाल काटने में गहरा व्रण आदि होना, गर्भकालीन दुर्घटनायें आदि।

३. आगन्तुक रोग—आगन्तुक रोग उन रोगों को कहते हैं, जो बालक के जन्म के पश्चात् बाहर से शरीर पर आक्रमण करते हैं, जैसे मलेरिया हो जाना, निमोनिया हो जाना आदि।

४. आगन्तुक दुर्घटनायें—आगन्तुक दुर्घटनायें उन दुर्घटनाओं को कहते हैं, जो जन्म के बाद आक्समिक आघात के रूप में शरीर या मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त करती हैं और जिनका पूर्वानुमान नहीं हो पाता।

आगन्तुक रोगों एवं दुर्घटनाओं के प्रकार

ज्योतिष में आगन्तुक रोगों को भी दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—

१. जिनके लक्षण और कारण प्रत्यक्ष हों।

२. जिनके लक्षण और कारण प्रत्यक्ष न हों।

१. प्रत्यक्ष कारण वाले रोग—इस वर्ग में उन रोगों को रखा गया है, जिनकी उत्पत्ति का कारण प्रत्यक्ष हो या ज्ञात हो। जैसे—मलेरिया—ज्ञात है कि यह मच्छर काटने से हुआ है। इसी प्रकार, दुर्घटना से हुए अंग-भंग, घाव, चोट आदि के रोग महामारी, भय या शाप से उत्पन्न रोग आदि।

२. अप्रत्यक्ष कारण वाले रोग—ऐसे रोग, जिनका कारण ज्ञात न हो, ज्वर और अचानक आये मानसिक आवेग आदि, जिनके कारण को ज्ञात करने के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षण करने आवश्यक हो जाते हैं, इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इसमें ऐसी दुर्घटनायें भी होती हैं, जिनका कारण ज्ञात नहीं होता। जैसे—चलते-चलते किसी ऐसे स्थान पर गिर जाना, जहाँ गम्भीर चोट लगे। अचानक ही रक्त आदि का स्राव होने लगना आदि। वैसे ये दुर्घटनायें भी रोगजन्य ही होती हैं।

साध्य एवं असाध्य रोग

ज्योतिष में एक और दृष्टि से रोगों का वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण का आधार यह बनाया गया है कि रोग ठीक होंगे या नहीं? इस आधार पर भी रोगों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।

१. साध्य-रोग

२. असाध्य-रोग

१. **साध्य-रोग**—वे रोग जो किसी उपचार-क्रिया के द्वारा ठीक हो जाते हैं; उन्हें 'साध्य-रोग' कहा गया है।

ज्योतिष में साध्य-रोगों की पहचान जन्म-कुंडली के आधार पर ही कर ली जाती है। यदि रोगकारक योग पर किसी शुभग्रह का प्रभाव हो, उसकी दृष्टि हो, तो रोग ठीक हो जाता है। इस स्थिति में आयुर्वेदिक औषधियों से रोगोपचार एवं ज्योतिषीय उपचार-क्रियाओं को करना चाहिये। इनका विवरण रोगों के साथ ही आगे दिया गया है।

२. **असाध्य-रोग**—वे रोग, जो उपचारक्रिया से ठीक नहीं होते, 'असाध्य-रोग' कहलाते हैं।

ज्योतिष के अनुसार यदि किसी रोगकारक ज्योतिषीय योग पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो और उसे कहीं से भी शुभबल प्राप्त नहीं हो रहा हो तथा उस पर पाप-ग्रहों की दृष्टि हो, तो रोग असाध्य होता है। ऐसे रोग उपचारक्रिया से ठीक नहीं होते; तथपि पापग्रहों के प्रभाव को कम करने को उपाय ज्योतिषीय क्रियाओं द्वारा किया जा सकता है।

इस वर्गीकरण पर ध्यान देने से आधुनिक वर्गीकरण से इसका अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस वर्गीकरण में रोगों को साध्य-असाध्य कोटि में नहीं बाँटा गया है, अपितु ज्योतिषीय योग को साध्य-असाध्य बताया गया है। इस व्याख्या के अनुसार एक साधारण फोड़ा भी असाध्य समझा जाने वाला कैंसर भी साध्य हो सकता है।

यद्यपि आयुर्वेद ने रोगों के आधार पर ही साध्य-असाध्य की व्याख्या की है, तथापि उसने भी 'प्राय:' शब्द का प्रयोग किया है और स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है कि 'प्रभु की महिमा अपरम्पार है; वह असम्भव से प्रतीत होने वाले संयोगों को भी सम्भव कर देता है'। ज्योतिषीय सिद्धान्तों के अनुसार रोग के आधार पर वर्गीकृत असाध्य रोग भी पापकारक ज्योतिषीय योग के कारण ही उत्पन्न होते हैं और उनकी साध्यता भी सम्भव है, यदि 'ज्योतिषीय योग' पर शुभग्रहों का समुचित प्रभाव पड़ रहा हो। यही कारण है कि जन्मबन्ध्या को भी पुत्रोत्पत्ति में सक्षम होते देखा गया है और कैंसर जैसे रोगों से भी लोगों को छुटकारा प्राप्त करते हुए देखा गया है। भले ही ऐसे उदाहरण नगण्य हों, पर हैं तो?

❑

अध्याय-१०

सहज मानसिक-रोग एवं दुर्घटनायें

सहज मानसिक-रोग उन रोगों को कहते हैं, जो जन्म से ही मतिहीनता, मतिभ्रम, मतिशून्यता, मानसिक जड़ता, मानसिक उत्तेजना आदि के रूप में व्याप्त होते हैं। कभी-कभी ऐसे रोग गर्भकालीन दुर्घटनाओं या जन्मकाल की दुर्घटनाओं के फलस्वरूप भी प्राप्त होते हैं। जैसे—माता ने सावधानी नहीं रखी और उसके गर्भ में चोट लगी या किसी ने दुष्टतावश चोट पहुँचा दी। अक्सर इससे शारीरिक क्षति होती है, पर मानसिक-क्षति भी हो सकती है। गर्भ के समय वज्रपात की कर्कश गर्जना, किसी वीभत्स दृष्य को देखना या कोई वीभत्स डरावनी फिल्म देख लेना भी इसका कारक बन जाता है। ये सभी दुर्घटनायें ही हैं।

इस प्रकार के जन्मगत मानसिक-रोग कई प्रकार के होते हैं। जैसे बच्चे की चेतना में शून्यता, उसकी प्रवृत्ति में उत्तेजना एवं हिंसात्मक क्रूरता, उसका उदासीन बुझा-बुझा सा रहना आदि। कालान्तर में ये रोग विकसित होकर पागलपन, पूर्ण चेतना शून्यत्ता आदि में परिवर्त्तित हो सकते हैं। कभी-कभी ये कम भी हो जाते हैं; पर जन्मगत सभी मानसिक-रोग असाध्य ही होते हैं। इनका सम्बन्ध ऊर्जा शरीर की जन्मजात संगठनात्मक विकृति से सम्बन्धित होता है और इन्हें कुछ विशिष्ट संयोगों के होने पर उपचार आदि के द्वारा कम तो किया जा सकता है, पर पूर्णतः ठीक नहीं किया जा सकता।

जन्मजात जड़ता के ज्योतिषीय योग

१. मंगल का मूलत्रिकोण में होना + राहु का मूलत्रिकोण में होना + सूर्य का नीच होना + राहु नीच राशि में हो।
२. लग्न में सूर्य + बारहवेंभाव में चन्द्रमा + त्रिकोण में मंगल + नीच राहु।
३. लग्न में सूर्य + तीसरे में बृहस्पति + त्रिकोण में चन्द्रमा।
४. केन्द्र में शनि और चन्द्रमा मंगल में हो।

५. तृतीय स्थान का स्वामी शनि एवं चन्द्रमा के साथ हो।

६. दूसरे स्थान में सूर्य, मंगल और शनि हों।

७. पंचम में शनि हो और उसकी दृष्टि लग्नेश पर हो, इसके साथ ही पाँचवेंभाव का स्वामी पाप या नीच ग्रह के साथ हो या उस पर उसकी दृष्टि पड़ रही हो।

८. सूर्य का लग्न में होना और बुध या राहु का पापित होना।

९. चन्द्रमा एवं राहु की युति हो।

१०. चन्द्रमा एवं मंगल की युति हो।

११. दूसरेभाव में पापित बुध एवं गुरु हों।

विशेष—(i) जन्मगत रोग प्राय: असाध्य होते हैं।

(ii) उपचार के लिये उपचार सम्बन्धी अध्याय देखें। यह अलग से दिया गया है।

(iii) रोगों की व्युत्पत्ति पर विचार गर्भाधान कुंडली एवं जन्मकुंडली दोनों के आधार पर करना उचित होता है।

❑

अध्याय-११

जन्मजात शारीरिक-रोग

जो रोग शरीर में जन्म समय ही विद्यमान होते हैं, उन्हें 'जन्मजात शारीरिक रोग' कहते हैं। ऐसे रोग कई प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ जन्मकाल या गर्भकाल की दुर्घटनाओं से भी सम्बन्धित होते हैं।

जन्मजात नपुंसकता एवं बन्ध्यापन के योग

१. सूर्य चौथे, चन्द्रमा पहले, शुक्र पाँचवें एवं शनि सातवेंभाव में हो, तो जातक नपुंसक होगा।
२. शुक्र दूसरे या छठेभाव में हो तथा बुध या मंगल अथवा दोनों का साथ न हो तथा आठवाँभाव रिक्त हो, तो नारी बन्ध्या होगी।
३. विषमराशि में सूर्य एवं चन्द्रमा स्थित हों और दोनों की दृष्टि एक-दूसरे पर हो, तो पुरुष नपुंसक होता है।
४. सूर्य समराशि में हो और मंगल विषमराशि में हो, जो सूर्य को देखता हो, तो पुरुष नपुंसक होता है।
५. विषमराशि में स्थित बुध एवं विषमराशि में ही स्थित शनि एक-दूसरे को देखते हों, तो भी पुरुष नपुंसक होता है।
६. चन्द्रमा और शनि की युति हो और बुध या शुक्र निर्बल या पापित हो।
७. विषमराशि में चन्द्रमा और बुद्ध हो तथा उन पर शुक्र एवं शनि की दृष्टि हो।
८. विषमराशि में स्थित चन्द्रमा और शनि एक दूसरे को देखते हों।
९. षष्ठेश लग्न में मिथुन या कन्या राशि के साथ हो तथा लग्नेश बुध के साथ हो और इनका शनि एवं मंगल से योग हो।

जन्मान्धता के रोग

१. बारहवेंभाव में सूर्य एवं चन्द्रमा स्थित हों और निर्बल हों।

२. सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह लग्न में हों और उनपर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।
३. सूर्य-चन्द्र की युति से स्थितभाव से आठवें स्थान में मंगल हो और वह कुंडली का छठा या बारहवाँ भाव हो।
४. लग्न से दूसरे स्थान में मंगल, छठे में चन्द्रमा, आठवें में सूर्य तथा बारहवें में शनि हो।
५. सूर्य, शुक्र या लग्नेश के साथ द्वितीयेश छठे, आठवें या बारहवेंभाव में हो।
६. मंगल एवं शनि त्रिकोण में हो तथा लग्न में निर्बल या पापित सूर्य हो।
७. सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश त्रिकस्थान में हों।
८. चन्द्रमा पापित हो, क्षीण हो, सूर्य निर्बल हो और इनमें से किसी पर शनि की दृष्टि हो या चन्द्रमा अथवा सूर्य के साथ राहु हो।
९. नीच चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो और बुध अशुभ या निर्बल हो।
१०. चन्द्रमा एवं शनि एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हों और सूर्य राहु से ग्रसित हो।

बाह्य नेत्र-विकृति के योग

जन्मजात बाह्य नेत्र-विकृति रोग से हमारा तात्पर्य उन नेत्र-विकृतियों से है, जो एक आँख के खराब होने, विकृत होने, भैंगापन, दृष्टि दुर्बलता आदि के रूप में जन्म से ही होते हैं।

१. बारहवेंभाव में चन्द्रमा दुर्बल हों।
२. बारहवेंभाव में सूर्य दुर्बल हो।
३. बारहवेंभाव में ये दोनों स्थित हों और दोनों ही क्षीण हों।
४. छठेभाव में कोई पापग्रह हो।
५. आठवेंभाव में कोई पापग्रह हो।
६. बारहवेंभाव में मंगल हो।
७. बारहवेंभाव में शनि हो।
८. सप्तम् भाव में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो और सप्तम् भाव में सिंहराशि हो।
९. सप्तम् भाव में सूर्य हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो साथ ही सप्तम् भाव में कर्कराशि भी हो।

जन्मगतबधिरतत्त्व के योग

१. षष्ठेश त्रिक्स्थान में कहीं हो और उस पर मंगल या शनि की दृष्टि हो।
२. नवें या पाँचवेंभाव में पापग्रह हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
३. षष्ठेश एवं बुध पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

४. बुध निर्बल ही और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
५. पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र एवं बुध शुत्रग्रहों के साथ हो।
६. बुध छठे एवं शुक्र दशवेंभाव में हो तथा जन्म रात्रि में हो।
७. पंचम्, नवम् एवं दशम् स्थान में पापग्रहों की दृष्टि हो।
८. बुध, सूर्य एवं शुक्र तीनों निर्बल हों या पापग्रहों से ग्रसित हों।
९. शनि की दृष्टि पंचम् एवं नवम् भाव पर हो और बुध पर पापग्रह की दृष्टि हो या उसका प्रभाव हो।

जन्मजात मूकरोग के योग

मूकरोग अर्थात् वाक्शक्ति का लोप होना अर्थात् गूँगापन या तुतलाना।

१. छठेभाव का अधिपति ग्रह और बुध दोनों लग्न में हों।
२. छठेभाव का अधिपति और बृहस्पति दोनों लग्न में हों।
३. दूसरेभाव का अधिपति एवं बृहस्पति दोनों त्रिक्स्थान में हों।
४. कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थिति बुध को अमावस्या का चन्द्रमा या शनि देख रहा हो।
५. सभी पापग्रह वयसन्धि में हों और क्षीण चन्द्रमा वृष राशि में हो।

जन्मजात अपंगता योग

अपंगता के कई प्रकार होते हैं। जैसे—सभी अंगों का हीन, क्षीण या विकृत होना; किसी विशेष अंग हाथ-पैर आदि का विकृत होना, लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ा आदि होना।

१. यदि चन्द्रमा कर्कराशि में हो और उस पर मंगल एवं शनि या राहु की दृष्टि हो, तो शिशु कुबड़ा होता है।
२. यदि लग्नेश मेष राशि में हो या वृश्चिक राशि चतुर्थ भाव में हो, तो बालक कुबड़ा होता है।
३. चतुर्थ भाव में शुक्र, दिन में जन्म और शनि, मंगल, बुध और बृहस्पति की युति हो—तो शिशु लूला होता है।
४. शनि एवं मंगल दोनों छठेभाव में राहु से प्रभावित हों।
५. छठेभाव में शनि अपनी शत्रुराशि एवं शुक्र के साथ बैठा हो, तो भी शिशु लूला होता है।
६. सूर्य, चन्द्र एवं शनि छठे या आठवें स्थान में हो, तो भी बालक लूला होता है।
७. चन्द्रमा एवं शनि पापग्रहों के साथ या उनसे दृष्ट हों तथा मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर या मीन राशि में हों; तो शिशु लंगड़ा उत्पन्न होता है।

८. शनि और छठेभाव का कारक अधिपतिग्रह-दोनों सम्मिलित रूप से १२वें भाव में हों, और पापग्रहों के प्रभाव में हों तो भी शिशु जन्मजात लंगड़ा होता है।
९. पंचम् एवं नवम् भाव में चन्द्रमा या शनि पापग्रहों के साथ हों या उनसे दृष्ट हों, तो जन्म लेने वाला शिशु लंगड़ा होता है।
१०. लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो और उस पर पापग्रहों का प्रभाव हो, सूर्य निर्बल हो, तो बालक का सिर विकसित नहीं होता।
११. लग्न में बुध-शनि हो और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो बालक पूर्णतः अपाहिज होता है अर्थात् उसके हाथ एवं पैर नहीं होते।
१२. पंचम् भाव में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो हाथ नहीं होते।
१३. नवम् स्थान में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो शिशु के पैर नहीं होते।
१४. सप्तम् स्थान में निर्बल शनि राहु या मंगल के साथ हो, तो अंगहीन बालक का जन्म होता है।
१५. दशम स्थान में चन्द्रमा, सप्तम् में मंगल, एवं द्वितीयस्थान में सूर्य हो, तो बालक के हाथ-पैर नहीं होते।
१६. नवम् स्थान में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो अंग दुर्बल होते हैं।
१७. शनि के साथ बुध-मंगल या बृहस्पति-शुक्र की युति हो, तो सन्तान जन्मजात हीन अंग होगी।
१८. मंगल एवं बृहस्पति छठे, तथा बारहवें में हों, तब भी सन्तान के अंग हीन होंगे।

अध्याय-१२

प्रत्यक्ष आगन्तुक रोग एवं दुर्घटनायें

हम पूर्व ही कह आये हैं कि वे रोग, जिनका कारण प्रत्यक्ष दिखायी देता है, प्रत्यक्ष आगन्तुक रोगों की श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार वे दुर्घटनायें, जो कारण के साथ दृष्टिगत होती हैं, प्रत्यक्ष आगन्तुक दुर्घटनायें कही जाती हैं।

मानसिक-रोग

ज्योतिष में कई प्रकार के मानसिक-रोगों का विश्लेषण किया गया है; जैसे—शापजन्य, भयजन्य, परिस्थितिजन्य एवं अभिचारजन्य।

शापजन्य मानसिक-रोग

माता-पिता, गुरु, श्रेष्ठ पुरुष, देवता आदि के प्रति किया गया निन्दनीय कर्म अपना फल अवश्य छोड़ता है और उनकी आत्मा के दु:खी होने से जो तरंगें उत्पन्न होती हैं; वे ही श्राप हैं। ऐसे श्रेष्ठजन भले ही प्रकट में श्राप न दें, तो भी इनके मानसिक संवेग का प्रभाव पड़ता है और इस प्रभाव से व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन नष्ट हो जाता है।

भयजन्य मानसिक-रोग

कोई व्यक्ति जिस वातावरण में रह रहा है, वहाँ किसी कारणवश या किसी व्यक्ति के व्यवहार से या किसी वास्तविक या काल्पनिक भय से अतिशय भयभीत हो जाये, तो वह मानसिक संतुलन खो सकता है।

परिस्थितिजन्य मानसिक-रोग

एकाएक लगने वाली कोई शारीरिक या मानसिक चोट, परिस्थितियों से उत्पन्न निराशा भी मनुष्य के मानसिक-संतुलन को नष्ट कर देती है।

अभिचारजन्य मानसिक-रोग

ऐसे मानसिक-रोग, जो तांत्रिक-क्रियाओं के द्वारा उत्पन्न हुए हों अभिचार जन्य मानसिक-रोग कहलाते हैं। इनका उपचार भी इसी प्रकार किया जाता है।

शापजन्य मानसिक-रोग के योग

क्या श्राप में कोई शक्ति है? क्या आशीर्वाद में कोई शक्ति है?...आज के अनेक भौतिकवादी वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में प्रश्न करने लगेंगे; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय 'तत्त्वविज्ञान' ऊर्जा के विभिन्न रूपों का विज्ञान है, जिसमें मानसिक-तरंगों को प्रभाव भी एक शाखा के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। इसमें बताया गया है कि विचार और भावनाओं की उत्पत्ति ख्यालों में नहीं होतीं, अपितु ये एक प्रकार की मानसिक-तरंगें हैं, जो जब उत्पन्न होती हैं, शरीर-चेतना में व्याप्त होकर वातवरण में प्रसारित होने लगती हैं। ये तरंगें चैतन्य होती हैं और अपने लक्ष्य को ढूँढकर भावनाओं के अनुरूप उस पर प्रभाव डालती हैं। (इसके लिये पढ़िये शीघ्र प्रकाश्य लेखक कृत 'भारतीय ऊर्जा-तरंगों का विज्ञान') श्राप और आशीर्वाद का प्रभाव इसी प्रकार प्रभावित करता है। इसीलिये भारतीय आचार संहिता में नम्रता, प्रेम, गुरुजनों के प्रति आदर और कोमल वाणी का उपदेश दिया गया है। किसी को नाराज ही न होने दो, वे तुम्हें शाप क्यों देंगे? जब एक लाख आदमी तुम्हारे लिये भला सोचेंगे, तो निश्चय ही तुम्हारा भला होगा।

परन्तु ऐसा होता नहीं है। अपने अहंकार और व्यक्तित्व को सर्वोपरि समझने वाला, स्वयं को ही सर्वज्ञाता, सर्वगुण सम्पन्न समझने वाला मानव; अपनी अज्ञानता के वशीभूत होकर सदा दूसरों का अपमान करने में प्रवृत्त रहता है। वह शिष्टाचार और व्यवहार का झूठा मुखौटा ओढ़े रहता है, क्योंकि समाज में सभ्य बने रहने के लिये यह आवश्यक है। वह मानसिक रूप से गुरुजन (श्रेद्धेय व्यक्तियों), माता-पिता, मित्र, पत्नी, या पति आदि का अपमान करता ही रहता है। इस अपमान की प्रतिक्रिया के रूप में अपमानित व्यक्ति में जो मानसिक-तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे उस व्यक्ति के किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करने पर भी अपने लक्ष्य पर प्रहार करती हैं। यदि कोई श्रेद्धेय या निर्दोषव्यक्ति आत्मिक रूप से दु:खी होकर बिलबिला उठे, तो उसकी मुस्कुराहट आपको उसके क्रोध की प्रतिक्रिया से बचा सकती है, उसके क्रोध की तरंगों से नहीं।

भारतीय ज्योतिष में आगन्तुक मानसिक-रोग का एक कारण यह भी बताया गया है। गुरुजनों एवं देवताओं के श्राप से। यह श्राप उनके अपमान से उत्पन्न होता है। वैदिक देवता 'ऊर्जा के ही विभिन्न स्वरूपों के प्रतीक हैं।'—इनका अपमान करने का अर्थ है, इन तरंगों के भाव के विपरीत भाव। इस प्रकार ये कल्याणकारी तरंगें आपके शरीर तक पहुँचेंगी ही नहीं और आप रोगग्रस्त हो जायेंगे।

भारतीय ज्योतिष में बताया गया है कि ऐसा स्वत: नहीं होता। जीव के

पूर्वजन्म और इस जन्म के कर्मों के संस्कार ऐसा ग्रह योग बनाते हैं कि उसकी बुद्धिभ्रष्ट हो जाती है और अपमान एवं निन्दा की प्रवृत्ति तथा अहंकार से ग्रसित हो जाता है। इस प्रकार के मानसिक-रोग की उत्पत्ति के कारण निम्नलिखित ग्रहयोग बताये गये हैं—

१. लग्न में कोई चल (चलायमान) राशि हो, लग्नेश कोई पापग्रह हो या पापग्रह के साथ हो और सातवें स्थान में शनि हो।
२. लग्न, चतुर्थभाव या दशमभाव में गुरु हो और केन्द्र में गुलिक हो।

भयजन्य मानसिक-रोग के योग

यदि कोई व्यक्ति निरन्तर भय या मानसिक-चिन्ता अथवा तनाव में रहे या अक्समात ही कोई ऐसा गहरा भाव आघात करे, तो वह पागल हो जाता है। इस लगातार भय या तनाव से या ऐसे आक्समिक आघात से जो मानसिक-तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे सम्पूर्ण आज्ञाचक्र (वह बिन्दु जहाँ शरीर को नियंत्रण करने वाली ऊर्जा तरंगें उत्पन्न होती हैं) को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं। ज्योतिष में इसके लिये निम्नलिखित कारक योग बताये गये हैं—

१. राहु का चौथेभाव में स्थित होना, राशि का मेष होना और नीच मंगल का लग्न में होना।
२. चन्द्रमा की राशि में राहु हो और सूर्य क्षीण हो या मंगल अथवा शनि की पापदृष्टि से प्रभावित हो, लग्न में वृष हो।
३. राहु आठवेंभाव में हो और सूर्य पर किसी अन्य नीच पापग्रह का प्रभाव हो, लग्न में वृष हो।
३. दूसरेभाव में केतु हो, सूर्य पर पापग्रह की दृष्टि हो या चन्द्रमा नीच हो और लग्न में वृष हो।
४. केतु सातवेंभाव में हो, नीच मंगल की दृष्टि सूर्य पर हो और वृष लग्न में हो।

आक्समिक मानसिक-रोग के योग

यह भयजन्य-रोग का ही एक प्रकार है। किसी मानसिक-आघात से या मस्तिष्क पर लगी चोट से भी मनुष्य मानसिक-रोग से ग्रसित हो जाता है। इस प्रकार की दुर्घटनाओं के लिये मंगल, शनि और केतु के योग कारक होते हैं। इसमें उपर्युक्त योग एवं सिर में चोट लगने के योग होते हैं, जो आगे दिये गये हैं।

अभिचारजन्य मानसिक-रोग के योग

अभिचार उन तांत्रिक या ग्रह्य क्रियाओं एवं अनुष्ठान को कहते हैं; जिनके

द्वारा घातक ऊर्जातरंगों से किसी व्यक्तिविशेष को प्रभावित किया जाता है। इस प्रकार की क्रियाओं के द्वारा ऐसे जीवों के सूक्ष्म ऊर्जा शरीरों का भी प्रयोग किया जाता है; जिनके स्थूल-शरीर नष्ट हो गये हैं। इन क्रियाओं को तांत्रिक-क्रियायें एवं इन अशरीरी ऊर्जाशरीरों को प्रेतात्मा कहा जाता है। ये स्वयं भी प्रकोपित करते हैं और शत्रुओं द्वारा भी भेजे जाते हैं। ज्योतिष में इनके योग निम्नलिखित बताये गये हैं—

१. लग्न में चल राशि हो, उस पर छठेभाव के कारक की दृष्टि हो तथा मंगल ग्यारहवें भाव में हो।
२. सातवेंभाव में दोहरे स्वभाववाली राशि हो, नवमेंभाव में स्थिर राशि हो एवं इन पर छठेभाव के कारक ग्रह या मंगल की दृष्टि हो।
३. छठेभाव का कारक ग्रह सातवें या दशवेंभाव में हो और लग्न पर मंगल की दृष्टि हो।
४. लग्न में चलराशि हो, सप्तम्भाव में शनि हो, तथा चन्द्रमा पर पापग्रहों की छाया हो, तो भूत, प्रेत, पिशाच, प्रेतनी, ब्रह्मपिशाच आदि का प्रकोप होता है।
५. लग्न में शनि और राहु साथ हों, तो भी भूत, प्रेत, पिशाच आदि का प्रकोप होता है।
६. केतु लग्न में स्थित हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो पिशाच-प्रकोप होता है।
७. छठे स्थान में राहु-केतु साथ हों और उन पर पापग्रहों का प्रभाव हो, तो भी पिशाचरोग होता है।
८. आठवें स्थान में क्षीणचन्द्र के साथ शनि हो, तो भी पिशाचरोग होता है।

प्रत्यक्ष आगन्तुक शारीरिक-रोग एवं दुर्घटनायें

प्रत्यक्ष आगन्तुक शारीरिक-रोगों में वे रोग हैं, जिनका आक्रमण शरीर पर होता है तथा उनका स्वरूप एवं कारण प्रत्यक्ष रूप से अनुभूति में आता है। ऐसे आकस्मिक आघात से जो शारीरिक कष्ट होता है उसे दुर्घटनाओं के रूप में व्यक्त किया जाता है।

दुर्घटना एवं दुर्घटना से उत्पन्न रोग

शरीर के किसी अंग में अक्समात चोट लग जाये, वह टूट जाये, कट जाये, कुचल जाये, जल जाये, त्वचा आदि छिल जाये, तो उसे दुर्घटना कहते हैं। दुर्घटना मृत्युकारक भी हो सकती है और पीड़ादायक भी। इन चोटों आदि से अक्सर

गम्भीररोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके लिये ज्योतिष में निम्नलिखित योग बतलाये गये हैं—

१. मंगल एवं लग्नेश त्रिक्-स्थान पर हो, तो शस्त्र से दुर्घटनाजन्य घाव लगता है।
२. छठेभाव का कारक ग्रह यदि सूर्य के साथ लग्न में हो, तो सिर में चोट लगती है।
३. छठेभाव का कारक यदि सूर्य के साथ आठवेंभाव में हो, तो सिर में चोट लगती है।
४. छठेभाव का कारक यदि चन्द्रमा के साथ लग्न में हो, तो मुखड़ा घायल होता है।
५. छठेभाव का कारक यदि चन्द्रमा के साथ आठवेंभाव में हो, तो मुखड़ा घायल होता है।
६. छठेभाव का कारक यदि बुद्ध के साथ लग्न में हो, तो वक्ष पर चोट लगती है।
७. छठेभाव का कारक यदि बुद्ध के साथ आठवेंभाव में हो, तो भी वक्ष पर चोट लगती है।
८. उपर्युक्त स्थिति (अर्थात् छठेभाव का कारक आठवेंभाव या लग्न में) यदि गुरु, शुक्र या शनि के साथ हो, तो क्रमशः नाभि, नाभि से कमर जांघों तथा पैरों में चोट लगती है।
९. बारहवेंभाव में चन्द्रमा और बृहस्पति (गुरु) तथा तीसरे, छठे या ग्यारहवें भाव में बुध हो, तो गुदा में चोट लगती है।
१०. केतु और मंगल सातवेंभाव में हों, तो शरीर में चोट लगती है।
११. मंगल वृश्चिक राशि में हो और उन पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो, तो शरीर में चोट लगती है।

चोट के अंगों का निर्धारण

चोट के अंगों के निर्धारण में निम्नलिखित योगों का महत्त्व है—

(क) याद छठभाव म निम्नालाखत राश पापग्रह क साथ हा—

राशि	अंग
मेष	सिर
वृष	मुख
मिथुन	हाथ
कर्क	वक्ष
सिंह	पेट

कन्या	कमर
तुला	वस्ति
वृश्चिक	गुप्तांग
धनु	ऊरु
मकर	जानु
कुम्भ	जंघाओं
मीन	पैरों

(ख) यदि छठेभाव का कारक ग्रह निम्नलिखित ग्रहों के साथ छठे या आठवेंभाव में हो—

ग्रह	अंग
चन्द्रमा	कान, नाक, गला
मंगल	गुप्तांग
बुध	कन्धों
गुरु	बाजू
शुक्र	आँखों
शनि	पैरों
राहु	तलुवे
केतु	पसली

(ग) यदि छठेभाव का कारक ग्रह निम्नलिखित ग्रहों के साथ लग्न में हो—

ग्रह	अंग
चन्द्रमा	नाक, कान, गले, मस्तक
मंगल	गुदा
बुध	हाथ
गुरु	बाजुओं, बगल
शुक्र	नेत्र, कमर
शनि	पैरों
राहु	तलुवे
केतु	पसली

चोट के प्रत्यक्ष कारक

ज्योतिष में चोट के कारक को ग्रहों राशियों आदि का योग बताया गया है; किन्तु इसके प्रत्यक्ष रूप भी होते हैं, जैसे—पत्थर से चोट लगना, तलवार से घाव लगना आदि। इसके ज्ञान के लिये ज्योतिष में निम्नलिखित योगों का उल्लेख किया गया है—

१. यदि सूर्य बलवान हो, तो चोट के उपर्युक्त योग में लकड़ी या पशु से चोट लगेगी।
२. यदि चन्द्रमा बलवान हो, तो पशु के सिर या जलचर पशु से चोट लगेगी।
३. यदि मंगल बलवान हो तो अग्नि या शस्त्र से दुर्घटना होगी।
४. यदि बुध बलवान हो, तो ऊपर से गिरकर चोट लगेगी।
५. शनि बलवान हो, तो पत्थर या लोहे या लोहे के शस्त्र से चोट लगेगी।
६. दशम् स्थान में सूर्य और चौथे स्थान में मंगल हो तो पत्थर से चोट लगती है।
७. मंगल एवं सूर्य दोनों चौथेभाव में हों, तो पत्थर से चोट लगती है।
८. दशम्भाव का कारकग्रह यदि चौथेभाव के कारकभाव के साथ हो, तो पत्थर से चोट लगती है।
९. राहु और शनि के साथ चौथेभाव का कारक ग्रह हो या एक-दूसरे को देख रहे हों, तो पत्थर से चोट लगती है।
१०. सातवें या ग्यारहवें भाव में राहु हो, तो लकड़ी या लाठी से चोट लगती है।
११. ग्यारहवें स्थान में सूर्य एवं मंगल हो, तो शस्त्र या अस्त्र से चोट लगती है।

दुर्घटना में मृत्युयोग

१. मेष या वृश्चिक राशि में दो पापग्रहों के बीच चन्द्रमा हो, तो कटने या जलने से मृत्यु होती है।
२. मकर या कुम्भ राशि में दो पापग्रहों के बीच चन्द्रमा हो, तो फाँसी लगने, गला घुटने या जलने से मृत्यु होती है।
३. चौथेभाव में सूर्य दशमभाव में मंगल और इस पर क्षीण चन्द्रमा की दृष्टि हो, तो लकड़ी, लाठी या लकड़ी की किसी वस्तु से चोट लगने पर मृत्यु होती है।
४. लग्न में दोहरी प्रकृतिवाली राशि में चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है। सूर्य भी इस स्थिति में हो, तो यही होता है।
५. कारकाश में ग्रलिक होने पर विष खाने से मृत्यु होती है।
६. कारकांश में सूर्य एवं राहु हो तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो, तो साँप के डँसने से मृत्यु होती है।
७. चौथे या दशम्भाव में सूर्य एवं मंगल हो, तो पत्थर से चोट लगने से मृत्यु होती है।
८. जिस नवांश में ग्रलिक हो, उससे सातवीं राशि में मंगल होने पर युद्ध में शस्त्राघात से चोट लगने से मृत्यु होती है।
९. जिस नवांश में ग्रलिक हो, उससे सातवीं राशि में शनि हो, तो सर्प या चोरों के द्वारा डँसने या शस्त्राघात से मृत्यु होती है।

१०. जिस नवांश में ग्रलिक हो, उससे सातवीं राशि में सूर्य हो, तो कानून से, चन्द्रमा हो, तो जल में डूबने से मुत्यु होती है।
११. लग्न में शनि, चौथेभाव में सूर्य, आठवेंभाव में क्षीण चन्द्रमा और दशवेंभाव में मंगल हो, तो लकड़ी से चोट लगकर मृत्यु होती है।
१२. लग्न में शनि, पाँचवें में सूर्य, नवमें में मंगल और दशवें में क्षीण चन्द्रमा हो, तो जलने से मृत्यु होती है।
१३. लग्न में मंगल, सातवेंभाव में सूर्य एवं दशवेंभाव में शनि हो, तो शस्त्राघात से मृत्यु होती है या अग्नि दुर्घटना अथवा राजकीय कानून के दंड से।
१४. चौथेभाव में मंगल एवं दशवें में सूर्य हो, तो वाहन दुर्घटना से मृत्यु होती है।
१५. लग्न में शनि, पाँचवेंभाव में सूर्य, नवमें भाव में मंगल एवं दशवें स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो, तो जलने से मृत्यु होती है।
१६. लग्न में सूर्य, चन्द्र एवं शनि तथा सातवेंभाव में मंगल हो, तो यांत्रिक दुर्घटना से मृत्यु होती है।
१७. लग्न में सूर्य, पाँचवेंभाव में मंगल, चौथेभाव में क्षीण चन्द्रमा एवं आठवेंभाव में शनि हो, तो पक्षियों या जन्तुओं के मांस नोंचने से मृत्यु होती है।
१८. लग्न में सूर्य, पाँचवेंभाव में मंगल, आठवेंभाव में शनि एवं नवमें भाव में क्षीण चन्द्रमा हो, तो ऊँचे स्थान से गिरकर मृत्यु होती है।
१९. आठवेंभाव में शनि हो तथा क्षीण चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो, तो शस्त्र की चोट लगने से मृत्यु होती है।
२०. लग्न में सूर्य हो तथा सातवेंभाव में चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।
२१. आठवें स्थान में क्षीण चन्द्रमा के साथ मंगल हो, तो भूत-प्रेत, पिशाच आदि की पीड़ा से मृत्यु होती है।
२२. आठवेंभाव में क्षीण चन्द्रमा के साथ शनि हो, तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।
२३. आठवेंभाव में क्षीण चन्द्रमा के साथ राहु हो, तो आग में जलने से मृत्यु होती है।
२४. लग्न में बुध, चौथेभाव में मंगल, दशवें में सूर्य हो, तो सींग वाले पशुओं के आक्रमण से मृत्यु होती है।
२५. दूसरेभाव में चन्द्रमा, चौथेभाव में मंगल एवं दशवें में सूर्य हो, तो वाहन दुर्घटना में मृत्यु होती है।
२६. लग्न एवं आठवेंभाव का कारक ग्रह शनि और राहु के साथ हो, तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।

२७. शनि की राशि में केतु एवं मंगल के साथ लग्न का कारक हो, तो आग में जलने से मृत्यु होती है।
२८. चौथेभाव में सूर्य, आठवें में शनि एवं दशवे में चन्द्रमा हो, तो लकड़ी में या ईंट आदि के मलबों में दबकर मृत्यु होती है।
२९. लग्न में तीसरे एवं आठवेंभाव का कारक हो, तो आग में जलने से मृत्यु होती है।

गम्भीर दुर्घटना: अंग-भंग के योग

१. चन्द्रमा एवं मंगल दोनों एक साथ सातवें या आठवेंभाव में हों, तो हाथ कट या नष्ट हो जाता है।
२. बुध शनि एवं राहु दशवेंभाव में हों, तो पैर कट या नष्ट हो जाता है।
३. आठवेंभाव में शनि एवं दशवेंभाव में गुरु हो, तो हाथ कट जाता है।
४. गुरु या शनि दोनों तीसरेभाव में एवं सूर्य आठवेंभाव में हो, तो हाथ कट जाते हैं।
५. गुरु या शनि नवमें में सूर्य आठवें में हो, तो भी हाथ कट जाते हैं।
६. गुरु या शनि नवमें में और सूर्य बारहवें भाव में हो, तो भी हाथ कट जाते हैं।
७. गुरु या शनि तीसरे में और सूर्य बारहवें में हो, तो भी हाथ कट जाते हैं।
८. आठवेंभाव के कारक पर शुक्र की दृष्टि हो और सूर्य के साथ शनि तथा राहु हो, तो सिर कट जाता है।
९. आठवें भाव पर शुक्र की दृष्टि हो और छठेभाव में कारक के साथ सूर्य हो, तो सिर कट जाता है।
१०. लग्न में मंगल की राशि या उसके नवांश में सूर्य हो तथा क्षीण चन्द्रमा, बुद्ध और राहु सिंह राशि में हो, तो पेट फट जाता है।
११. लग्न में शनि शुक्र कन्या राशि में तथा राहु और क्षीण चन्द्रमा सातवेंभाव में हो, तो हाथ-पैर दोनों कट जाते हैं।
१२. लग्न में शनि हो, जिस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तथा निर्बल चन्द्रमा राहु एवं सूर्य के साथ हो, तो शस्त्राघात से कोख (कुक्षि) में गम्भीर घाव लगता है।
१३. लग्न में शनि हो, चन्द्रमा के साथ राहु हो और अमावस्या की तिथि में जन्म हो, तो भी शस्त्राघात से कुक्षि घायल हो जाती है।
१४. ग्यारहवें भाव में सूर्य एवं मंगल हो तो शस्त्र से गम्भीर घाव लगता है।

विभिन्न दुर्घटनाओं के अन्य योग

जन्तु से

१. छठे या आठवें स्थान में सूर्य और चन्द्रमा हों, तो सिंह के द्वारा या हाथी या सर्प के आक्रमण से गम्भीर घाव लगता है। मृत्यु भी हो सकती है।
२. चौथेभाव में मंगल एवं दशवेंभाव में शनि हो, तो भी सिंह से मृत्युभय होता है।
३. राहु एवं शुक्र दशवेंभाव में हो, तो साँप के डँसने से मृत्यु होती है।
४. कारकांश का सूर्य पापग्रहों के प्रभाव में हो, तो भी सर्पदंश से मृत्यु होती है।
५. चौथेभाव में मंगल एवं दशवेंभाव में सूर्य हो, तो भी सर्पदंश से मृत्यु होती है।
६. सातवेंभाव में रवि और दशवेंभाव में गुरु और मंगल हो, तो कुत्ते के काटने से मृत्यु होती है।
७. लग्न पर मंगल एवं सूर्य की दृष्टि हो और किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो, तो साँड के द्वारा लगायी गयी चोट से मृत्यु होती है।
८. राहु दूसरेभाव में हो और वह शनि से युक्त या दृष्ट हो, तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।
९. लग्न में राहु के साथ तृतीय भाव का कारक हो, तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।
१०. छठेभाव का कारक राहु और केतु के साथ हो।
११. सूर्य और बुध आठवेंभाव में हों।
१२. दूसरेभाव में शनि हो, तो कुत्ता काटता है।
१३. शनि-धनेश की युति हो या इन दोनों में दृष्टि-सम्बन्ध हो, तो कुत्ता काटता है।
१४. लग्न में बृहस्पति तीसरेभाव के कारक के साथ हो, तो सींगवाले पशु से गम्भीर चोट लगती है।
१५. राहु, चन्द्रमा या सूर्य के साथ कर्क या सिंह राशि में हों, तो भी सींगवाले पशु चोट पहुँचाते हैं।
१६. लग्न एवं छठेभाव का कारक बृहस्पति के साथ हो, तो हाथी से चोट पहुँचती है।
१७. लग्न एवं छठेभाव का कारक बृहस्पति चन्द्रमा के साथ हो, तो घोड़े से चोट पहुँचती है।
१८. सूर्य के साथ छठेभाव का कारक धनभाव में हो, तो लोमड़ी, भेड़िये आदि से काटा जाता है।
१९. ग्रलिक एवं मंगल दोनों दूसरे एवं आठवेंभाव में हों और इन पर धनभाव के कारक की दृष्टि हो तो लोमड़ी, भेड़िये आदि से काटा जाता है।

जल से डूबकर मृत्यु

१. कारकांश में कर्क हो।
२. लग्न में पापग्रह प्रभावी चन्द्रमा हो।
३. आठवेंस्थान में चन्द्रमा हो।
४. लग्न का कारक निर्बल हो और चौथेस्थान में पापग्रह हो।
५. चौथेभाव का कारक निर्बल हो और इस भाव में पापग्रह हो।
६. चौथेभाव का कारक पापग्रह के साथ केन्द्र में हो।
७. लग्न-कारक और चौथेभाव का कारक दोनों ही चौथेभाव में हों और इन पर दशवेंभाव के कारक की दृष्टि हो।
८. जिस राशि में चौथेभाव का कारक हो, उस राशि का स्वामी ग्रह उसी कारक़ ग्रह के प्रभाव में हो।
९. नीच, शत्रु, निर्बल या अस्त होती हुई राशि में स्थित चौथेभाव का कारक आठवें या चौथेभाव में चन्द्रमा की राशि में स्थित हो।

अग्नि एवं दुष्टशत्रु अन्य आक्रमण के योग

१. लग्न, दूसरे, सातवें या आठवेंभाव में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो।
२. लग्न, दूसरे, सातवें या आठवेंभाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।
३. लग्न, छठे, सातवें या बारहवेंभाव में मंगल के साथ ग्रलिक हो और उन पर सूर्य का प्रभाव हो।
४. छठेभाव का कारक, शनि एवं मंगल साथ-साथ हों।
५. छठेभाव का कारक, राहु एवं केतु के साथ हो।
६. नवेंभाव का कारक छठेभाव पर हो और उस पर छठेभाव के कारक की दृष्टि हो।
७. छठेभाव का कारक मंगल के साथ हो।
८. लग्न में क्रूर एवं पापग्रह का साथ हो और वे पापग्रह या ग्रहों की दृष्टि से युक्त हों।
९ मंगल आठवेंभाव में हो।
१०. बारहवेंभाव में सूर्य एवं मंगल हों।

विषयोग

१. कारकांश में ग्रलिक हो।
२. ग्यारहवेंभाव में मंगल-सूर्य की युति हो।
३. छठेभाव में चन्द्रमा-बुध की युति हो।

४. आठवेंभाव में चन्द्रमा-बुध की युति हो।
५. आठवेंभाव में सूर्य-बुध की युति हो।

विभिन्न प्रत्यक्ष रोगों के योग

कुष्ठरोग

१. सूर्य, शुक्र एवं शनि तीनों साथ हों।
२. शनि, मंगल, चन्द्रमा एवं शुक्र-ये चारों पापग्रहों से युक्त या दृष्ट होकर जलराशि में स्थित हों।
३. सूर्य, मंगल एवं शनि तीनों एक साथ हों।
४. चन्द्रमा, मंगल और शनि मेष या वृष राशि में हों।
५. सूर्य सिंह राशि में हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो।
६. सूर्य मंगल की राशि में हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो।
७. चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि-कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में हों।
८. चन्द्रमा, मिथुन, कर्क या मीन में हो या उसके नवांश में हो और उस पर मंगल या शनि की दृष्टि हो।
९. बुध मेष में, चन्द्रमा दशवेंभाव में एवं किसी भी भाव में शनि-मंगल की युति हो।
१०. लग्न में मंगल, चौथेभाव में शनि एवं आठवेंभाव में सूर्य हो।
११. वृष, कर्क, वृश्चिक या मकर राशि में स्थित पापग्रहों से त्रिक्स्थान भरे हों या उस पर इनकी दृष्टि हो।
१२. चन्द्रमा, बुध एवं लग्न का कारक तीनों राहु-केतु के साथ हों।
१३. मंगल के साथ षष्ठेश लग्न में हो।
१४. सूर्य के साथ षष्ठेश लग्न में हो।
१५. शनि के साथ षष्ठेश लग्न में हो।
१६. कारकांश के चतुर्थ में स्थित चन्द्रमा केतु द्वारा दृष्ट हो।
१७. कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।

श्वेतकुष्ठ

१. लग्नेश राहु एवं केतु के साथ हो।
२. चन्द्रमा एवं मंगल-राहु-केतु के साथ हों।
३. चन्द्रमा, मंगल एवं शनि मेष या वृष में हों।
४. लग्नेश और बुध-चन्द्रमा एवं मंगल की युतियाँ हों और चन्द्रमा एवं मंगल राहु-केतु से युत या दृष्ट हों।
५. सूर्य एवं चन्द्रमा पापग्रहों के साथ कर्क, वृश्चिक या मीन में हों।

चेचक

१. लग्न में मंगल शनि या सूर्य से दृष्ट हो।
२. लग्न, द्वितीय, सातवें या आठवेंभाव में स्थित मंगल सूर्य द्वारा दृष्ट हो।
३. लग्न, द्वितीय, सातवें या आठवेंभाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।

हैजा

१. सप्तम्भाव में स्थित शुक्र पापग्रहों द्वारा दृष्ट हो।
२. बुध-राहु लग्न में तथा मंगल-शनि सातवेंभाव में हों।

राजरोग (क्षयरोग, टी०बी०)

१. लग्न का अधिपति एवं शुक्र त्रिक् स्थान में हो।
२. कर्क में बुध स्थित हो।
३. लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।
४. पाँचवें में शनि, आठवें में पापग्रह एवं बारहवेंभाव में सूर्य हो।
५. मंगल-शनि दशवेंभाव में हो तथा लग्न, चौथे एवं आठवेंभाव में सूर्य हो।
६. लग्न में पापग्रह एवं छठेभाव में क्षीण चन्द्रमा जलराशि में हो।
७. चौथेभाव में मंगल एवं बारहवेंभाव में राहु हो।
८. छठेभाव में बुध-मंगल हो और वह क्रूरांश में हो तथा उस पर चन्द्रमा एवं शुक्र का प्रभाव हो।
९. छठे या आठवेंभाव में मंगल के साथ चन्द्रमा हो और उस पर लग्नेश की दृष्टि हो।
१०. सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे की राशि में हों।
११. सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे के नवांश में हों।
१२. सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह राशि में हों।
१३. सूर्य एवं चन्द्रमा कर्कराशि में हों।
१४. शनि के साथ चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।

❑

अध्याय-१३

अप्रत्यक्ष आगन्तुक शारीरिक-रोग

हम पूर्व ही बता आये हैं कि शारीरिक-रोग भी मानसिक-रोग की ही भाँति दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो जन्म से ही होते हैं; जैसे अन्धत्व आदि और एक वे जो जीवनकाल में शरीर में आते हैं। ऐसे ही रोगों को आगन्तुक-रोग कहा जाता है।

आगन्तुक-रोग भी दो प्रकार के होते हैं। एक प्रत्यक्ष (जिसके कारणों और स्वरूप को प्रत्यक्ष जाना जा सकता है) जिसके बारे में हम इससे पूर्व के अध्याय में बता चुके हैं। यहाँ हम उन आगन्तुक-रोगों के बारे में बतायेंगे, जिनके कारण प्रत्यक्ष दिखायी नहीं पड़ते। ऐसे रोग भी ज्योतिष में दो प्रकार के होते हैं—

१) अंगों के विकार, (२) धातुजन्य-रोग।

ज्योतिषीय सिद्धान्त

ज्योतिष के अनुसार, भाव एवं राशियाँ जीव के विभिन्न अंगों पर प्रभावी होती हैं। ग्रह भी इन पर प्रभावी होते हैं; किन्तु धातु आदि रस सम्बन्धी दोष में भाव की नहीं, राशि और ग्रह की महत्ता होती है।

इस प्रकार जो रोग शरीर के अंगों में उत्पन्न होते हैं, उनमें भाव एवं राशि के योग की महत्ता होती है और जो रोग धातु तथा रसदोष से उत्पन्न होते हैं, उनमें राशि एवं ग्रह के योग की महत्ता होती है।

तथापि जब भी रोगों का विचार किया जाता है, भाव, राशि एवं ग्रह तीनों के योग की गणनाफल को ही सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है।

अंगविकार-योग

ज्योतिष में अंगों में रोग होने अर्थात् सिरदर्द, उन्माद, प्रलाप, दृष्टक्षीणता, बधिरता, नाक के कष्ट, कान के कष्ट आदि को अप्रत्यक्ष आगन्तुक रोगों में वर्गीकृत किया गया है। इसमें शरीर के १२ अंगों पर विचार किया गया है। ये १२ अंग हैं—

१) शिरोरोग, (२) नेत्ररोग, (३) कर्णरोग, (४) नासिकारोग, (५) मुखरोग, (६) गले अथवा कंठ के रोग, (७) हृदयरोग, (८) हाथ के रोग, (९) उदररोग, (१०) गुप्तरोग, (११) गुदारोग, (१२) चरणरोग।

सिरदर्द

१. मंगल, शनि एवं गहु एक राशि में हों।
२. राहु लग्न में पापग्रहों से दृष्ट हो।
३. गुरु एवं चन्द्रमा पापित ग्रहों के साथ हों और लग्न में पापग्रह की राशि हो।
४. शनि लग्न में हो और उस पर पापग्रहों का प्रभाव हो या वे साथ हों।
५. मंगल लग्न में हो और उस पर पापग्रहों का प्रभाव हो या वह पापग्रहों के साथ हो।
६. तृतीय भाव का स्वामी जिस नवांश में हो, उस नवांश की राशि का स्वामी ग्रह पापग्रहों से युक्त होकर केन्द्र में बैठा हो या वह केन्द्र में पापग्रहों से दृष्ट हो।
७. सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।
८. बुध की दशा में मंगल की अन्तर्दशा हो।

विशेष—अन्तर्दशा के सम्बन्ध में आगे बताया गया है।

गंजापन

१. लग्न में वृष या धनु राशि पापग्रहों से दृष्ट हो।
२. लग्न में पापग्रह हो और पापग्रह की राशि भी हो।
३. लग्न में सिंह, कन्या, वृश्चिक या धनु राशि हो तथा चन्द्रमा कर्कराशि में हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।

अन्धत्व

अन्धत्व का अर्थ यहाँ ऐसे अन्धत्व से है, जो जन्म से नहीं होता, अपितु जीवन के किसी विशेषकाल में नेत्र की शक्ति को समाप्त कर देता है।

१. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों द्वादशभाव में हों।
२. छठे एवं आठवेंभाव में पापग्रह हो।
३. राहु लग्न में हो और सातवेंभाव में सूर्य स्थित हो।
४. सूर्य औ़ग चन्द्रमा दोनों केन्द्र में या तीसरेभाव में हों।
५. मंगल पापग्रह की राशि में हो।
६. सातवेंभाव में सूर्य शनि की राशि में स्थित हो।

७. लग्न में मंगल कुम्भ राशि के साथ हो।
८. लग्न के स्वामी एवं शुक्र के साथ द्वादशभाव का स्वामी दूसरेभाव या त्रिक्स्थान में हो।
९. शुक्र एवं चन्द्रमा दो पापग्रहों से युक्त होकर दूसरे भाव में हों।
१०. चन्द्रमा त्रिक् में हो और पापग्रहों के प्रभाव में हो।
११. शनि सिंह लग्न में हो।
१२. सूर्य एवं चन्द्रमा पापग्रहों के बीच में हों।
१३. पापग्रहों से दृष्ट शनि चौथेभाव में हो।
१४. सूर्य एवं राहु की दृष्टि पंचम्भाव पर हो।
१५. सूर्य एवं राहु की दृष्टि शुक्र के भाव से पाँचवें स्थान पर हो।
१६. चन्द्रमा दूसरेभाव, सूर्य आठवेंभाव एवं शनि बारहवेंभाव में हों।
१७. छठे, आठवें एवं बारहवेंभाव में स्थित शुभग्रहों पर पापग्रह की दृष्टि हो।
१८. चन्द्रमा, मंगल और शनि छठे, आठवें या बारहवेंभाव में हों।
१९. दूसरेभाव में मंगल, छठे में चन्द्रमा, आठवें में सूर्य एवं नवमें भाव में शनि हो।
२०. दूसरे या बारहवेंभाव में सूर्य और चन्द्रमा हो तथा छठे या आठवेंभाव में पापग्रह हों।
२१. मंगल दूसरे, चन्द्रमा छठे, सूर्य आठवें एवं शनि बारहवेंभाव में हों।

आँख का फूटना

१. शनि बारहवेंभाव में हो, तो दायीं आँख।
२. मंगल बारहवेंभाव में हो, तो बायीं आँख।
३. सूर्य बारहवेंभाव में हो, तो दायीं आँख।
४. चन्द्रमा बारहवेंभाव में हो, तो बायीं आँख।
५. मंगल-शनि के साथ चन्द्रमा आठवेंभाव में हो।
६. मंगल-शनि-चन्द्रमा छठेभाव में हो।
७. शनि के साथ चन्द्रमा आठवेंभाव में हो।
८. शनि के साथ चन्द्रमा बारहवेंभाव में हो।
९. शुक्र की राशि में स्थित चन्द्रमा तीन पापग्रहों के साथ हो।
१०. लग्न एवं द्वितीयभाव का स्वामी त्रिक् में हो।
११. शनि दूसरेभाव में हो।
१२. सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह लग्न में मंगल एवं शनि से युक्त या दृष्ट हों।
१३. दूसरे, छठे या दशवेंभाव के स्वामी शुक्र के साथ लग्न में हों।
१४. शुक्र एवं मंगल पापग्रहों के साथ नीच नवांश में हो।

१५. छठे एवं दशवेंभाव के नवांश का अधिपति लग्न के स्वामी के साथ त्रिक् में हो।
१६. पाँचवें एवं छठेभाव के साथ शुक्र लग्न में हो।
१७. छठे एवं दशवेंभाव का स्वामी लग्न में शुक्र एवं द्वितीयभाव के स्वामी के साथ स्थित हो।
१८. चन्द्रमा क्षीण हो और उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।
१९. लग्न में चन्द्रमा एवं मंगल हो और उस पर गुरु एवं शुक्र का प्रभाव हो।
२०. चन्द्रमा एवं सूर्य बारहवेंभाव में हों।
२१. चन्द्रमा एवं शुक्र सातवेंभाव में हों।
२२. कर्कराशि में सातवेंभाव में सूर्य हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।
२३. कर्कराशि में सातवेंभाव में मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।
२४. बारहवेंभाव में सूर्य हो और उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।

रतौंधी (रात में दिखायी न पड़ना)

१. चन्द्रमा के साथ शुक्र छठे, आठवें या बारहवेंभाव में हो।
२. द्वितीयभाव का स्वामी शुक्र एवं चन्द्रमा के साथ लग्न में हो।
३. शुक्र एवं चन्द्रमा द्वितीयभाव के स्वामी के साथ लग्न में हों।

अन्य नेत्र-विकार

१. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों वक्रीग्रह की राशि में पापग्रह से दृष्ट हों।
२. सूर्य एवं चन्द्रमा वक्रीग्रह की राशि में त्रिकस्थान में हों।
३. सूर्य पापग्रह के साथ बारहवेंभाव में हो।
४. शुक्र पापग्रह के साथ द्वितीयस्थान में हो।
५. शुक्र पापग्रह के साथ बारहवेंस्थान में हो।

पलकें भींचना

१. सूर्य एवं चन्द्रमा लग्न में पापग्रहों से दृष्ट हों।
२. कर्क लग्न में सूर्य हो।
३. सूर्य और चन्द्रमा लग्न में हों और उन पर बुध एवं मंगल का प्रभाव हो।
४. मंगल एवं बुध लग्न में हों और उन पर सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रभाव हो।
५. सूर्य बारहवेंस्थान में पापग्रह के साथ हो।

नेत्रपीड़ा

१. अष्टमेश एवं लग्नेश छठेभाव में हों।

२. षष्ठेश वक्रीग्रह की राशि में हो।
३. लग्नेश मंगल या बुध की राशि पर हो और इन्हीं दोनों ग्रहों से दृष्ट हो।
४. छठवें या आठवेंभाव में शुक्र हो।
५. द्वितीयेश शनि, मंगल या गुलिक के साथ हो।
६. द्वितीयस्थान में शनि हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।
७. लग्न में मृत मंगल हो।
८. द्वितीयेश शुक्र के साथ हो।
९. चन्द्रमा एवं मंगल त्रिक् में हों।
१०. द्वितीयस्थान में पापग्रह हो और उन पर शनि की दृष्टि हो।
११. चन्द्रमा और गुरु त्रिक् में हों।

कर्णरोग

।रपन

१. तृतीयेश सूर्य, मंगल या शनि तथा पापग्रह के साथ हो।
२. तृतीयेश सूर्य, मंगल या शनि के साथ शत्रु की राशि में हो।
३. बुध शनि से चौथे स्थान पर हो तथा त्रिक् में षष्ठेश हो।
४. पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र के साथ शत्रुग्रह के साथ हो, उससे दृष्ट हो या उसकी राशि में हो।
५. बुध एवं षष्ठेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

कम सुनाई देना

१. द्वितीयेश एवं मंगल लग्न में हों।
२. लग्न में चन्द्रमा मेष, वृष एवं कर्क को छोड़कर किसी राशि में हो।
३. बुध के साथ शुक्र बारहवेंभाव में हो।
४. तीसरे, पाँचवें, नवमें एवं ग्यारहवेंभाव में पापग्रह हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।

कान के अन्य रोग

१. बारहवेंभाव का अधिपति पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो, तो कान दर्द होता है।
२. तीसरेभाव में पापग्रह हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो कान में दर्द होता है।
३. शुक्र या मंगल द्वितीयभाव में हो, तो कान में दर्द होता है।
४. शुक्र या मंगल बारहवेंभाव में हो, तो कान में दर्द होता है।

५. बारहवाँभाव पापग्रहों से दृष्ट या युक्त हो तो कान में दर्द होता है।
६. लग्न में धनेश एवं मंगल हो।
७. तीसरेभाव में शनि एवं गुलिक हो।
८. तृतीयेश क्रूरग्रहों के षष्ठयंश में हो।

कान दुर्घटना (कान कटना या नष्ट होना)

१. राहु शुक्र के साथ नीच राशि में हो।
२. कारकांश में केतु हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
३. सूर्य और शुक्र लग्न में हों और चन्द्रमा से सातवें स्थान में शनि हो।
४. सूर्य, चन्द्रमा और शनि एक साथ तीसरे, पाँचवें, सातवें या नवमें भाव में स्थित हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

नासिका रोग (नाक के रोग एवं दुर्घटना)

१. मंगल, शुक्र एवं शनि एक स्थान में हों, नासिका से रक्तस्राव होता है।
२. लग्न में मंगल तथा छठेभाव में शुक्र हो, तो नाक कट जाती है।
३. लग्नेश किसी पापग्रह के नवांश में हो, चन्द्रमा छठे में, शनि आठवें में एवं कोई पापग्रह बारहवेंभाव में हों, तो पीनस रोग होता है।

जिह्वा रोग (जीभ के रोग एवं दुर्घटना)

१. बुध छठेभाव का स्वामी हो।
२. द्वितीयेश एवं राहु त्रिक में हों।
३. द्वितीयेश एवं राहु त्रिक में हों और बुध की अन्तर्दशा चल रही हो, तो जीभ कट जाती है।
४. राहु से दृष्टराशि के स्वामीग्रह के साथ द्वितीयेश त्रिक् में हो।
५. राहु से दृष्टराशि के स्वामीग्रह के साथ द्वितीयेश त्रिक् में हो, तो राहु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कट जाती है।

गूँगापन, तुतलाना एवं हकलाना

१. बुध षष्ठेश के साथ लग्न में हो।
२. गुरु षष्ठेश के साथ लग्न में हो।
३. गुरु द्वितीयेश के साथ अष्टम्स्थान में हो।
४. शुक्ल का चन्द्रमा मंगल के साथ लग्न में हो।
५. द्वितीयेश चतुर्थेश के साथ त्रिक् में हो।
६. बुध कर्क, वृश्चिक या मीन में हो और उसे अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।

७. बुध कर्क, वृश्चिक या मीन में चन्द्रमा से दृष्ट हो और चौथेभाव में सूर्य एवं छठेभाव में कोई पापग्रह हो।
८. गुरु द्वितीयेश के साथ त्रिक् में हो।
९. चन्द्रमा शनि के साथ हो।
१०. शनि से दृष्ट बुध शनि की राशि में हो।
११. सप्तमेश से दूसरे स्थान पर केतु स्थित हो।
१२. नवमेश शुक्र हो।
१३. द्वितीयेश निर्बल होकर क्रूरग्रह (मंगल, सूर्य, शनि) के नवांश में हो।
१४. द्वितीयेश निर्बल हो और पापग्रहों से दृष्ट हो।
१५. क्षीण बुध द्वितीयभाव में हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

दन्तरोग

१. लग्न में गुरु एवं राहु हों।
२. लग्न में राहु हो।
३. लग्न में गुरु एवं पंचम में राहु हो।
४. धनेश एवं षष्ठेश पापग्रहों के साथ हों।
५. त्रिकोण में शनि, सातवें में सूर्य और बारहवेंभाव में शुक्र हो।
६. सप्तम्भाव में पापग्रह हों।
७. छठेभाव में कोई पापग्रह हो, षष्ठेश सातवेंभाव में हो और शुक्र-शनि आठवें में हो।
८. द्वितीयेश राहु के साथ त्रिक में हो और राहु की दशा या अन्तर्दशा चल रही हो।
९. लग्नेश एवं मंगल लग्न में हो, षष्ठेश मंगल की राशि पर हो और इनमें से किसी पर शनि की दृष्टि हो।
१०. सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि सातवें स्थान में हों।

मुखरोग (छाले, सूजन आदि)

१. छठेभाव में राहु एवं केतु हों।
२. दूसरेभाव में पापग्रह हो।
३. लग्नेश बुध के साथ मंगल की राशि में हो।
४. लग्नेश मंगल के साथ बुध की राशि में हो।
५. दूसरेभाव में सूर्य एवं मंगल हों।

६. दूसरेभाव में सूर्य एवं शनि हों।
७. दूसरेभाव में शनि एवं मंगल हों।
८. द्वितीयेश त्रिक् में पापग्रहों के साथ हो या दृष्ट हो।
९. चन्द्रमा लग्न में मेष राशि के साथ हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
१०. चन्द्रमा लग्न में मेष राशि में शुक्र के साथ हो और छठेभाव में बुध हो।
११. मेष या कर्क में शुक्र स्थित हो।
१२. लग्न में चन्द्रमा और छठेभाव में बुध हो।

कण्ठरोग

१. चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक् में हो।
२. लग्नेश, षष्ठेश एवं चन्द्रमा त्रिक में हों।
३. सूर्य के साथ लग्नेश त्रिक् में हो।
४. सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।
५. शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो।
६. सूर्य एवं मंगल छठे या बारहवेंभाव में हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।
७. लग्न में मकर का नवांश हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
८. केन्द्र या त्रिकोण में राहु या केतु हो।
९. तृतीयेश बुध के साथ हो।
१०. चन्द्रमा चौथेभाव में नवांश के अधिपति के साथ हो।
११. आठवेंस्थान में नीचराशि में गुरु हो (मृत्युयोग)।

हृदयरोग

१. सूर्य कुम्भ राशि में हो।
२. शनि चौथेभाव में हो।
३. सूर्य, मंगल एवं गुरु चौथेभाव में हों।
४. चतुर्थेश, अष्टमेश के साथ आठवेंस्थान में हो।
५. चतुर्थस्थान में पापग्रह हो और चतुर्थेश दो पापग्रहों के मध्य हो।
६. चौथे एवं पाँचवेंभाव में पापग्रह हो।
७. सूर्य, मंगल एवं गुरु चौथेभाव में हों।
८. चतुर्थेश अष्टमस्थान में नीच या शत्रु राशि में हो।
९. सूर्य एवं षष्ठेश पापग्रहों; चौथेभाव में शनि हो।

हृदयशूल एवं कम्पन

१. सूर्य पापग्रहों के साथ वृश्चिक राशि में हो।
२. बारहवें भाग में राहु हो।
३. सूर्य षष्ठेश होकर पापाक्रान्त हो तथा शुभग्रह छठे या बारहवेंभाव में हो।
४. लग्नेश निर्बल हो और चौथेभाव में स्थित राहु पापग्रहों से दृष्ट हो।
५. चतुर्थेश की राशि के नवांश का स्वामी क्रूर षष्ठयंश में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो।
६. चतुर्थ स्थान में शुभग्रह हो।
७. सूर्य वृश्चिक में हो।
८. नष्ट मंगल को गुरु देखता हो और दिन में जन्म हो।
९. शुभग्रहों पर क्रूरग्रहों का प्रभाव हो और षष्ठेश पापग्रस्त हो।

उदररोग (दर्द, आमवात, वायुशूल, अजीर्ण, अरुचि आदि)

१. सिंह राशि में चन्द्रमा हो।
२. राहु सातवेंभाव में हो।
३. केतु सातवेंभाव में हो।
४. लग्न में चन्द्रमा तथा आठवेंभाव में शनि हो।
५. लग्न में षष्ठेश विषमराशि में हो, विषमराशि में ही लग्नेश हो और उन पर शनि की दृष्टि हो।
६. छठेभाव में कोई पापग्रह हो, सातवें में षष्ठेश हो और आठवें में शनि एवं शुक्र हों।
७. पाँचवेंभाव में वक्रीग्रह तथा छठेभाव में चतुर्थेश हो।
८. छठे और आठवेंभाव में पापग्रह स्थित हो और सातवेंस्थान में पापग्रह के साथ षष्ठेश हो।
९. तृतीयभाव में बृहस्पति हो।
१०. छठेभाव में बृहस्पति हो।
११. लग्न में मंगल हो, षष्ठेश निर्बल हो।
१२. लग्न में पापग्रह और अष्टम् में शनि हो।
१३. लग्न में राहु और अष्टम् में शनि-मंगल हो।
१४. लग्न में शनि हो या शनि से लग्न दृष्ट हो और निर्बल अष्टमेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
१५. छठेभाव में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

१६. आठवेंभाव में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

उदररोग के मृत्युयोग

उदररोग चाहे जिस प्रकृति का हो, यदि निम्नलिखित योग हो, तो अक्सर मृत्यु ही होती है (यदि अन्य योग समर्थन न कर रहे हों)।

१. लग्नेश, चतुर्थेश एवं अष्टमेश एक साथ हों।
२. लग्नेश, द्वितीयेश एवं अष्टमेश एक साथ हों।
३. लग्नेश, द्वितीयेश एवं चतुर्थेश एक साथ हों।
४. लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हों।
५. लग्नेश एवं बृहस्पति छठेभाव में हों।
६. लग्नेश एवं अष्टमेश बृहस्पति के साथ हों।

अतिसार, संग्रहणी-रोग एवं वायुगुल्म

१. सप्तम् में शुक्र हो।
२. लग्न में राहु एवं बुध हो एवं सातवेंभाव में शनि तथा मंगल हों।
३. छठेभाव में शुक्र हो और षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट हो।
४. शनि की राशि में बुध हो तथा उस पर सूर्य की दृष्टि हो।
५. कारकांश से पंचमस्थान में केतु हो।
६. द्वितीयभाव में शनि हो।
७. द्वितीयभाव में राहु हो।
८. सप्तम् में शनि हो।
९. दो पापग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तथा सप्तम्भाव में शनि हो।
१०. लग्न में सूर्य मंगल से दृष्ट हो।
११. लग्न में मंगल हो, षष्ठेश निर्बल हो।
१२. कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि-चन्द्रमा साथ हों।
१३. छठेभाव में शनि हो और षष्ठेश पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।
१४. निर्बल पापग्रह पाँचवेंभाव में तथा निर्बल पंचमेश छठेभाव में हो।
१५. लग्न का क्षीण चन्द्रमा मकर या कुम्भराशि में हो।
१६. शनि की राशि में क्षीण चन्द्रमा छठेभाव में हो।
१७. शनि की राशि में क्षीण चन्द्रमा आठवेंभाव में हो।
१८. द्वादशेश छठेभाव में तथा षष्ठेश बारहवेंभाव में हो।

उदरशूल के योग

१. छठेभाव में बृहस्पति हो और छठेभाव का स्वामी पापग्रहों के साथ हो।
२. छठेभाव में बृहस्पति हो और छठेभाव का अधिपति पापग्रहों से दृष्ट हो।
३. सिंहराशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त हो।
४. सिंहराशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो।
५. बारहवेंभाव का अधिपति तीसरेभाव में हो।
६. केन्द्र या त्रिकोण में सिंहराशि में शुक्र हो और तृतीयभाव में बृहस्पति हो।
७. छठेभाव में शनि-मंगल हो।
८. बारहवेंभाव में शनि-मंगल हो।
९. लग्नेश तृतीयभाव में हो।
१०. तृतीयभाव में बृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण में चन्द्रमा सिंह में हो।

कृमि रोग

१. आठवेंस्थान में क्षीण चन्द्रमा हो।
२. सूर्य शत्रु की राशि में हो।

जलोदर रोग

१. मेष में चन्द्रमा कर्क में शनि हो।
२. मेष में शनि कर्क में चन्द्रमा हो।
३. कर्क में शनि मकर में चन्द्रमा हो।
४. लग्न में राहु एवं बारहवेंभाव में सूर्य-चन्द्र हों।

प्लीहा रोग

तिल्ली का बढ़ जाना प्लीहा रोग है। कभी-कभी यह रोग बाहरी वायरस या मच्छर आदि के काटने से भी होता है, पर ज्योतिष में कहा गया है कि वायरस या कीट आदि के काटने के बाद प्रकोपित होना भी ग्रह की रश्मियों का शरीर में असन्तुलित होना है और यह सब निर्धारित होता है।

इस रोग के निम्नलिखित योग हैं—

१. षष्ठेश चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो।
२. चन्द्रमा एवं शनि पाँचवें स्थान में हो।
३. शनि एवं मंगल के बीच चन्द्रमा हो और सूर्य मकर में हो।
४. लग्नेश चन्द्रमा पर क्रूरग्रहों की दृष्टि हो।
५. सप्तमेश चन्द्रमा पर क्रूरग्रहों की दृष्टि हो।
६. लग्न में शनि हो।

७. अस्त लग्नेश पर क्रूरग्रहों की दृष्टि हो।

८. षष्ठेश एवं चन्द्रमा जिस राशि में हों, उसके स्वामी पर पापग्रहों या क्रूरग्रहों की दृष्टि हो या ये इनके साथ हों।

नाभिरोग

१. लग्नेश, षष्ठेश और चन्द्रमा एक स्थान पर हों।

२. षष्ठेश तीसरेभाव में हो।

३. लग्नेश चन्द्रमा के साथ छठेभाव में हो।

कुक्षियोग

१. लग्न में राहु आठवें में शनि हो।

२. लग्न में पापग्रह और आठवें में शनि हो।

३. छठेभाव में बृहस्पति और धनु या मीन में चन्द्रमा हो।

हाथ की दुर्घटनायें

१. तीसरे या नवमेंभाव में शनि एवं बृहस्पति हों।

२. आठवें या बारहवेंभाव में सूर्य हो।

३. बृहस्पति के साथ चन्द्रमा सातवें में हो।

४. बृहस्पति के साथ चन्द्रमा आठवें में हो।

५. मंगल के साथ चन्द्रमा सातवें में हो।

६. मंगल के साथ चन्द्रमा आठवें में हो।

७. छठेभाव में शुक्र एवं शनि शत्रु राशि में हों।

८. छठेभाव में शनि एवं मंगल राहु के भोग्यांश में हों।

लूलापन

१. राहु, शनि एवं बुध—दशवेंभाव में हों।

२. शनि आठवें में बृहस्पति बारहवें में हो।

३. शनि नवमें में, तीसरे में बृहस्पति हो।

हाथ की पीड़ा

१. चन्द्रमा एवं शनि छठे में सूर्य बारहवें में हो।

२. चन्द्रमा एवं शनि आठवें में सूर्य बारहवें में हो।

३. सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि छठेभाव में हों।

४. सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि आठवेंभाव में हों।

५. सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि बारहवेंभाव में हो।

कुक्षि रोग

१. लग्न में पापग्रह हो और आठवें या छठेभाव में शनि हो।
२. लग्न में राहु हो और आठवेंभाव में शनि हो।
३. छठेभाव में बृहस्पति हो और चन्द्रमा मीनराशि में हो।
४. छठेभाव में बृहस्पति हो और चन्द्रमा धनुराशि में हो।
५. लग्न में शनि हो, राहु आठवें भाव में हो।

कुबड़ापन

१. लग्न में कर्क हो और उसमें चन्द्रमा हो, जो मंगल से दृष्ट हो।
२. चौथेभाव में मंगल की राशि में लग्नेश हो और वह वृश्चिक के नवांश में हो।
३. लग्न में कर्क हो, उसमें मंगल हो और वह क्षीण चन्द्रमा के प्रभाव में हो।

गुर्दा रोग

१. पापग्रह छठेभाव में हो।
२. पापग्रह सातवेंभाव में हो।
३. पापग्रह पाँचवेंभाव में हो।
४. आठवें में बुध हो।
५. धनु में बुध सूर्य से दृष्ट हो।
६. मीन में बुध सूर्य से दृष्ट हो।
७. चन्द्रमा जलराशि में हो और उस राशि का स्वामी छठेभाव में हो।
८. आठवेंभाव में पापग्रह हों।
९. सातवें में जलतत्त्वीय ग्रह हो और सप्तमेश भी जलतत्त्वीय हो।
१०. क्रूर षष्ठयंश में पापग्रह हों।
११. सातवेंभाव में सूर्य, मंगल, शनि एवं राहु जलीयग्रह की राशि के साथ हों।
१२. सातवेंभाव में पापग्रहों से युक्त मंगल हो।
१३. सातवेंभाव में शनि राहु से दृष्ट हो।
१४. छठेभाव, सातवेंभाव और बारहवेंभाव का अधिपति एक साथ हो और उन पर शनि की दृष्टि हो।
१५. लग्न में जलीयग्रह, सातवें में जलीयराशि हो और लग्न पर जलीयग्रह की दृष्टि हो।

प्रमेह

१. धनु या मीन में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो।
२. धनु या मीन में स्थित सूर्य पर बुध की दृष्टि हो।

३. आठवेंभाव पर मंगल की दृष्टि हो।
४. छठेभाव में मंगल हो और षष्ठेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
५. लग्न में सूर्य एवं सातवें में मंगल हो।
६. पाँचवेंभाव में सूर्य, शुक्र एवं शनि हों।
७. दशवेंभाव में मंगल एवं शनि हों।
८. दशवेंभाव में मंगल शनि से दृष्ट हो।
९. दशवेंभाव में शनि मंगल से दृष्ट हो।
१०. पाँचवेंभाव में सूर्य एवं शनि शुक्र से दृष्ट हों।
११. पाँचवेंभाव में शुक्र एवं शनि सूर्य से दृष्ट हों।
१२. आठवेंभाव में धनु हो।
१३. बारहवेंभाव में पापग्रह से दृष्ट बृहस्पति हो।
१४. आठवाँभाव अनेक पापग्रहों से युक्त हो।

गुदारोग (बवासीर, अर्स, भगन्दर, खुजली, सूजन आदि)

१. लग्नेश एवं मंगल साथ हों।
२. लग्न में शनि सातवें में मंगल हो।
३. बारहवें में पापग्रहों से दृष्ट शनि हो।
४. सातवें में पापग्रहों से दृष्ट अष्टमेश हो।
५. लग्न के वृश्चिक में मंगल बृहस्पति से दृष्ट हो।
६. लग्न के वृश्चिक में मंगल शुक्र से दृष्ट हो।
७. बारहवेंभाव में स्थित शनि मंगल से दृष्ट हो।
८. बारहवेंभाव में स्थित शनि लग्नेश से दृष्ट हो।
९. सातवें में लग्नेश मंगल से युक्त हो एवं बारहवें में शनि हो।
१०. सातवें में लग्नेश मंगल से दृष्ट हो और बारहवें में शनि हो।
११. शनि सातवें में वृश्चिक के साथ हो और नवमें में मंगल हो।
१२. अष्टम् में शनि हो।
१३. अष्टम् में धनु हो।
१४. अष्टम् में सूर्य हो।
१५. अष्टम् पर सूर्य की दृष्टि हो।
१६. दूसरेभाव पर मंगल की दृष्टि हो।
१७. दूसरेभाव पर सूर्य की दृष्टि हो।
१८. कर्कराशि का सूर्य मंगल को देख रहा हो।

१९. आठवें में षष्ठेश पापग्रहों के साथ हो।
२०. मंगल, बुध एवं लग्नेश की दृष्टि छठेभाव पर हो।
२१. मंगल की राशि में स्थित लग्नेश शत्रुग्रह द्वारा दृष्ट हो।
२२. बुध की राशि में स्थित लग्नेश शत्रुग्रह से दृष्ट हो।
२३. लग्नेश मंगल या बुध के साथ केन्द्रीय त्रिकोण के सिवा कहीं भी दूसरेभाव में हो।
२४. मंगल, बुध एवं लग्नेश चौथेभाव में सिंह राशि में हों।
२५. मंगल, बुध एवं लग्नेश बारहवेंभाव में सिंह राशि में हों।

पादरोग

१. मंगल, बुध एवं शुक्र एक ही भाव में हों।
२. छठेभाव में शनि हो।
३. छठेभाव में शनि या शुक्र हो।
४. बारहवेंभाव में स्थित लग्नेश पापग्रह से युक्त हो।
५. बारहवेंभाव में स्थित लग्नेश पापग्रह से दृष्ट हो।
६. छठेभाव में मंगल पूर्ण चन्द्रमा के साथ हो।
७. चन्द्रमा, मंगल एवं शनि बारहवेंभाव में हों।
८. छठेभाव में सूर्य, मंगल और शनि एक साथ हों, तो लंगड़ा।
९. सप्तमेश शनि पापग्रहों के साथ हो।
१०. सप्तमेश शनि पापग्रहों से दृष्ट हो।
११. अष्टमेश एवं नवमेश पापग्रहों के साथ चतुर्थभाव में हों।
१२. चन्द्रमा एवं शनि कर्क में पापग्रहों से युक्त हों।
१३. चन्द्रमा एवं शनि कर्क में पापग्रहों से दृष्ट हों।
१४. बारहवेंभाव में शनि एवं षष्ठेश पापग्रहों से युक्त हों।
१५. बारहवेंभाव में शनि एवं षष्ठमेश पापग्रहों से दृष्ट हों।

अध्याय-१४

अप्रत्यक्ष धातुजन्य-रोग

धातुजन्य एवं रसजन्य उन रोगों को कहते हैं, जो शरीर में धातु (सारतत्त्व) एवं कफ, पित्त, वायु आदि विकारों से उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद में ऐसे रोगों का कारण कफ, पित्त, वायु के संतुलन में विकृति या धातु का दुर्बल हो जाना बताया गया है। इसमें अनेक प्रकार के रोग आते हैं। इनमें से विभिन्न रोगों के योग निम्नलिखित प्रकार हैं।

वातरोग

इस प्रकार के रोग में वायु (गैस) सम्बन्धी रोग आते हैं। इसमें आमवात, शूल, पक्षाघात, गैसीय व्याधियाँ आदि हैं इनके योग निम्नलिखित हैं—

वायुशूल

१. बारहवेंभाव का अधिपति तीसरे में हो।
२. सूर्य, चन्द्रमा और मंगल एक साथ हों।
३. छठे या बारहवेंभाव में शनि और मंगल हों।
४. सिंह, राशि में पापित चन्द्रमा हो।
५. कर्कराशि के चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।
६. कर्कराशि में चन्द्रमा और मंगल साथ हों।
७. लग्नेश शत्रुग्रह या नीचग्रहों के साथ हो या उनसे दृष्ट हो; चौथे में मंगल हो और शनि पापग्रहों से दृष्ट हो।
८. सूर्य एवं शुक्र एक साथ हों।
९. सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।
१०. सिंहराशि का सूर्य केन्द्र या त्रिकोण में हो और तीसरेभाव में बृहस्पति हो।
११. रात्रि का जन्म हो और पाँचवेंभाव में पापदृष्ट सूर्य हो।
१२. दिन का जन्म हो और दग्ध चन्द्रमा को मंगल देखता हो।
१३. छठे एवं बारहवेंभाव में सूर्य एवं चन्द्रमा हो।

१४. रात्रि का जन्म हो और दग्ध चन्द्रमा को केन्द्रगत शनि पूर्णदृष्टि से देखता हो।
१५. दग्ध चन्द्रमा का शनि से ईसराफ योग हो।
१६. कर्क में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।
१७. धनेश एवं बृहस्पति क्षीण हों।
१८. बारहवेंभाव में क्षीण चन्द्रमा एवं शनि हो।
१९. लग्न में बृहस्पति एवं सातवें में शनि हो।
२०. सप्तम् में पापग्रहों से युक्त बुध पापग्रहों से दृष्ट हो।
२१. लग्न में शनि हो त्रिकोण में मंगल हो।
२२. लग्न में शनि हो सातवें में मंगल हो।
२३. छठेभाव में चन्द्रमा पापग्रहों के साथ हो।
२४. छठेभाव में चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो।
२५. लग्न में पापग्रह और लग्नेश पापग्रह से पीड़ित हो।
२६. दूसरेभाव में राहु के साथ चन्द्रमा हो।
२७. लग्न में स्थित शनि पर मंगल की दृष्टि हो।
२८. छठेभाव में स्थित शनि पर मंगल की दृष्टि हो।
२९. आठवेंभाव में स्थित शनि पर मंगल की दृष्टि हो।
३०. लग्न में लग्नेश और छठे में शनि हो।
३१. लग्न एवं सप्त की नवांशराशि में पापग्रह हों और चन्द्रमा केन्द्रगत हो।

पित्तरोग

इसमें रक्तपित्त, शीतपित्त, ज्वर, प्यास आदि रोग आते हैं। इनके योग निम्नलिखित हैं—

१. मंगल नीच राशि में हो।
२. मंगल सातवें में हो।
३. छठे में मंगल हो और षष्ठेश पापग्रहों से युक्त हो।
४. छठे में मंगल हो और षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट हो।
५. सूर्य, शुक्र एवं शनि एक साथ हों।
६. षष्ठेश शनि पापग्रहों के साथ चतुर्थभाव में हो।
७. षष्ठेश गुरु पापग्रहों के साथ चतुर्थभाव में हो।
८. शनि सातवेंभाव में हो तथा चन्द्रमा दो पापग्रहों के मध्य स्थित हो।
९. लग्न में मंगल सातवें में सूर्य हो।
१०. सिंह राशि के चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

११. चन्द्रमा सिंह राशि में हो।
१२. छठेभाव में पापग्रहों के साथ सूर्य हो।
१३. छठेभाव के सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
१४. सूर्य आठवें में हो, मंगल निर्बल हो, दूसरे में पापग्रह हो।
१५. लग्नेश एवं बुध त्रिक में हों।
१६. षष्ठेश शुक्र शनि के साथ मेष, सिंह या धनुराशि में हो।
१७. षष्ठेश, शुक्र को पूर्णदृष्टि से और शनि को चतुर्थदृष्टि से देखता हो।
१८. मेष लग्न में जन्म हो।
१९. सिंह लग्न में जन्म हो।
२०. लग्न पर मंगल की दृष्टि हो और दूसरे, छठे एवं आठवेंस्थान में राहु स्थित हो।
२१. लग्नेश सूर्य के साथ लग्न में या आठवें में हो।

कफ रोग

१. कर्कराशि के सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।
२. लग्न का चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त हो।
३. लग्न का चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो।
४. शनि एवं गुलिक छठेभाव में हो और उन पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो।
५. वृष, कन्या, तुला या मकर लग्न में जन्म हों।
६. सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि ये छः ग्रह एकभाव में हों।

वात, पित्त एवं कफजन्य अन्य रोग के योग

क्षयरोग

१. शुक्र एवं लग्नेश त्रिक् में हों।
२. लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।
३. सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे के नवांश में हों।
४. चन्द्रमा एवं सूर्य कर्क में हों।
५. चन्द्रमा एवं सूर्य सिंह में हों।
६. पाँचवें में शनि, आठवें में पापग्रह तथा बारहवें में सूर्य हो।
७. कारकांश से चतुर्थ एवं बारहवेंभाव में मंगल और राहु हों।
८. कर्क में बुध हो।
९. लग्न में सूर्य, पाँचवें में शनि, एवं आठवेंभाव में पापग्रह हों।

१०. लग्न में सूर्य हो, दशम में मंगल एवं शनि हों।
११. चतुर्थ में सूर्य हो, दशम में मंगल एवं शनि हों।
१२. आठवें में सूर्य हो, दशम में मंगल एवं शनि हों।
१३. छठे में चन्द्रमा एवं मंगल हों और उन पर लग्नेश की दृष्टि हो।
१४. आठवें में चन्द्रमा एवं मंगल हों और उन पर लग्नेश की दृष्टि हो।
१५. लग्न में पापग्रह हो, छठे में पापग्रस्त चन्द्रमा जलराशि में हो।
१६. केन्द्र में शनि, अष्टम् में लग्नेश और षष्टम् में राहु हो (३६ वर्ष की उम्र में)।

तीव्र ज्वर के योग

१. लग्नेश एवं षष्ठेश सूर्य के साथ हों।
२. सूर्य, मंगल एवं राहु के साथ शनि हो।
३. छठेभाव में मंगल आठवें में षष्ठेश हो।
४. अष्टमेश क्रूर षष्ठयंश में राहु और केतु के साथ हो।
५. गुरु की दशा में मंगल की अन्तर्दशा हो।
६. नीचराशि स्थित सूर्य की दशा हो।
७. क्षीण चन्द्रमा की दशा हो।
८. शनि की दशा में शनि की अन्तर्दशा हो।
९. गुरु की दशा में मंगल की अन्तर्दशा हो।
१०. केतु की दशा में बुध की अन्तर्दशा हो।
११. शनि की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो।

रक्तावकार

१. मंगल नीचराशि में, शत्रुराशि में या अस्त हो।
२. मंगल द्वितीयभाव में हो।
३. द्वितीयभाव पर मंगल की दृष्टि हो।
४. द्वितीयभाव में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो।
५. लग्न में शनि, छठे या दशवें में चन्द्रमा हो।
६. दूसरेभाव में गुलिक के साथ मंगल हो।

चर्मविकार (दाद, खाज, खुजली, फुन्सी आदि)

१. लग्न में सूर्य हो।
२. चन्द्रमा पापग्रह के साथ नवमें में हो।

३. नवम् में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो।
४. तीसरेभाव में मंगल के साथ बलवान शनि हो।
५. सूर्य की दशा में बुध की अन्तर्दशा हो।
६. कारकांश में मकर हो।
७. शनि के साथ चन्द्रमा द्वितीयभाव जलीयराशि में हो।
८. चन्द्रमा द्वितीयभाव में तथा चौथे में सूर्य हो।
९. द्वितीयभाव का चन्द्रमा शनि से दृष्ट हो।
१०. सातवें में बुध, सूर्य एवं चन्द्रमा हों और चौथे में अन्य सभी पापग्रह हों।
११. सातवेंभाव में चन्द्रमा कर्क, वृश्चिक या मीन में हो और शनि से दृष्ट हो या शनि से युक्त हो।

फोड़ा, फुन्सी, छाले, घाव आदि

१. सातवेंभाव में मंगल केतु के साथ हो।
२. षष्ठेश चन्द्रमा लग्न में हो।
३. षष्ठेश चन्द्रमा आठवें में हो।
४. लग्नेश एवं मंगल त्रिक में हों।
५. षष्ठेश मंगल के साथ लग्न में हो।
६. षष्ठेश मंगल के साथ आठवें में हो।
७. वृश्चिक के मंगल पर बृहस्पति या शुक्र की दृष्टि न हो।
८. लग्न, दूसरे, सातवें एवं आठवेंभाव में मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो।
९. लग्न, षष्ठम्, सप्तम् एवं द्वादशभाव में स्थित गुलिक एवं मंगल को सूर्य देखता हो।
१०. लग्न, सप्तम् या अष्टम्भाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।
११. षष्ठेश बुध के साथ लग्न में हो।
१२. षष्ठेश बुध के साथ आठवें में हो।
१३. षष्ठेश बृहस्पति के साथ लग्न या अष्टम् में हो।
१४. षष्ठेश शुक्र के साथ लग्न या अष्टम् में हो।
१५. षष्ठेश शनि के साथ लग्न या अष्टम् में हो।
१६. षष्ठेश राहु या केतु के साथ लग्न या अष्टम् में हो।
१७. बारहवें में चन्द्रमा एवं बृहस्पति तथा त्रिक में बुध हो।

स्थूलता (चर्बी का बढ़ना) मोटापा

१. बारहवेंभाव में शुक्र हो।

२. लग्न में जलीयराशि में बृहस्पति हो।
३. लग्न में जलीयराशि में शुभग्रह हों।
४. लग्न में जलीयराशि में स्थित गुरु पर जलीयराशि के ग्रह की दृष्टि हो।
५. लग्न में जलीयराशि में जलीयग्रह हों।

विसर्प एवं स्फोट (सेप्टिक, चकते, छाले, चमड़े का फटना)

१. अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में हो (मृत्युयोग)।
२. अष्टमेश मंगल के साथ लग्न में हो (मृत्युयोग)।
३. लग्न, द्वितीय, सप्तम् या अष्टम् में मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।
४. आठवें में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।
५. आठवें में सूर्य एवं मंगल साथ हों।
६. आठवें में मंगल सूर्य से दृष्ट हो।
७. लग्न, दूसरे या सातवें में सूर्य मंगल के साथ हो।
८. लग्न, द्वितीय एवं सातवें में स्थित सूर्य को मंगल देख रहा हो।
९. लग्न, द्वितीय एवं सातवें में स्थित मंगल को सूर्य देखता हो।

गण्डरोग (गाठें)

१. मंगल के साथ लग्नेश त्रिक्स्थान में हो।
२. छठे या आठवें स्थान में मंगल एवं शनि हो।
३. लग्नेश सूर्य के साथ त्रिक् में हो।
४. लग्नेश चन्द्रमा के साथ त्रिक में हो।
५. चन्द्रमा, लग्नेश एवं षष्ठेश त्रिक में हों।
६. लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश सूर्य के साथ हो।
७. लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश चन्द्रमा के साथ हो।
८. लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश मंगल के साथ हो।
९. लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश में बुध हो।
१०. कारकांश कुंडली में मकर लग्न है।

अन्य रोगों एवं दुर्घटनाओं के योग

१. अष्टम्भाव में शनि हो, तो कुष्ठ या भगन्दर रोग।
२. वृषराशि में सूर्य हो, तो मुख एवं नेत्र के रोग।
३. कर्कराशि में सूर्य हो, तो कफ एवं पित्त विकार।
४. कर्कराशि में स्थित सूर्य को मंगल देखता हो, तो भगन्दर होता है।

५. सिंहराशि में स्थित सूर्य को शुक्र देखता है, तो अर्स एवं कुष्ठ होता है।
६. कर्कराशि में स्थित मंगल पर शनि की दृष्टि हो, तो अनेक प्रकार के रोग होते हैं।
७. धनु या मीन राशि में स्थित बुध सूर्य द्वारा दृष्ट हो, तो शूल, प्रमेह और पथरी आदि।
८. दो पापग्रहों के मध्य चन्द्रमा हो और सातवेंभाव में शनि हो, क्षय, प्लीहा, श्वास रोग।
९. कर्क के सूर्य को शनि देखता हो, तो कफ और वायुविकार।
१०. लग्न में सूर्य, मंगल एवं शनि हो, तो पाण्डुरोग।
११. लग्न में पापग्रह की राशि में गुरु एवं चन्द्रमा हों, तो सिंर में चोट, वातशूल मन्दाग्नि, अजीर्ण, अरुचि आदि।
१२. दो पापग्रहों के मध्य चन्द्रमा हो तथा मकर राशि में सूर्य हो, तो क्षय, प्लीहा, खाँसी, श्वास रोग आदि।
१३. छठेभाव में चन्द्रमा सूर्य, मंगल एवं चन्द्रमा हों, तो शूल एवं विसर्प रोग।
१४. छठेभाव में मंगल के साथ चन्द्रमा हो, तो पाण्डुरोग एवं भ्रान्ति।
१५. छठेभाव में गुलिक के साथ शनि हो तथा उस पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो, क्षय, खाँसी एवं दमा।
१६. चतुर्थ में शनि हो, तो प्लीहा और नेत्ररोग।
१७. सातवें में सूर्य, मंगल और शनि हो, तो भगन्दर, वातशूल एवं अर्शरोग।
१८. अष्टम्भाव में मंगल के साथ चन्द्रमा हो, तो भगन्दर, अर्श एवं कुष्ठरोग।
१९. सप्तम् में मंगल पापग्रहों के साथ हो, तो मूत्रकृच्छ।
२०. आठवेंभाव में जलचरराशि में पापग्रह के साथ क्षीण चन्द्रमा हो, तो जलोद एवं क्षयरोग।
२१. लग्नेश एवं अष्टमेश राहु-केतु के साथ हों।
२२. कर्क या सिंह राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो, तो क्षयरोग।
२३. अष्टम् स्थान में मंगल के साथ चन्द्रमा हो, तो क्षयरोग।
२४. सप्तम्भाव में मंगल हो, पापग्रह से युक्त हो।
२५. सप्तम्भाव में मंगल पापग्रहों से दृष्ट हो।

❑

अध्याय-१५

यौनरोग

पृथ्वी के सन्दर्भ में ग्रहों एवं वातावरणीय प्रभाव में आज अनेक प्रकार के परिवर्तन आ गये हैं। जिस समय ज्योतिषीय सिद्धान्तों का अन्वेषण किया गया था, उस समय वातावरण में किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं था। प्राकृतिक तौर पर ग्रहों की रश्मियों का जो प्रभाव पड़ता था, उसमें रोग भी प्राकृतिक तौर पर ही उत्पन्न होते थे और आज के अनेक रोग पृथ्वी पर या तो थे ही नहीं या उनकी संख्या नगण्य थी।

किन्तु, आधुनिक विज्ञान की गतिविधियों एवं मनुष्य की मूर्खता ने आज सम्पूर्ण पृथ्वी का वातावरण प्रदूषित कर दिया है। इससे ओजोन परत फट गयी है और वायुमंडलीय घनत्व के स्तर में भी परिवर्तन आ गया है। फलस्वरूप ग्रहों से आने वाली रश्मियों का कोण बदल गया है। इसके साथ ही प्रदूषित वातावरण में उत्पन्न भोज्य, पेय एवं प्राणवायु ने मनुष्य के ऊर्जाचक्र के सन्तुलन में भी विकृति उत्पन्न कर दी है। इससे कुछ विशेष पापिष्ठ एवं क्रूरग्रहों का प्रभाव बढ़ गया है और शुभग्रहों का प्रभाव कम हो गया है। यही कारण है कि आज मानसिक विकृति एवं यौनरोग से पीड़ित लोगों का प्रतिशत अत्यधिक है। यौनरोग भी दो प्रकार का होता है। एक शारीरिक एवं एक मानसिक। वस्तुतः शारीरिक-रोगों की अपेक्षा इस क्षेत्र में भी मानसिक-रोगी ही अधिक पाये जाते हैं; तथापि शारीरिक रोगियों की भी संख्या बहुत बढ़ गयी है।

यौनरोग के लक्षण

यौनरोग दो प्रकार के होते हैं—(१) शारीरिक, (२) मानसिक। शारीरिक-रोगों को तो प्रत्यक्ष लक्षणों से पहचाना जा सकता है। कुछ एड्स जैसे रोगों को छोड़कर इसके लक्षण लगभग प्रत्यक्ष ही होते हैं; किन्तु मानसिक यौनरोगों के लक्षण निम्नलिखित हैं—

१. रतिक्रिया से विरक्ति—यह वैरागजन्य विरक्ति नहीं होती। इसे अरुचि कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसमें कामभाव से ही वितृष्णा हो जाती है। इस रोग की शिकार स्त्रियाँ अधिक होती हैं। मेरे पास यौन समस्यायें लेकर आने वालों में इस प्रकार के मानसिक-रोग की शिकार स्त्रियाँ ही अधिक पायी गयी हैं। इन रोगों के कारण प्रत्यक्ष परिस्थितियाँ होती हैं; परन्तु इन परिस्थितियों का निर्माण भी ग्रह योग ही करता है, अतः यह रोग भी ग्रहयोग से ही उत्पन्न होते हैं।

२. अत्यधिक कामभाव—अत्यधिक उत्तेजना, हर समय उत्तेजित रहना या उग्र कामभाव भी एक प्रकार का रोग ही है। ऐसे रोग प्रायः पुरुषों में अधिक पाये जाते हैं; तथापि इस प्रकार के रोगियों की संख्या स्त्रियों में भी कम नहीं है।

३. ठीक रति के समय जननेंद्रियों का निष्क्रिय हो जाना—रति से पूर्व कामभाव ठीक रहता है, पर ऐन उस वक्त जब रतिक्रिया प्रारम्भ करनी है, जननेंद्रिय उत्तेजनाहीन हो जाती है। ऐसे रोग पुरुषों में अधिक पाये जाते हैं।

४. शीघ्रपतन—प्राचीन भारतीय कामशास्त्र के विशेषज्ञों ने वास्तविक रतिक्रिया का समय २० मिनट से आधे घंटे तक माना है। तंत्रक्रियाओं में तो इसको समयातीत बना दिया गया है; किन्तु आज के युग में भी यह क्रिया दस मिनट से पन्द्रह मिनट तक ही होनी चाहिये; जबकि अधिकांश पुरुष दो मिनट से पाँच मिनट में स्खलित हो जाते हैं। इस अल्पसमय में स्त्री को सन्तुष्टि नहीं होती। वह इसे प्रकट नहीं करती और पति या साथी का मान रखने के लिये सन्तुष्टि का प्रदर्शन करती है। किन्तु, इस तनाव का प्रभाव गृहस्थ जीवन के दूसरेक्षेत्रों पर पड़ता है और दाम्पत्य सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो जाते हैं। शीघ्रपतन के कारण कभी भी शारीरिक नहीं होते। यह एक मानसिक-रोग है।

५. यौनविकृतियाँ—यौनविकृतियों के अन्तर्गत समलैंगिकता, स्त्री के साथ पृष्ठ सम्भोग, पशुसम्भोग, क्रूरता, वहशीपन आदि आते हैं। इन रोगों की शिकार स्त्रियाँ कम ही होती हैं। ये रोग अधिकतर पुरुषों में ही पाये जाते हैं।

६. स्वप्नदोष—अक्सर इस रोग के शिकार युवावर्ग के लड़के-लड़कियाँ होते हैं। यह एक प्रकार की मानसिक-रति है, जो स्वप्न में होती है। युवावस्था में कामनायें भड़कती हैं। शरीर और मन रति की कामना से बहकता है। आज टी०वी०, रेडियो, सिनेमा आदि का उच्छृंखल प्रदूषण भी मन पर प्रभाव डालता है। कामना की पूर्ति हो नहीं पाती, क्योंकि समाज में नैतिकता के कृत्रिम बन्धन हैं। तब मन नींद में बहकता है और स्वप्नदोष होता है। इसके भी कारण ग्रहयोग ही होते हैं; क्योंकि कुछ विशेष प्रकार की रश्मियाँ कामभाव को बढ़ाती हैं और कुछ अन्य विशेष प्रकार की मस्तिष्क को नियंत्रणहीन करती हैं।

मानसिक नपुंसकता के योग

१. सूर्य, मंगल, शनि द्वितीयभाव में हों।
२. सूर्य, मंगल एवं शनि षष्ठमभाव में हों।
३. कर्क में सूर्य, मेष में चन्द्रमा एवं शुक्र, शनि और राहु एक साथ उच्चराशि में हों।
४. लग्न में चन्द्रमा और गुरु एवं शनि पंचमभाव में हों।
५. लग्न में सूर्य विषमराशि में हो।
६. चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा एवं शनि हों।
७. कन्या लग्न में बुध एवं शनि की दृष्टि हो और शनि की राशि में शुक्र हो।
८. सातवेंभाव के लग्नेश पर शुक्र की दृष्टि हो।
९. सातवेंभाव के शुक्र पर लग्नेश की दृष्टि हो।
१०. शुक्र की राशि में चन्द्रमा हो।
११. शुक्र के साथ शनि दशवेंभाव में हो।
१२. सूर्य, बुध एवं शनि एक साथ हों।
१३. शुक्र से छठेस्थान में शनि हो।
१४. शुक्र से बारहवेंस्थान में शनि हो।
१५. सिंह स्थित बुध पर मंगल की दृष्टि हो।
१६. शुक्र मकरराशि में हो।
१७. शुक्र के साथ शनि तृतीयभाव में हो।
१८. शुक्र के साथ शनि बारहवेंभाव में हो।
१९. शुक्र से बारहवेंस्थान में शत्रुराशि में शनि हो।
२०. छठे या बारहवेंभाव में नीच राशिगत शनि हो।
२१. आठवेंभाव में शुक्र एवं शनि पापग्रह से दृष्ट हों।
२२. व्ययेश लग्न में हो।
२३. नवमेश अष्टम् में हो और पापग्रह से दृष्ट हो।
२४. पापग्रह सप्तमेश होकर नवमस्थान में हो।
२५. कारकांश में केतु पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो।
२६. मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भराशि में लग्न का बुध हो और उस पर शनि की दृष्टि हो।
२७. सप्तमेश चरराशि में हो और उस पर नपुंसकग्रह की दृष्टि हो।
२८. षष्ठेश लग्न में बुध की राशि में तथा लग्नेश भी बुध राशि में हो।

२९. आठवेंभाव में बुध पापग्रह से दृष्ट हो।
३०. आठवेंभाव में सूर्य एवं शनि हों।

स्त्रीरोग (बन्ध्यापन)

१. अष्टम्भाव में बुध हो।
२. अष्टम्भाव में सूर्य एवं शनि हों।
३. लग्न में चन्द्रमा-शुक्र, शनि या मंगल के साथ हो और पाँचवेंभाव में पापग्रह हों।
४. लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ में चन्द्रमा और शुक्र पापग्रहों से दृष्ट हों।
५. आठवेंभाव में सिंह या कर्क में सूर्य या चन्द्रमा हो।

विशेष—१. स्त्री-पुरुष के योग एक ही होते हैं। केवल बन्ध्यापन में ही अन्तर होता है।
२. उपर्युक्त योग में ही पौरुष की नपुंसकता भी है।
३. जन्मगत नपुंसकता के योग हम पूर्व ही दे आये हैं।

शारीरिक यौनरोग के योग

पुंसकता

१. लग्न में जलीयराशि में शनि के साथ चन्द्रमा हो।
२. विषमराशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे को देखते हों।
३. विषमराशि के शनि एवं बुध एक-दूसरे को देखते हों।
४. विषमराशि का मंगल समराशि सूर्य को देखता हो।
५. विषमराशि का मंगल लग्न के विषमराशि के चन्द्रमा को देखता हो।
६. विषम-राशि के बुध तथा समराशि के चन्द्रमा को मंगल देखता हो।
७. विषमराशि तथा विषमराशि के नवांश में लग्न, चन्द्रमा एवं बुध हों और उन पर शुक्र की दृष्टि हो।
८. मिथुन का षष्ठेश एवं लग्न के बुध से शनि एवं मंगल का योग हो।
९. विषमराशि के चन्द्रमा और शनि एक-दूसरे को देखते हों।
१०. चन्द्रमा और शनि एक साथ विषमराशि में हों।

उपदंश, शुक्ररोग, लिंगदोष आदि

१. षष्ठेश मंगल के साथ हो।
२. अष्टम्भाव में पापग्रह हो।

३. बृहस्पति बारहवेंभाव में हो।
४. षष्ठेश एवं बुध मंगल के साथ हों।
५. कर्क या वृश्चिक में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो।
६. बुध एवं राहु के साथ षष्ठेश लग्न में हो।
७. लग्नेश मंगल के साथ छठेभाव में हो।
८. शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा या चन्द्रमा की महादशा हो।
९. शुक्र की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।
१०. लग्नेश के साथ मंगल छठेभाव में हो।
११. षष्ठेश एवं मंगल एक साथ हों और इन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

गुप्तरोग

१. आठवें में धनु हो।
२. आठवें में दो से अधिक पापग्रह हों।
३. आठवें के पापग्रह पर पापग्रह की दृष्टि हो।
४. आठ्वें में नीच राहु हो।
५. बारहवें में पापग्रह के साथ बृहस्पति हो।
६. बारहवें में स्थित बृहस्पति पाप से दृष्ट हो।
७. कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो।
८. अष्टमेश की राशि में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो और उस पर राहु की दृष्टि हो।

स्त्रीरोग

१. सातवेंभाव में मंगल का नवांश हो, उस पर शनि की दृष्टि हो।
२. वृश्चिक में शुक्र हों।
३. सातवेंभाव में पापग्रह की राशि में पापग्रह के साथ हो।
४. लग्न एवं छठवें भाव में पापग्रह हों।
५. द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी में जन्म हो।
६. पंचमभाव में पापग्रह हों और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।
७. पंचमभाव के नवांश पर पापग्रह हों।

❑

अध्याय-१६

मानसिक-रोग

वर्तमान एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में मानसिक-रोगों के कारणों की कोई तर्कपूर्ण उचित व्याख्या नहीं है। पूर्ण रूप से सम्पूर्णशरीर स्वस्थ रहता है, अन्दर के अंगों में भी कोई विकृति नहीं होती, इसके बाद भी अच्छा-भला व्यक्ति मानसिक संतुलन खो बैठता है।

आयुर्वेद में भी इसके कारणों की कोई विस्तृत व्याख्या नहीं मिलती, केवल लक्षण बताये जाते हैं। वस्तुतः आयुर्वेद-ज्योतिष का ही एक अंग है। इसकी दवाओं को तैयार करने में ज्योतिष का ही योग प्रयुक्त किया जाता है। ज्योतिष के योग के साथ-साथ आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माण में तंत्रक्रियाओं का भी अत्यधिक महत्त्व है। वस्तुतः आयुर्वेद हरी वनस्पति औषधियों का शास्त्र है। इसे उखाड़ने या तोड़ने में ज्योतिषीय योग एवं इनको पंचामृत से धोने तथा दवा तैयार करने में तंत्र का योग प्रयुक्त किया जाता है। सामान्य आयुर्वेदिक दवायें गुणवत्ता की दृष्टि से इनकी अपेक्षा कम से कम पाँचगुणी दुर्बल होती हैं।

भारतीय ज्योतिष में मानसिक-रोगों के कारण ग्रहयोग बताये गये हैं। इनमें विभिन्न मानसिक-रोगों के योग निम्नलिखित प्रकार से बताये गये हैं—

उन्माद

१. लग्न में बृहस्पति सातवेंभाव में शनि हो।

२. लग्न में बृहस्पति सातवें में मंगल हो।

३. लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं बुध हों।

४. क्षीण चन्द्रमा और शनि साथ-साथ हों।

५. सातवेंभाव में पापग्रहों के साथ गुलिक हो।

६. लग्न में शनि एवं पंचम हों, सातवें या नवमेंभाव में मंगल हो।

७. लग्न, पाँचवें, नवमें तथा ग्यारहवेंभाव में पापग्रहों के साथ चन्द्रमः हो।

८. क्षीण चन्द्रमा और शनि दोनों बारहवें में हों।

९. तीसरे, छठे, आठवें या बारहवेंभाव में पापग्रह के साथ बुध हो।

पागलपन

१. लग्न में शनि, बारहवें में सूर्य एवं त्रिकोण में चन्द्रमा हो।
२. लग्न में शनि, बारहवेंभाव में सूर्य, त्रिकोण में मंगल हो।
३. शनि एवं द्वितीयेश पापग्रहों के साथ हों।
४. शनि एवं तृतीयेश मंगल के साथ हों।
५. लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं बुध हों।
६. क्षीण चन्द्रमा एवं शनि बारहवें में हों।
७. सातवेंभाव में पापग्रहों के साथ गुलिक हो।
८. शनि या तृतीयेश क्षीण चन्द्रमा के साथ हो।
९. शनि एवं द्वितीयेश सूर्य के साथ हों।
१०. मिथुन या कन्या में स्थित सूर्य पर बृहस्पति की दृष्टि हो।
११. त्रिकोण में शनि हो।
१२. पापग्रह एवं राहु का चन्द्रमा पाँचवें, आठवें या बारहवेंभाव में हो।
१३. क्षीण चन्द्रमा राहु एवं मंगल में बारहवेंभाव में हों।
१४. केन्द्रस्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा के साथ शनि हो।
१५. द्वितीयेश पापग्रह एवं मंगल के साथ रोगस्थान में हो।

प्रमाद

१. चन्द्रमा क्षीण होकर अष्टमेश के साथ रोगस्थान में हो।
२. चन्द्रमा, शुक्र एवं अष्टमेश राहु या केतु के साथ हों।
३. पाँचवेंभाव में पापग्रह हो।
४. पाँचवेंभाव में मंगल क्षीण चन्द्रमा के साथ हो।
५. छठेभाव में पापग्रह हों (शत्रु के द्वारा की गई तांत्रिक कार्यवायी के कारण)
६. नवमें एवं पाँचवें में पापग्रह हों।
७. द्वितीयेश, पापग्रह एवं शनि के साथ रोगस्थान में हो।
८. द्वितीयेश पापग्रह एवं मंगल के साथ रोगस्थान में हो।
९. द्वितीयेश पापग्रह एवं सूर्य के साथ रोगस्थान में हो।

मिरगी

१. आठवेंभाव में शनि, त्रिकोण में राहु, बारहवें एवं छठेभाव में शनि तथा सूर्य हों।
२. शनि के साथ चन्द्रमा हो और इन पर मंगल की दृष्टि हो।
३. आठवेंभाव में चन्द्रमा और राहु हों।
४. आठवेंभाव में पापग्रह हो तथा केन्द्र में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो।

५. मंगल के साथ शनि छठे या आठवें में हो।
६. मंगल सूर्य एवं चन्द्रमा के साथ आठवेंभाव में हो।
७. ग्रहणकाल में जन्म हो तथा शनि-मंगल पाँचवें या आठवेंभाव में एक साथ हों।
८. छठेभाव में चन्द्रमा तथा लग्न में राहु हो।
९. क्षीण चन्द्रमा राहु एवं मंगल के साथ छठे, आठवें, नवमें या बारहवेंभाव में हो।

बुद्धिलोप या जड़ता

१. शनि, चन्द्रमा एवं गुलिक केन्द्र में हो।
२. दिन में जन्म हो और गुलिक एवं सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
३. दिन में जन्म हो, शनि के साथ तृतीयेश हो।
४. राहु के साथ तृतीयेश आठवें में हो।
५. पाँचवेंभाव में शनि एवं गुलिक हों।
६. लग्न में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल या शनि की दृष्टि हो।
७. पंचमेश क्रूर षष्ठयंश में हो।
८. चन्द्रमा पर सूर्य, मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।
९. लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य मंगल हो।
१०. लग्न में स्थित मंगल या चन्द्रमा के साथ बुध हो या इस पर उसकी दृष्टि हो।
११. लग्नेश एवं चन्द्रमा—ये दोनों मंगल से पीड़ित हों।

अन्य मानसिक मनोविकार

१. चन्द्रमा एवं बुध केन्द्र में शुभग्रहों के प्रभाव में न हो। (मतिभ्रम)
२. दिन में जन्म हो, बलवान मंगल दशवें में हो। (क्रोध)
३. बलवान मंगल लग्न में हो, दिन में जन्म हो। (क्रोध)
४. लग्न में या सातवेंभाव में क्षीण मंगल शनि से दृष्ट हो। (क्रोध)
५. सातवें में बलवान मंगल हो। (क्रोध)
६. केन्द्र में गुरु हो। (चितभ्रम)
७. द्वितीयभाव में निर्बल बुध पापग्रहों से दृष्ट हो। (मतिभ्रम)
८. लग्न पर पापग्रहों की दृष्टि हो। (मन्दबुद्धि)
९. लग्नेश निर्बल हो। (मन्दबुद्धि)
१०. लग्नेश शनि के साथ हो। (भीरु)
११. गुरु एवं शनि साथ हों। (भीरु)

❑

खण्ड (ब) : रोगों एवं दुर्घटनाओं के ज्योतिषीय निदान

अध्याय-१

रोग के कारण और निदान का सिद्धान्त

भारतीय ज्योतिष के अनुसार किसी विशेषकाल एवं स्थान में ग्रहों की स्थिति का प्रभाव वातावरण के ऊर्जा संतुलन का निर्धारण करता है। इस काल में जो ऊर्जा शरीर निर्मित होता है (ज्योतिष में स्थूलशरीर ऊर्जा शरीर का बाहरी आवरण माना जाता है), वह उस काल एवं स्थान विशेष के उन विशिष्ट गुणों से प्रभावित होता है। इसका अर्थ यह है कि उस काल में शनि का प्रभाव किसी विशिष्ट भाव पर है, तो वह सम्पूर्ण जीवनकाल तक उस भाव से सम्बन्धित अंगों एवं ऊर्जातत्त्वों पर प्रभावी रहेगा। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में हम पूर्व ही बता आये हैं।

भारतीय ज्योतिष के रोग निदान का सिद्धान्त या दुर्घटना निदान का सिद्धान्त भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। किसी ग्रह का प्रभाव बढ़ा हुआ है और वह हानिकारक है, तो उसे कम कर दो और किसी का प्रभाव कम है, जो हानि पहुँचा रहा है, तो इसे बढ़ा दो।

प्रश्न यह उठता है कि क्या इस प्रकार किसी ग्रह के प्रभाव को कृत्रिम तरीके से कम या अधिक किया जा सकता है ? भला ऊर्जातरंगों को कोई कैसे नियंत्रित कर सकता है, जबकि उन्हें देखना भी सम्भव नहीं होता ?....अक्सर ऐसे प्रश्न पूछने वाले अपनी बुद्धिमतापूर्ण प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं। इसलिये इसका उत्तर देना आवश्यक लगता है।

यदि लेन्स के द्वारा सूर्य की किरणों के प्रभाव को कम या अधिक किया जा सकता है, यदि रेजिस्टेन्स का प्रयोग करके विद्युतीयशक्ति की धारा को कम किया जा सकता है, ट्रांसफारमरों का प्रयोग करके विद्युत के वोल्टेज को कम-अधिक किया जा सकता है, तो ग्रहों के प्रभाव को कम-अधिक क्यों नहीं किया जा सकता? यह दूसरी बात है कि इन ग्रहों का प्रभाव कम करने के लिये ज्योतिष में पत्थर, धातु एवं प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। इसके विस्तृत विवरण आगे

बताये गये हैं। तंत्र में इन प्रभावों को कम-अधिक करने के लिये, मंत्र, ध्यान एवं अनुष्ठान हैं।

किसी भी रोग की चिकित्सा के लिये प्राचीन भारतीय विद्वान् ऋषि-मुनि दो प्रकार के मार्ग अपनाते थे। एक तो रोग के कारक ग्रहों की शान्ति के उपाय तथा आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग। ये दोनों उपाय एक ही चिकित्सा-पद्धति से सम्बन्धित है। ज्योतिषीय उपाय रोग, दुर्घटना आदि व्याधियों से पूर्व सुरक्षा करते हैं; तो आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग रोग की उत्पत्ति के बाद उसके शमन के लिये किया जाता है।

ज्योतिष में किसी ग्रह का दुर्बल होना या किसी का शक्तिशाली होना ही रोगों एवं दुर्घटनाओं में कारक होता है; इसलिये इन रोगों एवं दुर्घटनाओं से सुरक्षा तभी हो सकती है; जब ग्रहों के योगों के संतुलन को परिवर्तित कर दिया जाये। इसके लिये निम्नलिखित उपाय किया जाता है।

१. रत्न धारण करना।

२. ग्रहों की तांत्रिक पूजा, ध्यान एवं अनुष्ठान।

३. सामान्य घरेलू टोटके।

कभी-कभी ग्रहों की शान्ति के लिये सभी उपायों को किया जाता है। कभी-कभी किसी एक या दो उपायों को करने से ही काम चल जाता है। इसका निर्धारण कारक ग्रह के बलाबल की स्थिति के अनुरूप किया जाता है। इन सभी विधियों का वर्णन विस्तार से आगे किया गया है।

'औषधियों द्वारा रोगों का निदान'—आयुर्वेद का विषय है। यह ज्योतिष-शास्त्र के अन्तर्गत नहीं आता, इसलिये हम इस पुस्तक में इसका वर्णन नहीं कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त करने की इच्छा वाले पाठकों को मेरी पुस्तक 'सरल आयुर्वेदिक चिकित्सा' (प्रकाशक—धीरज पॉकेट बुक्स) पढ़नी चाहिये।

❑

अध्याय-२

रत्न द्वारा ग्रहों की शान्ति

विभिन्न ग्रहों से जो रश्मियाँ पृथ्वी के वातावरण में आती हैं, वे विभिन्न पदार्थों की ओर विभिन्न प्रकार से आकर्षित होती हैं अर्थात् सूर्य की रश्मियाँ जिन पदार्थों की ओर सर्वाधिक शोभित होती हैं, वही पदार्थ अन्य ग्रहों की रश्मियों का शोषण नहीं करता या न्यून करता है। जो पदार्थ चन्द्रमा की रश्मियों को शोषित करता है, वह शेष अन्य ग्रहों की रश्मियों का शोषण नहीं करता। इसी प्रकार नौ ग्रहों की अलग-अलग रश्मियों को शोषित करने वाले पदार्थ होते हैं। इस प्रकार ऐसे पदार्थों का ग्रहों से एक ऊर्जा-सम्बन्ध बन जाता है। रत्न एवं धातुओं का ग्रहों के अनुसार वर्गीकरण इसी आधार पर किया गया है।

ग्रह शान्ति के लिये राशियों एवं ग्रहों के अनुसार रत्न एवं धातुएँ—

ग्रह	भारताय-मत	पाश्चात्य-मत	रत्न	धारण करन का समय
सूर्य	स्वर्ण, ताम्र	सुवर्ण	माणिक्य	सूर्योदय
चन्द्र	चाँदी	चाँदी	मोती	सूर्योदय
मंगल	विद्रुम, स्वर्ण	लोहा	मूँगा	सूर्यास्त
बुध	स्वर्ण, काँसा	पारा, टीन	पन्ना	किसी भी समय
बृहस्पति	चाँदी	टीन	पुखराज	दोपहर
शुक्र	चाँदी	ताँबा	हीरा	दोपहर
शनि	लोहा, सीसा	सीसा	नीलम	रात्रि
राहु	पंचधातु	लोहा	गोमेदक	रात्रि
केतु	पंचधातु	लोहा	वैदूर्य	रात्रि

अनिष्ट, निर्बल, नीच या शत्रु-क्षेत्र स्थित ग्रह की महादशा एवं अन्तर्दशा में निम्नरोगों की सम्भावना रहती है।

ग्रह	सम्भावित रोग
सूर्य	सिरदर्द, ज्वर, महाज्वर, नेत्र-विकार।
चन्द्र	तिल्ली, पांडु, यकृत, कफ, उदर-सम्बन्धी विकार।
मंगल	पित्त, वायु, कर्णरोग, विसूचिका, खुजली आदि।
बुध	खाँसी, हृदयरोग, कुष्ठ, आंत और हृदय सम्बन्धी रोग।
बृहस्पति	कण्ठरोग, गुल्मरोग, प्लीहा, फोड़ा-फुँसी, गुप्त स्थानों में रोग।
शुक्र	प्रमेह, मेदवृद्धि, कर्णरोग, वीर्य-विकार, नपुंसकता, वीर्य या इन्द्रिय-सम्बन्धी रोग।
शनि	उन्माद, वातरोग, भगन्दर, गठिया आदि।

रत्न का चुनाव

रत्न का चुनाव ग्रह के अनुसार करके उस ग्रह एवं रत्न से ही सम्बन्धित धातु का चुनाव करने के बाद उसे अंगूठी या हार आदि में इस प्रकार जड़ा जाता है; जिससे रत्न के अन्दर की सतह शरीर की त्वचा से सम्पर्क में रहे। इससे रत्न ग्रह से सम्बन्धित रश्मियों को रिसीवर की तरह ग्रहण करके शरीर में पहुँचाता है।

रत्न का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि रत्न शुद्ध एवं निर्दोष हो। उसके अन्दर कोई विकृति नहीं हो और फलक समतल हों। रत्न का वजन कम से कम ढाई रत्ती होना चाहिये। इसके सम्बन्ध में विभिन्न रत्नों के वजन से सम्बन्धित तालिका आगे दी जा रही है।

रत्नों का चुनाव करने के पश्चात् उसकी शुद्धता की भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। इसके लिये ग्रह के वर्ण का वस्त्र लेकर रत्न को गंगाजल और कच्चे दूध से धोकर उस वस्त्र द्वारा ही रात में उसे सोने से पूर्व इस प्रकार बाजू में बाँधें कि वह त्वचा के स्पर्श में रहे। रात में सोते समय व्याकुलता, सुखदनींद, स्वप्न (शुभ या अशुभ) आदि के आधार पर अपने शरीर पर उस रत्न के प्रभाव को जानें। यदि रत्न शुद्ध है और आपको इसके बाद भी व्याकुलता, बेचैनी या अशुभ स्वप्न आते हैं; तो आप स्पष्ट समझ लें कि वह रत्न आपके लिये उपयुक्त नहीं है। आपने रत्न का चुनाव ही गलत किया है किन्तु इसका निर्णय वही रत्न दूसरा टुकड़ा लेकर प्रयोग करने के बाद ही करें। यह प्रयोग सात दिन तक करें और औसत के आधार पर निर्णय करें।

रत्न धारण करने की तिथि-मास आदि

जब अपने लिये उपयुक्त रत्न का चुनाव कर लें, तो उसे आगे दी जा रही

तालिका के अनुसार वजन में लेकर सम्बन्धित धातु में जड़वाकर धारण करें। धारण करने की तिथि आदि भी आगे तालिका में दी जा रही है।

जन्म मास (अंग्रेजी)	धारण करने योग्य रत्न
१. जनवरी	लाल मणि गार्नेट
२. फरवरी	एमीथिस्ट
३. मार्च	ब्लड स्टोन या एक्वामेरीन
४. अप्रैल	हीरा
५. मई	पन्ना
६. जून	मोती या चन्द्रकान्त
७. जुलाई	माणिक्य
८. अगस्त	सौरडोनिक्स या पेरीडाट
९. सितम्बर	नीलम
१०. अक्टूबर	उपल या टर्मेलीन
११. नवम्बर	पीला पुखराज या सुनैला
१२. दिसम्बर	लाजवर्त या फिरोजा

जन्मतिथि (तारीख) के अनुसार रत्न धारण

जन्म तारीख	सूर्य की राशि	रत्न
१५ अप्रैल से १४ मई तक	मेष	मूंगा
१५ मई से १४ जून तक	वृषभ	हीरा
१५ जून से १४ जुलाई तक	मिथुन	पन्ना
१५ जुलाई से १४ अगस्त तक	कर्क	मोती
१५ अगस्त से १४ सितम्बर तक	सिंह	माणिक्य
१५ सितम्बर से १४ अक्टूबर तक	कन्या	पन्ना
१५ अक्टूबर से १४ नवम्बर तक	तुला	हीरा
१५ नवम्बर से १४ दिसम्बर तक	वृश्चिक	मूंगा
१५ दिसम्बर से १४ जनवरी तक	धनु	पीला पुखराज
१५ जनवरी से १४ फरवरी तक	मकर	नीलम
१५ फरवरी से १४ मार्च तक	कुंभ	गोमेदक
१५ मार्च से १४ अप्रैल तक	मीन	लहसुनिया

किसी अंश का शरीर की त्वचा से स्पर्श भी आवश्यक है। साथ ही ग्रहों की आकृति के समान ही धातु, वर्ण, आकार और दिन, समय आदि देखकर उन-उन ग्रहों के मन्त्र जपकर धारण करने से पूर्ण लाभ होता है। इसके लिए निम्नलिखित तालिका उपयोगी होगी।

ग्रह	रत्न	धातु	रत्न का वजन	धारण स्थान	समय
सूर्य	माणिक्य	सोना	३ रत्ती	दाहिने हाथ की तर्जिनी	सूर्योदय
चन्द्र	मोती	चाँदी	२ रत्ती	दाहिने हाथ की कनिष्ठिका	सन्ध्या
मंगल	मूँगा	सोना	६ रत्ती	अनामिका	सूर्योदय के एक घण्टे बाद
बुध	पन्ना	चाँदी सोना	३ रत्ती	दाहिने हाथ की कनिष्ठिका	सूर्योदय के २ घण्टे बाद
गुरु	पुखराज	सोना	६ रत्ती	दाहिने हाथ की तर्जिनी	सूर्यास्त से एक घण्टे पूर्व
शुक्र	हीरा	चाँदी सोना	१।। रत्ती	दाहिने हाथ की कनिष्ठिका	प्रातः
शनि	नीलम	स्टील, (पंचधातु.	४ रत्ती	दाहिने हाथ की मध्यमा	सूर्यास्त से २ घण्टे पूर्व
राहु	गोमेदक	चाँदी, (अष्टधातु)	४ रत्ती ४ रत्ती	दाहिने हाथ की मध्यमा	सायं २ घण्टे बाद
केतु	लहसुनिया	चाँदी	४ रत्ती	दाहिने हाथ की मध्यमा या कनिष्ठिका	अर्धरात्रि

रत्न के विभिन्न संयोगों का निषेध

रत्न		निषेधित रत्न
१. माणिक्य	—	हीरा, नीलम, गोमेदक, लहसुनियाँ
२. मोती	—	हीरा, पन्ना, नीलम, गोमेदक, वैदूर्य
३. मूँगा	—	पन्ना, हीरा, गोमेदक, वैदूर्य

४. पन्ना	—	मूँगा और मोती
५. पुखराज	—	हीरा, नीलम, गोमेदक, वैदूर्य
६. हीरा	—	माणिक्य, मोती, मूँगा, पीला पुखराज
७. नीलम	—	माणिक्य, मोती, पीला पुखराज, मूँगा
८. गोमेदक	—	माणिक्य, मूँगा, पुखराज
९. वैदूर्य	—	माणिक्य, मूँगा, मोती, पुखराज

रत्न धारण करने के सम्बन्ध में विभिन्न मत

कौन-सा रत्न धारण करना चाहिये ?

इस प्रश्न से सन्दर्भित ज्योतिष में अनेक मत प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. जन्मकुंडली के लग्न की राशि के अधिपति ग्रह का या लग्नेश का रत्न पहनना चाहिये।

२. जन्मकुंडली के अनुसार जिस ग्रह की महादशा चल रही हो, उस ग्रह का रत्न धारण करना चाहिये।

३. ज्योतिष के किसी वास्तविक विद्वान् से सूक्ष्म गणना करवाकर रत्न धारण करना चाहिये।

४. नवरत्न अर्थात् नौ ग्रहों से सम्बन्धित सम्मिलित रत्न धारण करना चाहिये।

इसमें उपर्युक्त तीन सिद्धान्त, तो ठीक हैं; परन्तु चौथे का कोई वैज्ञानिक आधार समझ में नहीं आता। ग्रहों की रश्मियों का शरीर प्राकृतिक रिसीवर है। किसी एक-दो-तीन ग्रह के कृत्रिम रिसीवर लगाकर रश्मियों के समीकरण को बदलना ही रत्नों के विज्ञान का सार है। यदि सभी रत्न धारण कर लिये, तो समीकरण तो वही बना रहा, फिर लाभ क्या हुआ ?

कृपया रत्न धारण करते समय यह ध्यान रखें कि रत्न उन्हीं ग्रहों के धारण करने चाहियें, जो आपकी जन्मकुंडली में दुर्बल हों। किसी बलवान ग्रह का कुप्रभाव दूर करने के लिये उसके प्रभाव को कम करने वाले ग्रह का रत्न पहनें। ❑

अध्याय-३

ग्रहों की तांत्रिक पूजा एवं अनुष्ठान

रत्न धारण करने के अतिरिक्त ग्रहों की शान्ति के लिये तांत्रिक विधि से पूजा-अनुष्ठान करने का प्रावधान है। यहाँ हम यह बताना चाहेंगे कि ग्रहों की शान्ति के लिये की जाने वाली तांत्रिक चिकित्सा ज्योतिष का नहीं, तंत्र-शास्त्र का विषय है और इसके लिये गुरु का होना आवश्यक है; तथापि यह एक अधिक प्रभावी और सशक्त मार्ग है, इसलिये इसका वर्णन भी हम कर रहे हैं।

सूर्य

आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी सूर्य इस सौर-मंडल के सभी ग्रहों का केन्द्र है। प्राचीन भारतीय खगोल-विज्ञान में भी इसे सृष्टि का केन्द्र माना गया है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इसे कश्यप ऋषि का प्रथम पुत्र माना है। आज इस कश्यप ऋषि की व्याख्या ऐसे की जा रही है, जैसे यह कोई मनुष्य हो; परन्तु वस्तुतः यह ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक विशिष्ट प्रकार का ऊर्जा परिपथ सूत्र है, जिसे 'कश्यप-सूत्र' कहा जाता है। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ में यही सूत्र व्याप्त है। इसी सूत्र में कहा गया है कि जब कहीं कोई परिपथ बनता है, तो (+) एवं (–) पोलों के साथ उसका केन्द्र (न्यूट्रल) भी बनता है और इस न्यूट्रल पर एक विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा का उत्सर्जन होने लगता है। इस केन्द्र के बाद ही अन्य ऊर्जा-बिन्दु विकसित होते हैं। इसी कारण सूर्य को कश्यप-ऋषि का प्रथम पुत्र कहा जाता है।

सूर्य का वर्ण ताम्रवर्णीय लाल है। ज्योतिष में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह एक राशि पर एक मास तक रहता है और जब यह क्षीण होता है, तो जीव की जीवनीशक्ति का ह्रास हो जाता है; जिससे उसका सर्वांग प्रभावित होता है। इसके प्रभाव की वृद्धि के लिये निम्नलिखित तांत्रिक अनुष्ठान करना चाहिये—

सूर्य अनुष्ठान (योग)

प्रातःकाल सूर्योदय प्रारम्भ होते ही योगा का 'सूर्य नमस्कार' करें (इसके लिये लेखक कृत धीरज पॉकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित 'योग, ध्यान और योगासन' पुस्तक पढ़ें) तत्पश्चात् एक ताम्बे के लोटे में जल लेकर सिर की ऊँचाई से ऊपर सामने की ओर हाथों को आगे बढ़ाकर सूर्य को जल अर्पण करें और मंत्र का पाठ करें। जल धीरे-धीरे और चौड़े धार में गिरायें। तीन लोटा जल सामने दायें एवं बायें करके सूर्य को अर्पित करें। यह अर्पण स्नान करने के पश्चात् भीगे वस्त्र में ही करना चाहिये और उस समय अपने हृदय के मध्य में ध्यान लगायें।

मंत्र—

(i) ऋग्वेद से सूर्योपासना का कोई भी मंत्र।

(ii) ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानों निवेश्ययन्न मृत्रं मर्त्यच।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यनः।।

तांत्रिक अनुष्ठान

समय—उषाकाल से पूर्ण सूर्योदय के एक घंटे बाद तक

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः ॐ घृणि सूर्याय नमः।

जपसंख्या—सात हजार (प्राचीन) अट्ठाइस हजार (कलयुग)।

हवन—आक का पत्ता, घी, लाल चन्दन का।

दान—ताम्बा, गेहूँ, गुड़, घी, लाल वस्त्र।

सूर्य को प्रसन्न करने के लिये तंत्र के भी दो अनुष्ठान हैं। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में स्नान आदि करके पूर्व की ओर आसन लगाकर हृदय के केन्द्र में ध्यान स्थापित करके उपर्युक्त मंत्र का जाप करना चाहिये। दूसरे में सर्वप्रथम आज्ञाचक्र पर, जो ललाट के मध्य दोनों भृकुटियों के मध्य थोड़ा ऊपर होता है, पहले ध्यान लगाना चाहिये। इसकी विधि यह है कि पद्मासन में पूर्व की ओर मुँह करके बैठने के पश्चात् नाक की नोक को देखें, फिर जब आज्ञाचक्र पर जोर पड़ने लगे, तो आँखें मूँदकर चक्षुपटल पर सूर्य का ध्यान लगाते हुए मंत्र जाप करना चाहिये।

सूर्य यंत्र

यह यंत्र पुष्यनक्षत्र में रविवार की सुबह भोजपत्र पर अनार की कलम से लिखना चाहिये। इस यंत्र में पीले रंग की स्याही का प्रयोग करना चाहिये।

६	१	८
७	५	३
२	९	४

चन्द्रमा

चन्द्रमा इस सौरमंडल में पृथ्वी का एक उपग्रह है। यह पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करता है और पृथ्वी के आयतन, गुरुत्वाकर्षण आदि से अपेक्षाकृत अत्यन्त अल्प है; तथापि यह उपग्रह पृथ्वी के सबसे निकट है, इसलिये छोटा होते हुए भी यह सूर्य के बाद पृथ्वी के वातावरण में सर्वाधिक प्रभाव डालता है। इसका स्पष्ट प्रभाव सागर के जल, कुछ विशिष्ट प्रकार के जीवों में देखा जा सकता है। चन्द्रमा का प्रभाव सामान्य रूप से भी मानसिक उल्लास अवसाद, मानसिक रोगियों आदि में देखा जा सकता है। ज्योतिष में चन्द्रमा को स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास, सम्मान, पारिवारिक सुख-प्रभावयश आदि का अधिष्ठाता माना गया है। यह क्षीण या पापित हो, तो इन सब पर बुरा प्रभाव डालता है। चन्द्रमा प्रत्येक राशि पर सवा दो दिन या ढाई दिन रहता है।

चन्द्रमा को 'सोम' कहा जाता है। आयुर्वेद में मान्यता है कि औषधियों के गुणों को इसी ग्रह की राशियाँ नियंत्रित करती हैं। इसलिये इसे औषधियों का देवता कहा जाता है, तथापि इस कथन का एक गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ भी है।

भारतीय विज्ञान 'यथा पिंड यथा जीव:' का सिद्धान्त मानता है। इसका मानना है कि सौरमंडल में जो रश्मियाँ स्थित हैं, उनके उत्सर्जन का केन्द्र जिस प्रकार सौरमंडल में है, उसी प्रकार शरीर में भी है। चन्द्रमा का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है। यह कपाल के ऊपर मध्य में स्थित होता है। चन्द्रमा की स्तुति के लिये ब्रह्मरन्ध्र पर ही ध्यान लगाना चाहिये।

जप-साधना

चन्द्रमा की किसी भी पूजा, साधना या अनुष्ठान के लिये सोमवार का वह

दिन उपयुक्त माना गया है, जिसमें कोई अशुभयोग न हो और समय वह उपयुक्त माना गया है, जब चन्द्रमा (चाहे वह जिस कला का हो) आसमान में स्पष्ट चमकने लगे और पृथ्वी पर उसका प्रकाश फैला हुआ हो। इस समय चन्द्रमा की ओर मुँह करके आसन लगाकर मंत्र का जाप करना चाहिये। ऋग्वेद के 'सोम' की स्तुति में दिये गये किसी भी मंत्र का जाप किया जा सकता है। इसके मंत्र की जपसंख्या ११००० है। कलयुग में इसके जप की संख्या ४४००० मानी गयी है।

जपमंत्र—ॐ इमन्देवाऽअसपत्न ढं गुबध्यं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठमाय महते जानराज्ययायेन्द्रिस्येन्द्रियाय इममुख्य पुत्रमृभुष्यै पुत्रमस्यै विषड़एशवोमी राजा। सोमोऽस्माकं ब्राह्मणनां ठं राजा।

तांत्रिक अनुष्ठान

समय—उपरोक्त वर्णित

मंत्र—ॐ रां रीं रौं सः सोमाय नमः

जपसंख्या—ग्यारह हजार

हवन—पलाश का पंचांग, चन्दन (लकड़ी), दही, कपूर, चावल, मिश्री।

दान—चाँदी, चावल, श्वेत चन्दन आदि।

चन्द्रमा की शान्ति के लिये भी दो प्रकार के तांत्रिक अनुष्ठान किये जाते हैं। एक में केवल हवन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान लगाया जाता है। दूसरे में पूर्व वर्णित विधि से आज्ञाचक्र में चन्द्रमा का ध्यान लगाया जाता है।

चन्द्रमा का यंत्र

यह यंत्र भोजपत्र पर कपूरमिश्रित चन्दन से अनार की कलम द्वारा शुद्ध रूप से भूमि पर बैठकर लकड़ी की चौकी पर लिखा जाता है—

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

मंगल

गहरे लाल रंग का मंगल सौरमंडल का ही एक ग्रह है। मंगल शुभ हो, तो व्यक्ति को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचाता है, अशुभ हो तो यह असहनीय कष्ट और अपमान देता है। यही कारण है कि विवाह के संस्कार में इस ग्रह की स्थिति का लड़के-लड़की की कुंडली में सर्वाधिक ध्यान रखा जाता है।

मंगल को शान्त करने के लिये मंगल के मंत्र का जाप करना चाहिये। हनुमान जी की विधिवत पूजा-अर्चना भी मंगल को अनुकूल बनाती है; परन्तु मंगल की शान्ति एवं अनुकूलता के लिये प्राणायाम भी एक अद्भुत साधन है। वस्तुतः हनुमान जी की वास्तविक साधना यह प्राणायाम ही है। पौराणिक देवी-देवताओं के व्यक्तित्व के पीछे अनेक तांत्रिक गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं; जो कभी ब्राह्मण, ऋषि-मुनि आदि जानते थे, आज नहीं जानते। इससे पूजा तो रह गयी, पर उसका अर्थ विलुप्त हो गया। यही कारण है कि आज पूजा-अनुष्ठान का समुचित लाभ लोगों को नहीं मिल पाता।

तंत्र (योगतंत्र) में केन्द्रीय बिन्दु को (सूर्य, नाभिक आदि) विष्णु कहा गया है। इसे ही इन्द्र भी कहा गया है (इनमें थोड़ा अन्तर है, पर यहाँ इसका उल्लेख सन्दर्भहीन है)। इस विष्णु की उपासना प्राणवायु करती है; क्योंकि यहाँ सर्वदा ऊर्जा-विखंडन होता रहता है। इस प्राणवायु का अर्थ ऑक्सीजन मात्र नहीं समझना चाहिये। वैदिक विज्ञान में प्राणवायु के अनेक भेद बताये गये हैं। वह प्रत्येक गैसीय तत्त्व जो केन्द्रीय भट्टी को विखंडन के लिये शक्ति प्रदान करता है; प्राणवायु है। जीवन के लिये यह ऑक्सीजन है। यह प्राणवायु वायु का ही एक रूप है, इसलिये यदि इसे वायुपुत्र कहा जाता है, तो क्या अतिश्योक्ति है ?....हनुमान राम की सेवा करते थे। राम विष्णु अवतार थे। प्राणवायु भी विष्णु (शरीर के केन्द्र हृदय के मध्य चक्र) की सेवा करती है, अतः योगतंत्र में वही हनुमान है।

मंगल एक क्रूरग्रह है। यह मन-मस्तिष्क एवं शरीर में अग्नितत्त्व का आधिक्य प्रदान करता है। इसमें ज्वलनशीलता एवं प्रदीप्ति हो, तो स्फूर्ति, उल्लास, उमंग, अतिरिक्त शक्ति मिलती है और यदि इन रश्मियों की क्षीणता हो, यह घुट रही हो या उग्र हो और मन-शरीर इसे सम्हालने में असमर्थ हो; तो क्या उपाय हो सकता है ?....इसकी अग्निरूप रश्मियों को प्राणवायु दीजिए। वह घुटेगी नहीं, क्रोधित नहीं होगी; क्योंकि अग्नि तो प्राणवायु के अभाव में ही धुआँ और घुटन प्रदान करती है। ताजी हवा का झोंका तो इसके ताप तक को कम कर देता है। सिन्दूर से मस्तक पर नासिका से ब्रह्मरन्ध्र तक की स्थिति को रेखांकित कीजिए

और प्राणवायु की योगसाधना में जब प्राणायाम द्वारा इसे ब्रह्मरन्ध्र की ओर प्रेषित किया जाता है, तब इसके मार्ग का रेखांकन कीजिये। आपको तब ज्ञात होगा कि सिन्दूर से हनुमान की पूजा का अर्थ क्या है। वस्तुतः वैदिक अनुष्ठानों के रहस्यमय गूढ़ अर्थों को केवल तंत्रयोग में ही गुरु-शिष्य परम्परा में समझाया जाता रहा है। जनसामान्य को तो केवल आस्थाजन्य पूजाविधि बतायी जाती रही है; जिसमें मानसिक एकाग्रता और भाव की शक्ति का ही लाभ मिलता है। वह वैज्ञानिक लाभ नहीं मिल पाता, जिसके सूत्र इन वर्णनों में गुप्त स्वरूप में बताये गये हैं।

मंत्र— धरणी गर्भ सम्भूतं, विदुयुत् कान्ति समप्रभम।
कुमारं शक्ति हस्तं च, मंगलं प्रणमाग्यहम्।।

जपसंख्या—दस हजार (प्राचीन), चालीस हजार (आधुनिक)।

तांत्रिक अनुष्ठान

किसी शुभ-मुहूर्त्त में रात्रि के समय इस अनुष्ठान को करना चाहिये। मंगल क्षीण हो, तो पहली विधि, प्रबल हो और अशुभ प्रभाव दे रहा हो, तो दूसरी विधि।

समय—रात्रि में दूसरे पहर से तीसरे पहर तक।

मंत्र— ॐ ह्रीं श्रीं मंगलाय नमः।
ॐ क्रां क्रीं क्रों सः भौमाय नमः।।

जपसंख्या—दस हजार (प्रतिदिन प्रत्येक मंगलवार इक्कीस मंगलवार तक)

हवन—लाल चन्दन, मसूर, गुड़, घी, केसर, कस्तूरी, लाल कनेर पुष्प या ओड़हुल का पुष्प, आदि।

दान—ताम्बा, मलका, गुड़, घी, मसूर, लाल कपड़ा, लालफूल, केसर, कस्तूरी आदि।

पहली विधि—इस विधि में विधिवत मंगल की पूजा करके भूमि पर एक त्रिकोण बनाकर उसमें शिवलिंग को रेखांकित करना चाहिये। तत्पश्चात् विधिवत् वेदी बनाकर उसमें मंत्र जाप करते हुए हवन देना चाहिये। मंत्र जाप पूर्ण होने पर थोड़े-से घी में लाल चन्दन का पाउडर (महीन कर लें), केसर, कस्तूरी, लालपुष्प को अर्क या मसला हुआ (पूजा में का ही पुष्प) आदि हवन-सामग्री से लेकर तीन बार मंत्र जाप करते हुए मिलायें और दुर्बल मंगल वाले व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर पर १००८ मंत्र जाप करते हुए पूरी आस्था और लग्न से लगायें। यह सारी रात लगा रहने दें। प्रातः गर्मजल से स्नान करवायें।

दूसरी विधि—बलवान मंगल अशुभ प्रभाव दे रहा हो, तो इस लेप को खूब गाढ़ा करके मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक नौ बिन्दुओं पर पीठ के बल

लिटाकर रखें और उपर्युक्त मंत्र जाप करते हुए अनुष्ठान करें। अनुष्ठान के तुरन्त बाद स्नान करायें।

मंगलयंत्र

इसे भोजपत्र पर अनार की कलम और लाल चन्दन से लिखें। शुभ मुहूर्त्त में मंगलवार का दिन इसके लिये उपयुक्त होता है—

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

बुध

बुध को ज्योतिष में चन्द्रमा का पुत्र कहा गया है। यह सौरमंडल में दूर स्थित है और इसका प्रभाव नपुंसक है। यह ग्रह के अनुरूप ही अपने रश्मियोग का प्रभाव उत्पन्न करता है।

बुध को बुद्धि, कला, लालित्य और प्रेम का अधिष्ठाता माना जाता है। यह एक राशि पर एक मास रहता है। यह कन्याराशि का स्वामी है, इसलिये इस राशि पर इसका सर्वाधिक प्रभाव (अच्छा या बुरा) होता है।

बुध की शान्ति के लिये ईशान कोण की ओर मुख करके बैठकर प्रातःकाल सूर्योदय के समय निम्नलिखित मंत्र का जाप ३६००० बार करना चाहिये। यह जप बुधवार के सूर्योदय के समय प्रारम्भ करके निरन्तर जप पूरा होने तक करना चाहिये।

मंत्र— ॐ उद्बुध्य स्वाग्नये प्रति जाग्रही त्वनिष्ठा पूर्तेश ठं सृजेधामयग्च।
अस्मिनत्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन विश्वेदेवा दजमानाश्च सीदता।।

तांत्रिक अनुष्ठान

बुध को बुद्धि का प्रतीक माना जाता है। वैदिक मंत्रों में इसे विश्वदेवा कहा गया है। विश्वदेवा का ही एक अन्य रूप गणेश जी हैं। गणेश जी का आधारतत्त्व

रुद्र है। यह रुद्र ही विश्वदेवा है, जिसकी चेतन अनुभूति को गणेश कहा जाता है। यह शक्तिबिन्दु जीव के आज्ञाचक्र (ललाट में दोनों भृकुटियों के मध्य थोड़ा ऊपर) में उत्पन्न होती है। यदि आप स्वयं के इस आज्ञाबिन्दु पर ध्यान लगायेंगे, तो आपको स्पष्ट प्रतीत होगा कि आधारबिन्दु से जो शक्ति उत्पन्न होती है, उसे केन्द्रित करते हुए सूक्ष्म (प्वाइन्टेड) किया जा सकता है। इसे सुदूर कहीं भी केन्द्रित किया जा सकता है। गणेश जी की सूँड यही है। इस देवता के प्रतीकात्मक चित्र में इस सूँड को हाथी की सूँड दिखाया गया है। हाथी शक्ति का प्रतीक है। इसकी सूँड शक्तिशाली वृक्षों को भी उखाड़ फेंकती है। इस प्रतीक चित्र में यही बताया गया है कि आज्ञाचक्र की यह सूँड इतनी शक्तिशाली है, कि इसे जहाँ भी केन्द्रित करेंगे, वहाँ विलक्षण प्रभाव उत्पन्न होने लगेगा। जीव में यह सूँड न हो, तो वह न विचार कर सकता है, न ही किसी निश्चय पर पहुँच सकता है। इसी कारण प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में गणेश (एकाग्रचित् की शक्ति) की आराधना करने का विधान है।

बुध को सौरमंडल का आज्ञाचक्र बिन्दु समझना चाहिये। इस बिन्दु पर जो ऊर्जातरंगें उत्पन्न होती हैं, उसका प्रभाव जीव के आज्ञाचक्र पर पड़ता है। यही कारण है कि इसे बुद्धि का अधिष्ठाता ग्रह माना जाता है। सिंह की सवारी और रुद्र का आधार—भाव लगभग एक ही है।

प्रारम्भ का समय—प्रातःकाल—दिन—बुधवार

अन्त का समय—प्रातःकाल—दिन—बृहस्पतिवार

हवन—मूँग, खाँड, चीनी, घी, हरी दूब, कपूर, गिलोय, शहद, चावल, गोरोचन आदि।

तांत्रिक औषधि—ब्राह्मी, गिलोय, गाय का घी, श्वेत चन्दन, कपूर।

मंत्र—ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुद्धाय नमः

जप संख्या—३६००/९०००

शुभ बुधवार के ब्रह्ममुहूर्त में स्नानादि करके पवित्र होकर कमरे या भूमि के नैऋत्य कोण के कुछ नीचे (इसका निर्धारण नैऋत्य एवं ईशान के कर्ण की लम्बाई का १/८ भाग नैऋत्य की ओर छोड़कर किया जाता है।) ईशान कोण की ओर मुख करके पद्मासन या सुखासन में बैठें। अपने सामने एक वेदी बनायें और गणेश की प्रतिमा वेदी के पीछे बनाकर उपर्युक्त मंत्र का जाप करते हुए ९००० बार हवन करें। हवन करते समय काँसे के थाल में हवन सामग्री रखें और कांसे के ही थाल में औषधियाँ रखें। प्रत्येक हवन के बाद औषधियों को छुएँ।

हवन समाप्त होने के बाद दैनिक संध्या आचमन आदि से निबटकर रात के प्रथम पहर में आज्ञाचक्र पर ध्यान लगायें और उपर्युक्त मंत्र जाप करें। यदि

गुरु किसी यजमान के लिये यज्ञ कर रहा हो, तो उस समय वह अपना हाथ यजमान के ललाट पर इस प्रकार रखेगा कि उसके आज्ञाचक्र पर गुरु के दाहिने हाथ की हथेली का मध्य हो। इसमें गणेश का ध्यान लगायें और उनकी सूँड को ईशान की ओर बढ़ाकर बुध से तरंगें खींचें।

दूसरे पहर में औषधियों को घृत में अच्छी प्रकार मिलाकर यजमान के सम्पूर्ण शरीर पर धीमी गति से लगाते हुए मंत्र पढ़ें, प्रातःकाल तक। यह अनुष्ठान चार बुधवार को चार बार करना चाहिये।

बुध क्षीण, दुर्बल या कुपित हो परीक्षा में कला प्रतियोगिताओं में, इन्टरव्यू आदि में अर्थात् तमाम बुद्धि आधारित कार्य में असफलता प्राप्त होती है। दाम्पत्य कलह के लिये मंगल को उत्तरदायी माना जाता है, परन्तु बुध इस समस्या में बुद्धिहीनता उत्पन्न करके और भी जटिल बना देता है। शनि-बुध, राहु-बुध का योग तो मस्तिष्क को ही शून्य करने लगता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने इस ग्रह का ध्यान हमेशा रखना चाहिये। यह ठीक हो, तो अनेक ग्रहों का दुष्प्रभाव भी कम प्रभाव डालता है। छात्र-छात्राओं, नवविवाहित जोड़ों, कलात्मक प्रतियोगियों, बुद्धिजन्य कार्यों के करने वालों आदि स्त्री-पुरुषों या युवक-युवतियों को बुध को सबल एवं शुभ करने का यत्न अवश्य करना चाहिये।

औषधियों के साथ चाँदी एवं सोने की मिश्रित पायल, बिछिया, अंगूठी, हार, टीका आदि को भी अभिमंत्रित करके पहनना लाभदायक होता है। तांत्रिक अनुष्ठान में हवन की जो सामग्री बतायी गयी है, उसका ही दान किया जाना चाहिये। इसमें हरा कपड़ा, हथियार और काँसा जोड़ लेना चाहिये।

बुध यंत्र

इस ग्रह का यंत्र काँसे के पत्र पर अंकित करवाकर पूजन आदि करके जप

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

किया जाता है और पूजाग्रह में रखा जाता है। इसे भोजपत्र पर अष्टगन्ध तुलसी के रस या श्वेत चन्दन से भी लिखा जाता है। इसकी लेखनी के लिये अनार की कलम का प्रयोग करना चाहिये।

बृहस्पति

बृहस्पति को देवताओं का गुरु कहा जाता है। यह ग्रह जिन तरंगों को वातावरण (पृथ्वी या सौर) में प्रेषित करता है; वह ज्ञानतत्त्व की ऊर्जातरंगें हैं। हम पूर्व ही बता आये हैं कि वैदिक देवता और वाममार्गीय देवी-देवता इन्हीं ऊर्जा तरंगों के प्रतीकात्मक स्वरूप में चित्रित या नामांकित किये गये हैं। ज्ञान ऊर्जा इस विश्व (ब्रह्माण्ड) और इसके कण-कण के संचालन का सबसे प्रमुख तत्त्व है। अघोरतंत्र में इन ऊर्जा तरंगों को हाकिनी, वाममार्ग में रुद्र, वेद में विश्वदेवा कहा जाता है। देवी सरस्वती हाकिनी का ही एक विशेष रूप है।

बृहस्पति सौरमंडल में इस ऊर्जा को उत्पन्न करने वाला ग्रह या बिन्दु है। इसीलिये इसे देवताओं का गुरु कहा जाता है। जीव में यह बिन्दु आज्ञाचक्र का आधार या मूल है (गणेश इसके अग्रसूचीमुख (प्वाइन्टेड) सिरा हैं।)

बृहस्पति अशुभ, निर्बल या कुपित हो; तो व्यक्ति ज्ञान से रिक्त हो जाता है। ज्ञान न हो, तो बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। ऐसा व्यक्ति मूर्ख, क्रोधी, अहंकारी, अपमान सहने वाला, हततेज, असफल और तिरस्कृत रहता है। जिस पर बृहस्पति की कृपा हो, वह निर्धन साधनहीन और दुर्बल तो हो सकता है; पर उसकी ज्ञानशक्ति उसे सदा सम्मान का सुख देती है।

बृहस्पति धनु और मीनराशि का स्वामी है। यह एक राशि पर एक वर्ष तक रहता है। विद्वता, ज्ञान का प्रतीक होने के कारण इसे 'गुरु' भी कहा जाता है।

मंत्र— देवानां च ऋषीणां च गुरु कांश्चनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।

इस मंत्र का जाप ७६००० बार करना चाहिये। एक और मंत्र इस प्रकार है—

ॐ बृहस्पतयेतियदर्पथोऽहद्यिमद्विभति क्रतुमज्जनेषु।
यद्यीदयच्छयसऽऋत प्रजाततदस्मासु द्रविशं घेहिचित्रम्।।

बृहस्पति की पूजा-साधना गुरुवार (शुभ) के प्रातः में करनी चाहिये। इसका मंत्र ७६००० बार जपा जाता है। इसे सुविधानुसार ९ या १०८ भाग में बाँटकर प्रत्येक गुरुवार की सुबह जाप करें।

दानसामग्री—हल्दी, पीला कपड़ा, पीले फूल, स्वर्ण, पूड़ी, खीर, पीली मिठाई, केसर, कुमकुम आदि।

तांत्रिक अनुष्ठान

समय—बृहस्पति के प्रातः से शुक्र के प्रातः

मंत्र—ॐ ग्राँ ग्रीं ग्रौं सः गुरवै नमः।

जपसंख्या—१९०००

हवन—चने की दाल, खांड, पीला फूल, हल्दी, दूब, घी, गोरोचन, केसर, केला, अमरूद, चावल, शहद, कपूर, गिलोय आदि।

औषधि या अन्य—पीला कपड़ा, केसर, हल्दी, दूध या क्रीम, महुआ, स्वर्ण आदि।

बृहस्पति को प्रसन्न करने के लिये बुध की ही भाँति आसन आदि की व्यवस्था करके उसी प्रकार समस्त विधि अपनाते हुए भगवान रुद्र या बृहस्पति की पूजा करनी चाहिये। इसका ध्यान आज्ञाचक्र के मूलकेन्द्रबिन्दु पर लगाया जाता है।

यजमान के लिये अनुष्ठान करने पर बुध की ही भाँति समस्त क्रियाविधि करनी चाहिये। हल्दी को पिसवाकर उसे दूध या क्रीम में मिलाकर केसर के साथ मालिश करके चार बार अनुष्ठान करना चाहिये।

बृहस्पति यंत्र

बृहस्पति का यंत्र रजतपत्र या भोजपत्र पर अनार की कलम से (रजत पत्र पर खुदवाने के बाद) केसर-कुमकुम से लिखना चाहिये। यंत्र को शुभतिथि में स्वच्छ होकर या अनुष्ठान के बाद तुरन्त लिखना चाहिये और इसकी पूजा आदि करके पूजास्थान पर रखना चाहिये।

१०	५	१२
११	९	७
६	१	८

शुक्र

शुक्रग्रह से विकरित होने वाली किरणें अन्य ग्रहों से अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावपूर्ण हैं। यह सौरमंडल का मूलाधार बिन्दु है। मनुष्यों या जीवों में यह स्थान रीढ़ की हड्डी एवं कमर की जोड़ के मध्य में होता है। यहीं से जीवों के प्रजननांग विकसित होते हैं। अतः शुक्र का प्रभाव वंशवृद्धि, सन्तान, भूमि, अचल सम्पत्ति स्थायित्व, संकल्प दृढ़ता आदि पर पड़ता है। वेद में इसे कामऊर्जा (कामदेव), वाममार्ग में काली और अघोरतंत्र में डाकिनी शक्ति के नाम से पुकारा जाता है। यह स्वास्थ्य, भौतिक सुख, सन्तति, भूमि, भवन, वाहन आदि की उपलब्धि कराता है। शुक्राचार्य को दानवों का गुरु कहा जाता है। दानव जड़तावादी शक्तितरंगों के प्रतीक हैं, जो (–) धारा है। शुक्र इसी का प्रतिनिधित्व करता है। यह इतना शक्तिशाली ग्रह है कि जीवन और उत्पत्ति की धारा इसके ही प्रभाव से पृथ्वी या सौरमंडल पर चलती है। यह तुलाराशि का स्वामी है और एक राशि पर एक मास तक रहता है।

शुक्र के दान एवं हवन के लिये—चाँदी, चावल, मिश्री, दूध, सफेद फूल, कपूर, नारियल तेल, पीपल की टहनियाँ, इलायची, केसर, विजया, दही, सफेद चन्दन, घी, मधु आदि का प्रयोग किया जाता है।

शुक्र निर्बल, नीच, अशुभ या कुपित हो; तो स्त्री या पुरुष काम (सेक्स) सम्बन्धी रोगों, निर्बलता, खिन्नता आदि का शिकार हो जाते हैं। शीघ्रपतन, स्वप्नस्खलन, यौनांगों की निर्बलता, यौन विरक्ति, सन्तानहीनता, नपुंसकता, बन्ध्यापन आदि के शिकार हो जाते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य की क्षति, फोड़ा, रक्त एवं मांस के रोग, अचल सम्पत्ति का नाश, भवन आदि की क्षति भी शुक्र के अनुकूल न होने पर होती है।

शुक्रवार के सूर्योदय के समय यह जप प्रारम्भ किया जाता है और पीपल की समिधा से हवन करते हुए उपर्युक्त हवन सामग्री का प्रयोग किया जाता है। इसमें निम्नलिखित जप १६००० बार किया जाता है। मंत्र निम्नलिखित है—

ॐ अन्नात्परि श्रुतोरसं ब्रह्मणाप्य पिवत् क्षत्रं पयः।
सोमं प्रजापति ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ई।
शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।

तांत्रिक अनुष्ठान

यह अनुष्ठान भूमि या कक्ष के ईशान कोण पर आसन लगाकर किया

जाता है। इसके लिये पीपल, आक, आम और बेल की लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है।

समय—यह अनुष्ठान शुभ समय देखकर अमावस्या की रात्रि के प्रथम प्रहर से प्रारम्भ करके प्रातःकाल तक किया जाता है। इस ग्रह को प्रसन्न करने के लिये शुक्र देवता या माता महाकाली की प्रतिमा पर ध्यान लगाना चाहिये। गुह्य तंत्र क्रियाओं में यह ध्यान आज्ञाचक्र के बिन्दु (गणेश-सूँड) को मूलाधार पर लगाकर किया जाता है या शुक्र ग्रह की ओर बढ़ाकर किया जाता है।

मंत्र—ॐ द्रां द्रीं द्रौं शुक्राय नमः

मंत्र प्रतिदिन ४००० बार जप करके अनुष्ठान करना चाहिये और अमावस्या से अगले शुक्र के सूर्योदय तक निरन्तर रात्रि में अनुष्ठान करना चाहिये।

उपयोगिता—विवाहित जीवन सफल नहीं है, सन्तान नहीं हो रही है, कामांग दुर्बलता, यौनरोग आदि के लिये और अच्छा पति प्राप्त करने, ससुराल में भौतिक सुख प्राप्त करने के लिये अथवा पुरुष जातक को भौतिक सुख आदि प्राप्त करने के लिये शुक्र का अनुष्ठान करना चाहिये।

हवन—चावल, दही, मिश्री, दूध, घी, मधु, कपूर, श्वेत चन्दन, तिल आदि।

दान—सफेद कपड़ा, चाँदी।

रत्न—मोती, स्फटिक।

औषधि—विजया, गिलोय, ब्राह्मी, घी, बेलपत्र, कालीमिर्च, इलायची, सिन्दूर और चाँदी की अंगूठी, पायल आदि।

शुक्र ग्रह को प्रसन्न करने के लिये उपर्युक्त के अनुसार आसन एवं वेदी बनाकर जातक या जातिका को ईशान की ओर मुख करके बैठाना चाहिये और अनुष्ठानकर्त्ता गुरु को उसके बायीं ओर बैठना चाहिये।

हवन सामग्री एवं औषधियों को चाँदी के पात्र में रखना चाहिये। हवन के पश्चात् औषधियों को पीसकर विजया, कालीमिर्च, बेलपत्र, इलायची की सुपारी इतनी बड़ी गोलियाँ बनाकर एक गोली दूध के साथ खिलानी चाहिये और मूलाधार चक्र पर ध्यान लगवाना चाहिये। ध्यान से पूर्व अन्य औषधियों को मिलाकर शरीर पर लेप करते हुए मंत्र पढ़ना चाहिये। तत्पश्चात् स्नान करवाकर जातक-जातिका की हथेलियों, तलुवों, पैरों, दोनों कूल्हों के शीर्ष एवं मूलाधार पर सिन्दूर से शुक्र यंत्र अंकित करके ध्यान लगवाना चाहिये। सन्तान, कामसुख एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अनुष्ठान हो, तो नाभि को केन्द्र बनाकर यह यंत्र अंकित करना चाहिये। ध्यान के समय गुरु का हाथ या ऊँगली मूलाधार पर रहनी चाहिये।

काम, सन्तान आदि के लिये अनुष्ठान करवाने में स्त्री-पुरुष दोनों से अनुष्ठान करवाना चाहिये।

शुक्र यंत्र

शुक्र यंत्र भोजपत्र या रजतपत्र या ताम्रपत्र पर अनार की कलम से अष्टगन्ध द्वारा लिखा जाता है। इसमें श्वेत चन्दन की स्याही का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस यंत्र को अनुष्ठान में रखना चाहिये। अनुष्ठान सम्पन्न हो जाने पर इसे पूजागृह में रखें। इस यंत्र का प्रतिदिन धूप-दीप से सत्कार करना चाहिये। शुक्रवार को वैदिक या तांत्रिक मंत्र का जाप १०८ बार सन्ध्या या रात्रि के समय करना चाहिये।

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

शनि

शनि को एक बदनाम ग्रह समझा जाता है; परन्तु यह हानि तभी पहुँचाता है, जब यह अशुभस्थिति में हो। इसकी गति अत्यन्त धीमी है। यह ढाई वर्ष तक एक राशि में रहता है और अगल-बगल की राशियों को भी प्रभावित किये रहता है; इसलिये इसका प्रभाव प्रत्येक राशि पर साढ़े सात वर्ष तक रहता है।

यह कुरूप, क्रूर और कठोर ग्रह है। यह क्रोध, क्रूरता, निर्ममता और विध्वंसक तरंगों को विकरित करता है। यह तमोगुण प्रधान ग्रह है और जीव में इसका स्थान मूलाधार का केन्द्र है।

यह ग्रह शुभ होने पर तेज, सफलता, यश, समृद्धि. पराक्रम आदि की वृद्धि करता है। जब यह कुपित होता है, तब राजा को भिखारी, पहलवान को रोगी बना देता है। अपयश, तिरस्कार, निन्दा आदि उसके भाग्य बन जाते हैं। इसलिये इस ग्रह की उपासना का महत्त्व ज्योतिष एवं तंत्र में सर्वाधिक है। यह तामसी प्रकृति

का ग्रह है और अघोरपंथ की देवी डाकिनी का एक रूप है। यह ग्रह अधिकतर अशुभस्थिति में ही रहता है। इसकी शान्ति के लिये शनिवार के प्रातःकाल से प्रारम्भ करके निम्नलिखित मंत्र एक हफ्ते तक में ९२००० बार जाप करना चाहिये—

मंत्र— ॐ शन्नोदेवी रमिष्ट यऽआपो भवन्तु पीतये।
श्योरमि श्रवन्तु न।

दान सामग्री—लोहा, उड़द, कुल्थी, कड़ुआ तेल (सरसों), काला या नीला कपड़ा, काला-नीला फूल, काली गाय, आबनूस आदि की लकड़ी, काला कम्बल, नीलम आदि।

शनिदेव की पूजा पीपल की जड़ में पूर्व दिशा की ओर मुख करके की जाती है और जल, तेल, उड़द आदि चढ़ाकर नैवेद्य अर्पित किया जाता है। इसके हवन में शमी के वृक्ष की लकड़ी की समिधा का प्रयोग किया जाता है।

शनि की पूजा कच्ची भूमि पर शनि यंत्र बनाकर भी की जा सकती है।

तांत्रिक अनुष्ठान

शनि की प्रसन्नता के लिये ज्योतिष में लोहा, सरसों तेल, उतारे हुए जूते आदि दान करने के लिये कहा गया है। तंत्रमार्ग में शनि को शान्त या प्रसन्न करने के लिये हनुमान एवं शिव की आराधना करने के लिये कहा जाता है। विष्णु की आराधना से भी शनि की कृपा प्राप्त होती है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। शनि के सम्बन्ध में जो कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें कहा गया है कि विष्णु और शिव भी उससे प्रताड़ित हुए। जिज्ञासुओं के मन में यह आशंका उठ सकती है कि जब विष्णु और शिव स्वयं इनसे प्रताड़ित होते हैं, तो वे इनसे रक्षा कैसे करेंगे ?

वस्तुतः यह सन्देह वैदिक प्रतीकों एवं रूपकों के रहस्य को न समझने के कारण उत्पन्न होता है। शिव, विष्णु आदि देवताओं की मानवाकृति के चित्र एवं मानवीकरण करके बनायी गयी रूपक कथाओं ने अनेक भ्रम उत्पन्न कर दिये हैं। वस्तुतः ये देवी-देवता ब्रह्माण्डीय ऊर्जातत्त्व के अनेक रूपों के प्रतीक हैं। वैदिक विज्ञान में चूँकि सभी कुछ चैतन्य माना गया है, इसलिये इन ऊर्जा तरंगों को भी चैतन्य मानकर गुणों के अनुरूप इनका मानवरूप तैयार किया गया है।

अघोर की डाकिनी और ज्योतिष के शनि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वैदिक ऊर्जासूत्र के अनुसार प्रत्येक परमाणु, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगंगाओं, निहारिकाओं, ब्रह्माण्ड आदि में ऊर्जा का जो परिपथ है, उसमें (—) पोल की ओर एक ऊर्जा उत्सर्जन बिन्दु है। इस बिन्दु के मूल से जो ऊर्जा उत्पादित होती है, वह

'डाकिनी' है। यह डाकिनी ही विभिन्न रूपों में ढलकर काली, छिन्नमस्ता, तारा आदि देवियों या कामदेव जैसे देवताओं के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जिस रूप में यह शक्ति इस ऊर्जा बिन्दु के केन्द्र में बनती है, वह रूप अत्यन्त क्रूर, उत्तेजक, तामसी एवं हिंसक है। यह एक ऐसी ऊर्जा है, जो ओज, पराक्रम, वीरता, उल्लास आदि गुणों वाली ऊर्जा उपरूपों में ढलती है। यह सृजनात्मक कामशक्ति की भी जननी है; परन्तु यदि यह ऊर्जा इन रूपों में न ढली, तो यह सम्पूर्ण तन-मन और व्यक्तित्व पर छा जाती है। इससे अतिशय क्रोध, हिंसक भाव, कामभाव, वीभत्सभाव, उत्तेजना, जिद आदि गुण व्यक्तित्व को प्रभावित कर लेते हैं और जब ये भाव अनियंत्रित अवस्था में हों, तो बुद्धि एवं विवेक की वहाँ कोई महत्ता ही नहीं रहती। ऐसा व्यक्ति अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं आदि का शिकार होगा ही। ये ऐसे गुण-धर्म हैं, जो व्यक्ति से अपनों को दूर कर देते हैं, व्यवसायी का ग्राहक टूट जाता है, ये बनते काम बिगाड़ देते हैं, समाज में भी ये गुण कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करने देते।

विष्णु या शिव जीवात्मा हैं और हनुमान प्राणवायु। यह प्राणवायु ही शरीर की समस्त ऊर्जा-तरंगों को विभिन्न रूपों में ढलने में ईंधन या उत्प्रेरक का कार्य करती है। यह कम हो जाये, तो न ऊर्जा-बिन्दु सही ढंग से ऊर्जा उत्पादित कर पाते हैं, न ही उत्पादित ऊर्जा का सही उपयोग हो पाता है। यही कारण है कि हनुमान की शक्ति को शनि की शमनकर्त्ता शक्ति समझा जाता है।

विष्णु या शिव की कहानियाँ अवतारों की कहानियाँ हैं। अवतार को उस जैसा तो माना जा सकता है, पर ये वे नहीं होतें। विष्णु या शिव हृदय में स्थित जीवात्मा है। यह प्रत्येक परमाणु प्रत्येक जीव में है। यदि शनि को शान्त करना है, तो अपने हृदय के ऊर्जाचक्र पर ध्यान लगायें। विधि पूर्व में दी जा चुकी है अर्थात् आज्ञाचक्र पर ध्यान लगाकर चक्षुपटल (आँख बन्द करने के बाद) अपने हृदय के चक्र को इसमें स्थापित करें और मंत्र जाप करते हुए प्रतिदिन १०८ मंत्र तक पूर्ण एकाग्रता से ध्यान लगायें। केवल इतने से ही लाभ होगा।

समय—शनि के प्रातः से मंगल के प्रातः तक।

मंत्र—ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनिश्चरायै नमः।

हवन सामग्री—उड़द, कुल्थी, कड़ुआ तेल, काली गाय का घी, तिल, जौं, धूप, गुग्गल, केसर, अष्टगन्ध आदि।

दान—लोहा, काला कपड़ा, सरसों तेल, जौं आदि।

मंत्र जप संख्या—९२०००/२३०००

शनि की शान्ति के लिये तांत्रिक अनुष्ठान मूलाधार (ईशान कोण) पर इसी

ओर मुख करके आसन लगाना चाहिये। पीपल की समिधा से ध्वनाग्नि जलाकर मंत्र पढ़ते हुए ध्यान लगाकर आहुति देनी चाहिये।

सरसों के तेल को कम से कम ५ किलो रखकर अनुष्ठान करें और इस तेल को शीशे के बर्तन में बन्द करके जातक से सटाकर रखें। उसके चारों ओर उड़द पढ़कर घेरा बनायें। यह अनुष्ठान भी मूलाधार को स्पर्श करके किया जाता है।

औषधि के रूप में बेलपत्र को ताम्बे के पात्र या कुश आदि (भूज, कर, कुश) के पात्र में रखकर मंत्रास्पर्श करें। यह बेलपत्र छाया में सुखाकर रख लें तथा एक गोली (सुपारी) प्रतिदिन पीसकर ठंडे पानी या दूध से खायें। तेल में से चौड़े मुख वाले पात्र में १०-१५ ग्राम तेल फैलाकर (लोहे के पात्र) सिरहाने में रखें और प्रातःकाल उस बर्तन को नींबू-पानी से धुलवायें। धोना किसी पवित्र स्थान पर चाहिये और कच्ची मिट्टी हो, तो मिट्टी से या नाली हो तो पानी की धार से उस धोवन को ढक या धो देना चाहिये। कुल्थी, उड़द, जौं आदि भी सिरहाने में रखी जा सकती हैं।

शनि की उपासना में लगे व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति जिन पर शनि का प्रकोप हो; लौहतत्त्व से युक्त भोजन, सरसों तेल, उड़द, जौ, कुल्थी आदि से सम्पर्क तोड़ लें। इन्हें काला या नीला कपड़ा भी नहीं पहनना चाहिये। पीला या आसमानी रंग का वस्त्र पहनना चाहिये।

शनि उग्र, कुपित या सूर्य मंगल आदि के साथ हो; तो उपर्युक्त वस्तुओं का त्याग करना चाहिये और नीलम आदि भी नहीं धारण करना चाहिये। यदि यह दुर्बल हो, तो इनका उपयोग करना चाहिये।

शनि प्रकोपित व्यक्ति को रात्रि में घी और कपूर का दीपक जलाकर सोना चाहिये।

शनि यंत्र

यह यंत्र लोहे के पत्र, जस्ते के पत्र या नीले-काले कागज पर नीली या

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

काली स्याही से लिखना चाहिये। इसे सरसों तेल के प्रकाश में पीपल के नीचे लिखना उत्तम होता है।

राहु

ज्योतिष, तंत्र, अनुष्ठान, यज्ञ आदि के तत्त्व, सूत्र एवं वर्णन एक ऐसे सूक्ष्म-विज्ञान पर आधारित हैं; आधुनिक विज्ञान जिसकी व्याख्याओं को वास्तविक सन्दर्भ में समझ पाने में असमर्थ है। वह अपने ज्ञान पर जब भी इसकी व्याख्या करता है, रास्ते में ही रह जाता है और तब वह इस प्राचीन विज्ञान का ही मजाक उड़ाने लगता है। वह एक अहंकारी की भाँति कभी यह नहीं सोचता कि अपूर्णता उसमें भी हो सकती है। वह स्वयं को ही प्रमाण मानकर तथ्यों की प्रामाणिकता की व्याख्या करता है। राहु एवं केतु के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है।

दु:ख इस बात का है कि हमारे देश के आधुनिक वे विद्वान भी, जो स्वयं को भारतीय प्राचीन विद्या का महान ज्ञाता बताते हैं, इन स्थितियों का उत्तर देने में असमर्थ हैं और कहते हैं कि उस समय हमारे महर्षियों को इसका ज्ञान नहीं था। राहु-केतु को ही ले लीजिये। इस नाम का कोई ग्रह सौरमंडल में नहीं है और यह बात आधुनिक विज्ञान की समझ से परे है। छायाग्रह या अदृश्यग्रह क्या होता है ?

वैसे तो ग्रहों, सौरमंडलों एवं ब्रह्माण्ड के (–) अस्तित्त्व पर विश्व के बहुत से वैज्ञानिक माथापच्ची कर रहे हैं कि यह वहाँ हो सकता है; और इस आधार पर इन छायाग्रहों की उचित व्याख्या की जा सकती है; परन्तु यह छायाग्रह पृथ्वी का (–) अस्तित्त्व या कोई सौरमंडल तैरता हुआ अदृश्यग्रह नहीं है। यह कोई धूमकेतु भी नहीं है। वस्तुतः भारतीय ज्योतिष का राहु और केतु पृथ्वी की दो पोलों के मध्य दो प्रकार की स्थितियों से उत्पन्न होने वाली छायायें हैं। इन स्थितियों एवं इनसे उत्पन्न छायाओं का प्रभाव सम्पूर्ण भूमंडल पर पड़ता है। इससे गुजरने वाली तरंगें अपना मार्ग परिवर्त्तित करके भिन्न ही प्रभाव उत्पन्न करने लगती हैं। ज्योतिष में राहु-केतु का अर्थ यही है। इसीलिये इनकी आकृति सूप जैसी बतायी गयी है। किसी गेन्द की छाया को देखिये। वह रूप जैसी ही होती है।

राहु-केतु अन्धकार की शक्तियाँ हैं। अन्धकार में दानवी प्रवृत्ति होती है; इसीलिये इन्हें दैत्य कहा जाता है। ये एक ही पृथ्वी की दो छायायें हैं; इसीलिये इनकी एक ही शरीर के दो अंग के रूप में मान्यता है।

यों तो मनुष्य एक विकसित प्राणी है; और उसका कल्याण दैव ऊर्जा से ही हो सकता है, तथापि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसमें दानवी शक्ति (–) की ओर या जड़ता की ओर उन्मुख) ही प्रबल है। यह शक्ति जब सात्विक रूप

में ढलती है, तो कल्याण करती है; पर जब यह तामसी रूप धारण करती है, तो व्यक्ति को अधमगति में पहुँचा देती है। राहु-केतु की भी यही स्थिति है। यही कारण है कि दानवी शक्ति मानते हुए भी इनकी शान्ति के लिये पूजा-अनुष्ठान किया जाता है।

राहु अशुभस्थान में हो, तो अत्यन्त कष्टदायक एवं अपमानजनक हो जाता है। यही स्थिति केतु की है; तथापि कुछ ज्योतिषी केतु की गणना शुभग्रहों में करते हैं; क्योंकि केतु में तामसिक प्रवृत्तियाँ तो हैं; परन्तु ये राहु की भाँति विध्वंसक नहीं हैं। केतु हो या राहु इसका शुभ या अशुभ प्रभाव इसकी स्थिति के अनुसार होता है। अशुभ केतु रोग एवं दुर्घटना का जनक है।

मंत्र (राहु)— ॐ कयानश्चित्रऽआभुव दूती सदावृद्यः सखा।
कयाश्चिष्ठ या वृताः (जप ७२०००)

मंत्र (केतु)— ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्यापेशसे सम्प्रषद्भिरजा यथा।
(जप ७८०००)

राहु एवं केतु की सभी पूजा, जप, अनुष्ठान, ध्यान यंत्र-लेखन विधि आदि में वही विधि अपनायी जाती है, जो शनि में अपनायी जाती है।

तांत्रिक अनुष्ठान

इसमें भी शनिग्रह की शान्ति की क्रिया ही अपनायी जाती है। हवन में कपूर, दूब और छाया में विकसित होने वाले वानस्पतिक औषधियों का प्रयोग जोड़ देना चाहिये।

राहु-केतु यंत्र

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

राहु

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

केतु

यह भी शनि की ही भाँति राँगा के पत्र पर यंत्र लिखा जाता है। कागज धूम्रववर्ण का प्रयुक्त करना चाहिये। ❑

अध्याय-४

ग्रहों के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातें

१. **ग्रहों के मंडल** की आकृतियाँ एवं माप भारतीय ज्योतिष में इस प्रकार बतायी गई हैं—

सूर्य—वृत्ताकार, लाल, बारह अंगुल।

सोम (चन्द्रमा)—चतुष्कोणीय, श्वेत, चार अंगुल।

मंगल—त्रिभुजाकार, लाल, तीन अंगुल।

बुध—वाणाकार, हरित, चार अंगुल।

बृहस्पति—चतुष्कोणीय, पीतवर्ण, ६ अंगुल।

शुक्र—षट्कोणीय, श्वेत वर्ण, ९ अंगुल।

शनि—धनुषाकार, श्यामवर्ण, दो अंगुल।

राहु—सूर्पाकार, धूम्रवर्ण, बारह अंगुल।

केतु—ध्वजाकार, श्यामवर्ण, मंडल ६ अंगुल।

२. प्राचीनकाल में भारतीय वैदिक-विज्ञान एवं वाममार्ग के सिद्धान्तों की कितनी महत्ता थी, इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारतभूमि के हिमालय से समुद्र तक के भूखण्ड को इकाई मानकर इस भूमंडल में कश्यपसूत्र के ऊर्जाबिन्दुओं की निशानदेही की गयी थी और इसके विभिन्न बिन्दुओं पर उत्पन्न होनेवाली, ऊर्जातरंगों को वर्गीकृत करके शिवलिंग, शक्तिपीठ एवं कुछ महत्त्वपूर्ण तीर्थों की स्थापना की गई थी। यमुना एवं सरस्वती यहाँ की प्राकृतिक नदियाँ थीं। इनकी रचना उन्हीं रेखाओं पर थीं, जहाँ यह जीव या इकाई में ऊर्जाधारा की नाड़ी धारा बनाती हैं। गंगा नहीं थी, तो उसे सुषुम्ना (गंगा) नाड़ी की भाँति खुदवाकर बनाया गया और मान सरोवर से उल्टा करके बहाया गया है। ये सब तांत्रिक शक्तिचक्र के सूत्रों पर स्थापित या निर्मित हैं।

भारतीय ज्योतिष ने ग्रहों के विशिष्ट प्रभाव वाले बिन्दुओं का भी भारतभूमि में रेखांकन किया है।

ये इस प्रकार हैं—

सूर्य—कलिंग प्रदेश।

चन्द्रमा—यमुना के तटीय भाग (ब्रज, प्रयाग आदि)

मंगल—अवन्ती (उज्जैनी)

बुध— मगध

बृहस्पति—सिन्धु देश (पश्चिमी भाग)

शुक्र—उड़ीसा का तटीयक्षेत्र

शनि—सौराष्ट्र

राहु—मलयदेश

केतु—प्रयाग (संगम)

३. यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई ग्रह दो अवस्थाओं में अशुभ परिणाम देता है। ग्रह की रश्मियाँ निर्बल स्थिति में हों और योग शुभ हो, तो भी अशुभ परिणाम प्राप्त होते हैं। ग्रह की रश्मियाँ सबल हों और योग अशुभ हो, तो भी अशुभ परिणाम होते हैं। यदि सबलग्रह के प्रभाव को कम करना है, तो उस ग्रह के रत्न, धातु या औषधि को धारण न करके उस ग्रह रत्नादि को धारण करें, जो उस सबलग्रह के प्रभाव को कम करता हो। यदि निर्बल ग्रह की रश्मियों को बलवान करना हो, तो उसी ग्रह के रत्न आदि को धारण करें। इन स्थितियों का ध्यान न रखने पर लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होगी।

४. शनि, राहु, मंगल, केतु और सूर्य के योग पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। शुक्र का प्रभाव निर्बल होने पर सन्तानहीनता, नपुंसकता, यौन-दुर्बलता, स्वास्थ्य हानि, अचलसम्पत्ति की हानि आदि होती है। इसलिये इन छः ग्रहों की स्थिति को निरन्तर समझते रहना चाहिये। विवाह से पहले मंगल एवं शुक्र की स्थिति को समझना बहुत आवश्यक है। यौन-दुर्बलता, सन्तानहीनता, नपुंसकता आदि की स्थिति की अनुभूति होते ही शुक्र की स्थिति को अवश्य ही देखें और उसका उपाय करें। यह समय बीतने पर और भी दुर्बल होता जाता है।

५. ग्रह के काल का ज्ञान दृष्टि, शुभभाव आदि को ज्ञात करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे निम्नलिखित सारणी के अनुसार समझें—

ग्रहकाल-चक्र

ग्रह	दिन	वर्ष	आयु वर्ष	महादशा वर्ष	सामान्य चक्र	प्रभाव का समय	प्रभाव की गति
सूर्य	२२	२२	१००	६	२	प्रारम्भ में	रथ सदृश
चन्द्र	२४	२४	८५	१०	१	अन्त में	अश्व सदृश
मंगल (शुभ)	२४	१३	९०	३	२	प्रारम्भ में	चीता सदृश
मंगल (अशुभ)	३२	१५ (२८)	९०	४	४	प्रारम्भ में	हिरण सदृश
बुध	६८	३४	८०	१७	२	सदैव	मेढ़ा सदृश
गुरु	३२	१६	७५	१६	६	मध्य में	बब्बर शेर सदृश
शुक्र	५०	२५	८५	२०	३	मध्य में	बैल सदृश
शनि	७२	३६	९०	१९	६	×	मछली सदृश
राहु	४०	४२	९०	१८	६	×	हाथी सदृश
केतु	४३	४८	८०	७	३	अन्त में	सुअर व कुत्ता सदृश

ग्रहदृष्टि-चक्र

भाव	दृष्टि का प्रकार	परस्पर सहायता	सामान्य दृष्टि	टकराव	नींव	विश्वासघात	साझी चोट	अचानक चोट
१	→	५	७	८	९	१०	२, ४	३, ७, ११
	←	९	७	६	५	४	१२, १०	
२	→	६	८	९	१०	११	३	४
	←	१०	८	७	६	५	१	
३	→	७	९	१०	११	१२	४	१
	←	११	९	८	७	६	२	
४	→	८	१०	११	१२	१	५, ७	१०, ६, २
	←	१२	१०	९	८	७	३, १	
५	→	९	११	१२	१	२	६	७
	←	१	११	१०	९	८	४	
६	→	१०	१२	१	२	३	७	४
	←	२	१२	११	१०	९	५	

७	→	११	१	२	३	४	८, १०	१, ५, ९
	←	३	१	१२	११	१०	६, ४	
८	→	१२	२	३	४	५	९	१०
	←	४	२	१	१२	११	७	
९	→	१	३	४	५	६	१०	७
	←	५	३	२	१	१२	८	
१०	→	२	४	५	६	७	११, १	४, ८, १२
	←	६	४	३	२	१	९, ७	
११	→	३	५	६	७	८	१२	१
	←	७	५	४	३	२	१०	
१२	→	४	६	७	८	९	१	१०
	←	८	६	५	४	३	११	

शुभाशुभ-चक्र

अदृष्ट अकेलाग्रह	सामान्यतः अशुभभाव	सामान्यतः शुभभाव
सूर्य	६, ७, १०	१ से ५, ८, ९, ११, १२
चन्द्र	६, ८, १० से १२	१ से ५, ७, ९
मंगल	४, ८	१ से ३, ५ से ७, ९ से १२
बुध	३, ८ से १२, सदैव अशुभ न होंगे।	१, २, ४, ५, ६, ७
गुरु	६, ७, १० अशुभ गुरु को केतु से सहायता मिलेगी।	१ से ५, ८, ९, १२
शुक्र	१, ६, ९	२ से ५, ७, ८, १०, ११, १२
शनि	१, ४, ५, ६	३, २, ७ से १२
राहु	१, २, ५, ७ से १२	३, ४, ६
केतु	३ से ६, ८	१, २, ७, ९ से १२

६. कुछ ज्योतिषी फल ज्ञात करने के लिये जन्मकुंडली के राशिअंक को हटाकर लग्न में १ से क्रमबद्ध रूप से द्वादश भाव तक १२ अंक भरकर फल ज्ञात करते हैं। यह विधि भी प्रामाणिक मानी जाती है।

७. वर्षफल बनाने के लिये यहाँ एक सारिणी दी जा रही है, जिसके आधार पर आयु के किसी भी वर्ष की कुंडली बनायी जा सकती है। इससे यह ज्ञात किया जा सकता है कि जातक के ग्रह किस वर्ष किसभाव में रहेंगे यह इस सारिणी से ज्ञात किया जा सकता है—

वर्ष-कुंडली के भावों में ग्रह परिवर्तन-चक्र

वर्ष कुंडली चक्र—१

आयु वर्ष	जन्म कुंडली के भाव											
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	१	९	१०	३	५	२	११	७	६	१२	४	८
२	४	१	१२	९	३	७	५	६	२	८	१०	११
३	९	४	१	२	८	३	१०	५	७	११	१२	६
४	३	८	४	१	१०	९	६	११	५	७	२	१२
५	११	३	८	४	१	५	९	२	१२	६	७	१०
६	५	१२	३	८	४	११	२	९	१	१०	६	७
७	७	६	९	५	१२	४	१	१०	११	२	८	३
८	२	७	६	१२	९	१०	३	१	८	५	११	४
९	१२	२	७	६	११	१	८	४	१०	३	५	९
१०	१०	११	२	७	६	१२	४	८	३	१	९	५
११	८	५	११	१०	७	६	१२	३	९	४	१	२
१२	६	१०	५	११	२	८	७	१२	४	९	३	१
१३	१	५	१०	८	११	६	७	२	१२	३	९	४
१४	४	१	३	२	५	७	८	११	६	१२	१०	९
१५	९	४	१	६	८	५	२	७	११	१०	१२	३
१६	३	९	४	१	१२	८	६	५	२	७	११	१०
१७	११	३	९	४	१	१०	५	६	७	८	२	१२
१८	५	११	६	९	४	१	१२	८	१०	२	३	७
१९	७	१०	११	३	९	४	१	१२	८	५	६	२
२०	२	७	५	१२	३	९	१०	१	४	६	८	११
२१	१२	२	८	५	१०	३	९	४	१	११	७	६
२२	१०	१२	२	७	६	११	३	९	५	१	४	८
२३	८	६	१२	१०	७	२	११	३	९	४	१	५
२४	६	८	७	११	२	१२	४	१०	३	९	५	१

वर्ष-कुंडली चक्र—२

आयु वर्ष	जन्म कुंडली के भाव											
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
२५	१	६	१०	३	२	८	७	४	११	५	१२	९
२६	४	१	३	८	६	७	२	११	१२	९	५	१०
२७	९	४	१	५	१०	११	१२	७	६	८	२	३
२८	३	९	४	१	११	५	६	८	७	२	१०	१२
२९	११	३	९	४	१	६	८	२	१०	१२	७	५
३०	५	११	८	९	४	१	३	१२	२	१०	६	७
३१	७	५	११	१२	९	४	१	१०	८	६	३	२
३२	२	७	५	११	३	१२	१०	६	४	१	९	८
३३	१२	२	६	१०	८	३	९	१	५	७	४	११
३४	१०	१२	२	७	५	९	११	३	१	४	८	६
३५	८	१०	१२	६	७	२	४	५	९	३	११	१
३६	६	८	७	२	१२	१०	५	९	३	११	१	४
३७	१	३	१०	६	९	१२	७	५	११	२	४	८
३८	४	१	३	८	६	५	२	७	१२	१०	११	९
३९	९	४	१	१२	८	२	१०	११	६	३	५	७
४०	३	९	४	१	११	८	६	१२	२	५	७	१०
४१	११	७	९	४	१	६	८	२	१०	१२	३	५
४२	५	११	८	९	१२	१	३	४	७	६	१०	२
४३	७	५	११	२	३	४	१	१०	८	९	१२	६
४४	२	१०	५	३	४	९	१२	८	१	७	६	११
४५	१२	२	६	५	१०	७	९	१	३	११	८	४
४६	१०	१२	२	७	५	३	११	६	४	८	९	१
४७	८	६	१२	१०	७	११	४	९	५	१	२	३
४८	६	८	७	११	२	१०	५	३	९	४	१	४

वर्ष-कुंडली चक्र—३

आयु वर्ष	जन्म कुंडली के भाव										
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
४९	१	७	१०	६	१२	२	८	४	११	९	३	५
५०	४	१	८	३	६	१२	५	११	२	७	१०	९
५१	९	४	१	२	८	३	१२	६	७	१०	५	११
५२	३	९	४	१	११	७	२	१२	५	८	६	१०
५३	११	१०	७	४	१	६	३	९	१२	५	८	२
५४	५	११	३	९	४	१	६	२	१०	१२	७	८
५५	७	५	११	८	३	९	१	१०	६	४	२	१२
५६	२	३	५	११	९	४	१०	१	८	६	१२	७
५७	१२	२	६	५	१०	८	९	७	४	११	१	३
५८	१०	१२	२	७	५	११	४	८	३	१	९	६
५९	८	६	१२	१०	७	५	११	३	९	२	४	१
६०	६	८	९	१२	२	१०	७	५	१	३	११	४
६१	१	११	१०	६	१२	२	४	७	८	९	५	३
६२	४	१	६	८	३	१२	२	१०	९	५	७	११
६३	९	४	१	२	८	६	१२	११	७	३	१०	५
६४	३	९	४	१	६	८	७	१२	५	२	११	१०
६५	११	२	९	४	१	५	८	३	१०	१२	६	७
६६	५	१०	३	९	२	१	६	८	११	७	१२	४
६७	७	५	११	३	१०	४	१	९	१२	६	८	२
६८	२	३	५	११	९	७	१०	१	६	८	४	१२
६९	१२	८	७	५	११	३	९	४	१	१०	२	६
७०	१०	१२	२	७	५	११	३	६	४	१	९	८
७१	८	६	१२	१०	७	९	११	५	२	४	३	१
७२	६	७	८	१२	४	१०	५	२	३	११	१	९

वर्ष—कुंडली चक्र—४

आयु वर्ष	जन्म कुंडली के भाव											
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
७३	१	४	१०	१२	११	७	८	२	५	९	३	
७४	४	२	३	८	६	१२	१	११	७	१०	५	९
७५	९	१०	१	३	८	६	२	७	५	४	१२	११
७६	३	९	६	१	२	८	५	१२	११	७	१०	४
७७	११	३	९	४	१	२	८	१०	१२	६	७	५
७८	५	११	४	९	७	१	६	२	१०	१२	३	८
७९	७	५	११	२	९	४	१२	६	३	१	८	१०
८०	२	८	५	११	४	७	१०	३	१	९	६	१२
८१	१२	१	७	५	११	१०	९	४	८	३	२	६
८२	१०	१२	२	७	५	३	४	९	६	८	११	१
८३	८	६	१२	१०	३	५	११	१	९	२	४	७
८४	६	७	८	१२	१०	९	३	५	४	११	१	२
८५	१	३	१०	६	१२	२	८	११	५	४	९	७
८६	४	१	८	३	६	१२	११	२	७	९	१०	५
८७	९	४	१	७	३	८	१२	५	२	६	११	१०
८८	३	९	४	१	८	१०	२	७	१२	५	६	११
८९	११	१०	९	४	१	६	७	१२	३	८	५	२
९०	५	११	६	९	४	१	३	८	१०	२	७	१२
९१	७	५	११	२	१०	४	६	९	८	३	१२	१
९२	२	७	५	११	९	३	१०	४	१	१२	८	६
९३	१२	८	७	५	२	११	९	१	६	१०	३	४
९४	१०	१२	२	८	११	५	४	६	९	७	१	३
९५	८	६	१२	१०	५	७	१	३	४	११	२	९
९६	६	२	३	१२	७	९	५	१०	११	१	४	८

वर्ष-कुंडली चक्र—५

आयु वर्ष	जन्म कुंडली के भाव											
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
९७	१	९	१०	६	१२	२	७	५	३	४	८	११
९८	४	१	६	८	१०	१२	११	२	९	७	३	५
९९	९	४	१	२	६	८	१२	११	५	३	१०	७
१००	३	१०	८	१	५	७	६	१२	२	९	११	४
१०१	११	३	९	४	१	६	८	१०	७	५	१२	२
१०२	५	११	३	९	४	१	२	६	८	१२	७	१०
१०३	७	५	११	३	९	४	१	८	१२	१०	२	६
१०४	२	७	५	११	३	९	१०	१	६	८	४	१२
१०५	१२	२	४	५	११	३	९	७	१०	६	१	८
१०६	१०	१२	२	७	८	५	३	९	४	११	६	१
१०७	८	६	१२	१०	७	११	४	३	१	२	५	९
१०८	६	८	७	१२	२	१०	५	४	११	१	९	३
१०९	१	९	१०	६	१२	२	७	११	५	३	४	८
११०	४	१	६	८	१०	१२	३	५	७	२	११	९
१११	९	४	१	२	५	८	१२	१०	६	७	३	११
११२	३	१०	८	९	११	७	४	१	२	१२	६	५
११३	११	३	९	४	१	६	२	७	१०	५	८	१२
११४	५	११	३	१	४	१०	६	८	१२	९	७	२
११५	७	५	११	३	९	४	१	१२	८	१०	२	६
११६	२	७	५	११	३	९	१०	६	४	८	१२	१
११७	१२	२	४	५	६	१	८	९	३	११	१०	७
११८	१०	१२	२	७	८	११	९	३	१	६	५	४
११९	८	६	१२	१०	७	५	११	२	९	४	१	३
१२०	६	८	७	१२	२	३	५	४	११	१	९	१०

८. मासिकफल के लिये वर्ष कुंडली के सूर्य को उस भाव में रखें, जहाँ मास पूर्ण होता है, जैसे—सूर्य लग्न में हो तो नवमेंमास के फल हेतु सूर्य को नवमेंभाव में लेकर वर्ष कुंडली के ग्रहों को उसके क्रम में स्थापित करें। दो ग्रह एक साथ होंगे, तो वे एक साथ ही रहेंगे।
९. दिन का फल ज्ञात करने के लिये मंगल को देखें। वह जिस भाव में हो, वहाँ से दिन गिनें। जिस दिन का फल ज्ञात करना हो, उस संख्या तक भाव गिनते जायें और वहाँ मंगल को रखकर सम्पूर्ण मास कुंडली को घुमा दें। इस प्रकार दिन कुंडली बन जायेगी। इसके अनुसार फल ज्ञात करें।
१०. घंटे का फल ज्ञात करने के लिये दैनिक कुंडली में गुरु को देखें। वह जिस भाव में हो, उसके बाद अपेक्षित घंटा गिनें। जो भाव आये वहाँ गुरु को रखकर कुंडली घुमा दें। जो कुंडली बने उससे घंटे का फल निकालें।
११. मिनट के लिये घंटे की कुंडली में शनि को देखें और उसके बाद के भाव को मिनट की संख्यानुसार गिनें। जो भाव आये, उस भाव में गुरु को स्थापित करें और कुंडली घुमा दें। जो कुंडली बने, उससे उस मिनट का फल ज्ञात करें।

टिप्पणी—(i) सेकेण्ड के लिये उपर्युक्त प्रकार से ही मिनट कुंडली के बुध को वांछित सेकेण्ड की संख्या के भाव में रखकर जन्मकुंडली घुमा दें।

(ii) उपर्युक्त सिद्धान्त आधुनिक ज्योतिषियों का अन्वेषण है। प्राचीन पद्धति से फल गोचर में ग्रहों की स्थिति से ज्ञात किया जाता है। इसका ज्ञान पंचांग से किया जा सकता है।

❑

अध्याय-५

ग्रहशान्ति के घरेलू टोटके

सूर्य

१. पीले शीशे की बन्द बोतल में शुद्ध पानी भरकर धूप में रखें और इस पानी को सोते समय दो चम्मच पियें। निर्बल सूर्य को सबलता प्राप्त होगी।
२. दिन में सोयें नहीं और रति न करें।
३. सूर्य कुपित हो, तो आग्नेय कोण में पानी का बड़ा मटका रखें और यह पानी प्रतिदिन बदलकर फेंक दें।
४. ईशान में हैंडपम्प या कुआँ बनवायें।
५. नारियल तेल दान दें और उपयोग न करें।
६. यथासम्भव ऋण या दान न लें।
७. आचरण एवं व्यवहार को सही रखें।
८. लोहे या लकड़ी के कार्य न करें।
९. सोना, चाँदी, श्वेत-पीत कपड़े आदि के कार्य करें और पहनें।
१०. सन्तान प्राप्ति के उपाय निरन्तर करते रहें।
११. रसोईघर पूर्व दिशा के आग्नेय कोण में बनवायें।
१२. मुर्गा, पक्षी, लाल मुँह वाले बन्दर एवं बच्चों का पालन-पोषण करें।
१३. परम्परागत पैत्रिक रीतियों को जारी रखें।
१४. धर्मस्थल की किसी भी पूजा-सामग्री को घर में रखें।
१५. सिरहाने में चाँदी या पानी रखकर सोयें।
१६. भूमि के अन्दर तहखाने या भट्टी न बनवायें।
१७. कुत्तों को भोजन करायें।
१८. चूल्हे को दूध के छीटों से बुझायें।
१९. बुध ग्रह की शान्ति का उपाय करें।

२०. बन्दर को गुड़ खिलायें।
२१. बाजरा आदि अन्नदान करें और इनका उपयोग खाने में न करें।
२२. ताम्बे का पत्र घर की भूमि के नीचे दबायें।
२३. नमक कम प्रयोग में लायें।
२४. मीठा खायें।
२५. काली गाय की सेवा करें।
२६. यज्ञ में गेहूँ का हवन करें।
२७. घर में सफेद गाय न रखें।
२८. दक्षिणमुखी घर में न रहें।
२९. रोगियों से दूरी बनाये रखें।
३०. घर में पीतल के बर्तन रखें।
३१. सफेद टोपी पहनें।
३२. काले-नीले-लाल कपड़े न पहनें।
३३. दीनता का प्रदर्शन न करें।
३४. घर में तांबे के पैसे भूमि में गाड़ें। ११ दिन बाद उनमें से एक-एक ४३ दिन तक पानी में अर्पित करें।
३५. शनि ग्रह का ध्यान रखें।
३६. सिरहाने में बादाम की गिरी रखकर सोयें और उन बादामों को एकान्त स्थल पर ईश्वर को अर्पित करें।
३७. मांसाहार एवं उत्तेजक वस्तुओं का व्यवहार न करें।
३८. झूठ और विवाद से बचें।
३९. ससुराल की सम्पत्ति या ससुराल की वस्तुओं के प्रति लालच न रखें (स्त्री मायके की)।
४०. घर जिसमें रहते हों, घुटन या सीलन आदि से मुक्त अर्थात् खुला हुआ रहना चाहिये।
४१. घर की चक्की में आटा पिसवाकर खायें।

चन्द्रमा

१. चाँदी के पात्र भोजन करने या दूध-पानी आदि पीने में प्रयुक्त करें।
२. काँच के बर्तन का प्रयोग न करें।
३. दूध न बेचें।
४. चारपायी, पलंग के चारों पाये में चाँदी ठुकवायें।

५. वटवृक्ष की सेवा करें।
६. माता का अपमान न करें।
७. मंगलग्रह से सम्बन्धित वस्तुओं को भूमि में दबायें।
८. शुक्र ग्रह से सम्बन्धित वस्तुओं को दूर रखें।
९. वर्षा का जल घर में रखें, फिर २४ घंटे के उपरान्त फेंक दें।
१०. चाँदी के आभूषण, अंगूठी, चाँदी के तारों से मंडित वस्त्र आदि पहनें।
११. घर की नींव में ईशान कोण पर चाँदी का पत्र दबायें।
१२. माता या घर की वृद्धा की सेवा करें।
१३. हरे रंग का वस्त्र कुँवारी कन्याओं को भेंट दें।
१४. घर का फर्श कच्चा रखें।
१५. कन्या के जन्म पर चन्द्रमा की वस्तुएँ दान में दें।
१६. सूर्य के जन्म पर सूर्य की वस्तुएँ दान में दें।
१७. सूर्य की वस्तुएँ दान करें।
१८. घर में पानी का बड़ा घड़ा भरकर रखें। उसमें पाँच चम्मच दूध डाल दें। २४ घंटे बाद इस जल को पौधे या पेड़ों में अर्पित करें।
१९. पितृयज्ञ करें।
२०. लालच, स्वार्थ, अय्याशी एवं परस्त्रीगमन से बचें।
२१. मीठा भोजन करें।
२२. सोमवार को श्वेत वस्त्र में चावल-मिश्री बाँधकर चन्द्रमा का मंत्र पढ़ते हुए १०८ बार ललाट से छुलायें और पानी में बहा दें।
२३. पिता की सेवा करें। उन्हें दूध पिलायें।
२४. सूर्य, मंगल एवं बृहस्पति की वस्तुएँ दान में दें।
२५. विवाह से पूर्व चन्द्रमा का अनुष्ठान करें।
२६. विवाह में ससुराल से चाँदी, मिश्री, चन्द्रमा का रत्न आदि लायें।
२७. श्मशान का जल (नदी, कूप या नल का) घर में रखें।
२८. नाक छिदवायें।
२९. भीगे पैर भोजन करें (पैर धोकर)।
३०. जुआ न खेलें।
३१. रात में दूध न पियें।
३२. गाय-भैंस-बकरी आदि न पालें।
३३. ससुराल से सम्पत्ति न लें।
३४. इस समय मकान न बनवायें।

३५. बच्चे का जन्म होने वाला हो, तो माता को अन्यत्र भेज दें और ४३ दिन तक बच्चे का मुँह न देखने दें।
३६. कुआँ न खुदवायें।
३७. दूध से बनी मिठाई बाटें।
३८. भैरव की पूजा करें।
३९. अन्याय न सहें।
४०. खूब पानी पियें।

मंगल

१. साधु या फकीर से बचें।
२. ससुराल से प्राप्त कुत्ता न पालें।
३. बिना मूल्य दिये कोई वस्तु न लें।
४. बृहस्पति से सम्बन्धित वस्तुएँ दान करें।
५. शुक्र से सम्बन्धित वस्तुओं को भूमि में सवा हाथ अन्दर दबायें।
६. सगों का ध्यान रखें।
७. भाई का अपमान न करें।
८. चन्द्रमा की वस्तुएँ दान दें।
९. वृद्ध औरतों का सम्मान करें।
१०. कुआँ-प्याऊँ का निर्माण करायें।
११. जिद न करें।
१२. अय्याशी से बचें।
१३. हाथी दाँत की वस्तुओं का प्रयोग करें।
१४. चाँदी की अंगूठी में चन्द्रमा का रत्न पहनें।
१५. बरगद की जड़ में दूध चढ़ायें। इसकी गीली मिट्टी को उठाकर बदन पर लेप करें।
१६. घर या दूकान की छत पर चीनी की बिना धुली खाली बोरियाँ रखें।
१७. मिट्टी के बर्तन में शहद भरकर श्मशान में दबायें।
१८. मृगछाला पर सोयें।
१९. चाँदी का पत्र सिरहाने रखें।
२०. दक्षिणी द्वार बन्द कर दें।
२१. ढाक के वृक्ष का कोई अंश घर में न लायें।
२२. काले रंग एवं निःसन्तान पुरुष-स्त्री से दूर रहें।

२३. बृहस्पति, सूर्य एवं चन्द्रमा की वस्तुओं को घर में स्थापित करें।
२४. चिड़ियों को मीठा खिलायें।
२५. सिरहाने पानी रखकर सोयें।
२६. परस्त्री गमन न करें।
२७. दूध का दान करें।
२८. शनि का अनुष्ठान करें।
२९. १४ से १६ वर्ष की कन्याओं की पूजा करें।
३०. सन्तान प्राप्ति हेतु बुध एवं चन्द्रमा का अनुष्ठान करें।
३१. नारियों का सम्मान करें।
३२. दूध, चावल, चाँदी आदि कन्याओं को दान में दें।
३३. जन्मदिन का उत्सव न मनायें।
३४. गणेश की उपासना करें।
३५. हनुमान की उपासना करते हुए प्राणयाम करें।
३६. बहन को मीठा भेंट में दें।
३७. घर की युवा विधवा को मीठा खिलायें। उनसे मृदु व्यवहार रखें।
३८. ठोस चाँदी घर में रखें।
३९. रोटी सेंकने वाले तवे पर गर्म होने के बाद ठंडे पानी का छींटा मारें।
४०. मीठी रोटी कुत्तों को खिलायें।
४१. भाभी को प्रसन्न रखें।
४२. बुध की वस्तुएँ कुएँ में अर्पित करें।
४३. शुक्र की वस्तुएँ भूमि में गाड़ें।
४४. पैत्रिक सम्पत्ति न बेचें।
४५. हिरण पालें।
४६. सोना न बेचें।
४७. मंगल की वस्तुओं से परहेज करें।
४८. खाकी टोपी पहनें।
४९. बताशे दान में दें।
५०. सिर पर चोटी रखें।

बुध

१. काम या निवास स्थायी रखें।
२. मांसाहार न करें।

३. हरे रंग की वस्तुओं से परहेज करें।
४. फिटकिरी से दाँत साफ करें।
५. बकरी का दान करें।
६. पीली कौड़ियों को जलाकर राख बहते पानी में बहायें।
७. गले में ताम्बे का पैसा धारण करें।
८. साली से प्रणय की सम्भावना है तो सावधान रहें। ऐसा हुआ तो दुर्घटना होगी।
९. नाक में छेद करवाकर तीन महीने तक चाँदी पहनें।
१०. भेड़, बकरी और तोता न पालें।
११. बुध से सम्बन्धित वस्तुएँ धारण न करें (यदि बुध बली होकर अशुभ हो)।
१२. केतु का अनुष्ठान करें।
१३. ढाक के पत्ते को दूध में भिगोंकर भवन के मध्य में पत्थर से दबा दें।
१४. घर में कोई पत्थर हो, तो प्रतिदिन उसे दूध से रगड़ें।
१५. केसर का तिलक लगायें।
१६. चाँदी के आभूषण पहनें। स्त्री हों, तो चाँदी की पायल बिछिया के साथ-साथ कमर में चाँदी की अभिमंत्रित जंजीर पहनें।
१७. गाय को भोजन आदि दें।
१८. कन्याओं की पूजा करें।
१९. स्त्री को बायें हाथ में चाँदी का छल्ला धारण करायें।
२०. बृहस्पति का अनुष्ठान करें।
२१. पूजा का स्थान स्थायी रखें।
२२. सीढ़ियों में तोड़-फोड़ न करें।
२३. मंगल की वस्तुएँ श्मशान में दबायें।
२४. लोहे की गोलियों को लाल रंग से रंगकर रखें।
२५. अधिक न बोलें। सोच-समझकर बोलें।
२६. क्रोध न करें। वायदा न करें।
२७. खाली घड़ा बहते पानी में बहायें।
२८. श्याम या श्वेत कुत्ते न पालें।
२९. पीला धागा पहनें।
३०. गणेश की उपासना करें।
३१. लोहे का छल्ला (बिना जोड़ का) पहनें।

बृहस्पति

१. गाय पालें।
२. स्त्री का सम्मान करें, उसको प्रसन्न रखें।
३. भूमि में मंगल की वस्तुएँ दबायें।
४. चन्द्रमा का अनुष्ठान करें।
५. परोपकार करें।
६. गुरु की वस्तुएँ दान करें।
७. साँप को दूध पिलायें।
८. दुर्गा या काली की पूजा करें।
९. कन्याओं की पूजा करें।
१०. चापलूसी से बचें।
११. काल्पनिक दुनिया या योजनाओं से बचें।
१२. गुरुजनों का सम्मान करें।
१३. परस्त्रीगमन से बचें।
१४. मांस-मदिरा से परहेज करें।
१५. राहु-केतु का अनुष्ठान करें (दाम्पत्य कलह के लिये विशेषकर)।
१६. गणेश जी की पूजा करें।
१७. कुत्ता पालें।
१८. पीपल में पानी दें।
१९. शिव उपासना करें।
२०. चन्द्रमा का अनुष्ठान करके चन्द्रमा की वस्तुएँ (अभिमंत्रित) धारण करें।
२१. रत्तियों (एक बीज) को सिरहाने में रखें।
२२. धर्मप्रचार और पाखण्ड से दूर रहें।
२३. सन्तान की देख-रेख करें।
२४. स्वर्ण गले में पहनें।
२५. श्मशान में पीपल लगायें।
२६. मृत्युशय्या पर पड़े व्यक्ति के पास न रहें।
२७. मन्दिर में जाया करें।
२८. बुध की वस्तुएँ दान में दें।
२९. पीले केसर का तिलक लगायें।
३०. ताम्बे का सिक्का प्रतिदिन बहते पानी में डालें।
३१. कफन के दान का अवसर मिले तो करें।

३२. सूर्यग्रहण के समय शनि की वस्तुएँ दान में दें।
३३. केतु या बृहस्पति का उपाय करें।
३४. चोटी रखें।
३५. माला न पहनें।

शुक्र

१. दही प्रयुक्त करें।
२. गुड़ प्रयोग में न लायें।
३. दिन में रति नं करें।
४. अय्याशी से बचें।
५. मंगल की वस्तुओं का प्रयोग करें।
६. आलू में हल्दी देकर उबालें और गाय को खिलायें।
७. गाय का घी दान करें।
८. परस्त्रीगमन से बचें।
९. जायदाद न बेचें।
१०. स्त्रियों से प्रेममय एवं सम्मानजनक व्यवहार रखें।
११. कुआँ न खुदवायें।
१२. झाडू में काला सुरमा लगाकर भूमि में दबायें।
१३. मदिरा या मादक द्रव्यों का प्रयोग न करें।
१४. दोषों को व्यक्त न करें।
१५. दूसरे की आलोचना से बचें।
१६. गुप्तांग (विशेषकर स्त्री) दूध मिश्रित पानी या नीम के पत्ते के पानी से प्रतिदिन धोयें।
१७. चाँदी पहनें।
१८. काँसे के बर्तन एवं नीले फूल दान करें।
१९. ज्वार को रात भर शय्या में रखें, सुबह दान करें।
२०. २५ के बाद विवाह करें।
२१. जमानत लेने या शपथ लेने से बचें।
२२. घोड़े पालें।
२३. पश्चिमी दीवार कच्ची रखें।
२४. कामभाव का दमन करें।
२५. तेल दान करें।

२६. स्त्री को कोष न सौंपें।
२७. स्त्री जातक नीले फूल, काँसे एवं धूल को भूमि में छुपकर गाड़ें।
२८. राहु की वस्तुएँ न रखें न पहनें।
२९. स्त्री जातक शिवलिंग पर जल चढ़ायें।
३०. पुरुष से वियोग हो, तो चन्द्रमा का अनुष्ठान करें।

शनि

१. शनि का अनुष्ठान करें।
२. मद्य-मांस का सेवन न करें।
३. वटवृक्ष की जड़ में दूध चढ़ायें और उस दूध से गीली मिट्टी बदन में लगायें।
४. वीरान स्थान में भूमि के नीचे सुरमा दबायें।
५. बन्दर पालें।
६. लोह का दान करें। लोहातत्त्व वाला भोजन न करें।
७. शिवलिंग पर जल चढ़ायें।
८. साँप को दूध पिलायें।
९. सरसों तेल न लगायें, न खायें।
१०. दूध-दही का सेवन करें।
११. कुएँ में (जहाँ से पानी पीते हैं) दूध डालें।
१२. परस्त्रीगमन से बचें।
१३. गुड़, ताम्बा, भूरी भैंस, बन्दर, शहद, खाँड, सौंफ, लाल मूँगा, हथियार, चावल, चाँदी, दूध, कुआँ, घोड़ा आदि घर में स्थापित करें।
१४. बादाम दान करें। इसे प्रयोग में न लायें।
१५. कुत्ता पालें।
१६. तेल में मुख देखकर दान करें।
१७. नारियल दान दें।
१८. कुत्तों को रोटी खिलायें।
१९. बाँस के फोफी में खांड भरकर भूमि में दबायें।
२०. भवन के आस-पास और अन्दर सफाई रखें।
२१. लकड़ी के पीढ़े पर बैठकर स्नान करें। तलवे भूमि पर न लगें।
२२. चाँदी पहनें।
२३. एक सेर (९२५ ग्राम) दूध और इतनी ही सरसों तेल लगी उड़द पानी में बहायें।
२४. केतु का अनुष्ठान करें।

२५. बृहस्पति का अनुष्ठान करें।
२६. घर में पत्थर लगायें (माता-पिता स्वर्गवासी हो गये हों, तब)।
२७. छत पर लकड़ी, ईंट, पत्थर, लोहा आदि न रखें।
२८. गणेश की उपासना करें।
२९. शराब भैरव पर चढ़ायें।
३०. १२ बादाम काले कपड़े में बाँधकर, लोहे के पात्र में रखकर भूमि में दबायें।

राहु

१. राहु का अनुष्ठान करें।
२. बिल्ली की जेर नारंगी कपड़े में बाँधकर रखें।
३. नारियल दान करें।
४. चाँदी पहनें।
५. गुरु की वस्तुएँ पहनें।
६. ससुराल से विद्युत या अग्नि की सामग्री न लें।
७. हाथी के पैरों की मिट्टी कुएँ में गिरायें।
८. धनिया पानी में बहायें।
९. सिक्के बहते पानी में बहायें।
१०. अधूरा कार्य न छोड़ें।
११. स्त्री के सिरहाने रात में मूलियाँ रखकर प्रातः दान करें।

केतु

१. गणेश उपासना करें।
२. केसर का तिलक लगायें।
३. स्वर्ण पहनें।
४. चन्द्र-मंगल की वस्तुएँ दान करें।
५. बृहस्पति को प्रसन्न करें।
६. निन्दा और कटुता से बचें।
७. काला कम्बल दान करें।
८. कुत्ते पालें।
९. दूध और शहद दबायें।
१०. बुध की वस्तुएँ धारण करें।
११. सन्तान का ध्यान रखें।

अध्याय-६

ग्रहशान्ति के सरल उपाय

हमने इससे पूर्व ग्रहों की शान्ति के लिये तांत्रिक, रत्न सम्बन्धी एवं टोटकों पर आधारित उपचार बताये हैं। इनके विधिवत प्रयोग से ग्रहों के अनिष्टकारक प्रभाव को दूर किया जा सकता है।

किन्तु, ऐसा देखा गया है कि सामान्य लोग जटिल तांत्रिक-क्रियाओं एवं पूजा-अनुष्ठान पद्धति को करने में हिचकिचाते हैं। इससे उनका आत्मविश्वास टूट जाता है और जहां आत्मविश्वास का अभाव हो, वहां कोई भी साधना सफल नहीं होती।

इस समस्या के निदान हेतु मैं वर्षों प्रयत्नशील रहा हूं। इस सम्बन्ध में मैंने अनेकों प्रकार के शोध किये हैं और इस शोध के परिणामस्वरूप कुछ ऐसी तकनिकियां विकसित की हैं; जो जन सामान्य के लिये सरल एवं सुगम हों।

यह सदा स्मरण रखें कि भारतीय ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, पूजा-अनुष्ठान आदि सूक्ष्म-तरंगों का विज्ञान है। इन तरंगों के असन्तुलन से ही रोगों आदि अनिष्टकारक संयोग की उत्पत्ति होती है। ग्रहों की शान्ति का अर्थ यह है कि इन तरंगों के असन्तुलन को कृत्रिम उपायों से सन्तुलित किया जाये। इसमें जितनी भी तकनिकियों का प्रयोग किया जाता है, उनका उद्देश्य यही है। इसलिये यह कदापि न समझें कि अत्यधिक ताम-झाम और जटिलता को अपनाने से ही कष्ट निवारण हो सकता है। सरल उपायों द्वारा भी अभिष्ट सिद्धि की जा सकती है। यहां हम कुछ विशिष्ट रोगों के उपचार की पद्धति दे रहे हैं। इसके लिये आपको अपना योग देखने की आवश्यकता नहीं है। यदि आपको कोई रोग है या किसी रोग के होने का ज्योतिषीय योग ज्ञात हो गया है; तो निम्नलिखित उपाय करें—

मानसिक-रोग

इस मानसिक रोग का सम्बन्ध पागलपन या उन्मादजन्य अत्यधिक विकृति

अथवा भूत-प्रेत बाधा से नहीं है। इसमें रोगी स्वयं साधना या शान्ति उपाय करने के योग्य नहीं रहता। उसे कोई सिद्ध साधक ही ठीक कर सकता है। इस मानसिक रोग का तात्पर्य ऐसे मानसिक-रोगों से है, जिनमें बुद्धि तो ठीक रहती है; पर तेजहीनता, खिन्नता, मानसिक-दुर्बलता, बुझा-बुझा रहना, उचित निर्णय-शक्ति का अभाव, भ्रमानुभूति, भय आदि की मानसिक स्थिति है।

प्रतिदिन ब्रह्म-मुहूर्त्त में उठकर चांदी के बर्तन में रखा बासी पानी पियें। यह पानी कम से कम चार लीटर होना चाहिये।

पानी पीने के समय गुरु द्वारा प्रदत्तमंत्र सात बार जप करने के बाद ही पानी में मुंह लगायें। प्रारम्भ में पानी की मात्रा कम रखें फिर बढ़ाते हुए चार-पांच लीटर तक ले जायें। चांदी का बर्तन उपलब्ध नहीं हो, तो मिट्टी का बर्तन प्रयुक्त करें। पानी को साफ एवं महीन सफेद कपड़े से ढककर खुले स्थान में या छत पर रखें।

इस पानी को पीने के बाद दैनिक-क्रियाओं से निवृत्त होकर कमरे के केन्द्र स्थान (या भूमि के) पर बैठें और चन्दन की लकड़ी को घिसकर तिलक लगायें।

आंखें बन्द करके गणेश जी की सुनहली तेजमय मूर्ति का ध्यान मन में लगायें। ध्यान को भृकुटियों के मध्य केन्द्रित रखें। इस समय ५० ग्राम सफेद गाय का घी, शुद्ध हल्दी का चूर्ण, गाय के दूध की २० ग्राम मलाई, गुलाबजल २० मिलीलीटर, बादाम की गिरी-१रखें। एक पीतल के पात्र में ताजा जल एवं पांच पत्ते तुलसी के रखें।

यह ध्यान एक मिनट से प्रारम्भ किया जाता है, इस एक मिनट में भी ध्यान की स्थिति प्रारम्भ में दो-चार सेकेण्ड के टुकड़ों में होती है। १५ सेकेण्ड का नियमित ध्यान लगना प्रारम्भ हो जाये, तो स्मरण-शक्ति, मानसिक-शक्ति, तेज, कान्ति, प्रसन्नता, सफलता, विश्वास, बुद्धि आदि की वृद्धि होने लगती है। ध्यान के समय गहरी सांस लें।

ध्यान की समाप्ति पर पांचों सामग्री को खूब फेंटते हुए गुरुमंत्र का जाप करें। २१ बार मंत्र पढ़कर इस लेप की समूचे शरीर (कोई अंग न छोड़ें, बालों-पलकों तक में) पर मालिश करें और लोटे के जल की तुलसी को मसलकर जल पी जायें।

यह एक हानिरहित क्रिया है। यह नियमित किया जा सकता है।

चर्म-रोग के उपाय

चर्म-रोग के लिये उपर्युक्त प्रकार से लोहे के पात्र में रखा जल पियें! रात्रि में लोहे के पात्र में जल रखकर उसमें चिरैता (एक प्रकार की वनस्पति पत्तियाँ)

डाल दें। चिरैता ५० ग्राम होना चाहिये। इसे लाल-रक्तिम कपड़े से ढंक दें और खुले स्थान में रखें।

ध्यान के लिये कमरे या भूमि के पूरब-उत्तर कोण पर उसी ओर मुख करके बैठें। इस समय एक लोहे के पात्र में उसी ओर मुख करके बैठें। इस समय एक लोहे के पात्र में गन्धक, शुद्ध सरसों का तेल, भटकैया की जड़ (एक नीम की तरह तीता लगने वाला पौधा) खूब पीसकर रखें। एक लोहे के पात्र में ताजा जल रखें और उसमें गन्धक का चूर्ण एवं नीम की कोमल पत्तियाँ डालें।

मंत्र जाप करते हुए काली का ध्यान लगायें। काली का स्वरूप ज्योतिर्मय रक्तिम होना चाहिये।

साधना की समाप्ति पर गन्धक, सरसों तेल और भटकैया की पिसी हुई जड़ को खूब फेंटकर मिलायें। इससे सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करें और दो घंटे धूप में बैठें, चाहे धूप तीखी क्यों न हो। इससे पूर्व लोटे का जल छानकर पी लें।

इसके बाद स्नान कर लें और साफ कपड़े पहन लें। यदि कुष्ट रोग है; तो साथ-साथ आयुर्वेद की दवायें भी लें। अन्य सामान्य चर्म-रोग में दवा खाने की जरूरत नहीं है।

यौन-रोग के उपाय

यौन-रोग कई ग्रहसंयोग पर निर्भर करते हैं। इससे इनकी प्रकृति में भी भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। ये उपाय इन प्रकृतियों को देखकर ही चुने जाते हैं।

१. यदि उत्साहहीनता, शिथिलता, आलस्य, तन्द्रा, शक्ति की कमी हो, तो गिलोय के डंठल के टुकड़े बासी बनाने वाले जल में डालें। जल पीतल या सोने की पालिश किये पात्र में छानकर पियें।

विष्णु या सूर्य का ध्यान लगायें। यह ध्यान भूमि या कक्ष के केन्द्र में उत्तर-पूर्व कोने की ओर मुख करके लगायें।

ध्यान के समय पीतल के पात्र में जल लेकर तुलसी के पत्ते रखें। ध्यान की समाप्ति पर पत्ते मसलकर जल पी जायें।

प्रतिदिन रात्रि में अभिमंत्रित सिद्धतेल की मालिश करें। यह तेल गुरु से प्राप्त करें।

२. यदि उक्त विकार स्त्री में हो, तो १ उपर्युक्त उपाय ही करें; परन्तु ध्यान लक्ष्मी का लगायें। मालिश के तेल में हल्दी मिलायें।

३. लैंगिक दुर्बलता एवं योनि विकार के लिये आधा लीटर मदिरा (देशी) दो नीबू, पांच पान के पत्ते, ५ ग्राम कपूर, एवं मछली का तेल १०० ग्राम लें।

पूर्व प्रकार से मंत्र जाप करते हुए (देखें चर्म-रोग के उपाय) काली का ध्यान लगायें।

ध्यान की समाप्त पर नींबू को एक ही झटके में काटें और दोनों को काटकर मदिरा में मिला दें। पान के पत्ते का रस, कपूर एवं मछली का तेल भी इसमें मिला दें और सम्पूर्णशरीर पर मालिश करके लिंग या योनि का प्रछालन इससे करें। योनि में पिचकारी का प्रयोग करना चाहिये।

सन्तान के इच्छुक नींबूओं का प्रयोग न करें। उसकी जगह खरैंटी की जड़ का प्रयोग करें।

४. जिन महिलाओं की योनि में ओड़हुल के फूल के रस में भिगोकर सुखाये गये कागज की पत्ती पांच मिनट तक रखने से नीले से लाल हो जाये, उन्हें उपर्युक्त प्रकार से काली का ध्यान लगाकर मदिरा एवं मधु को अभिमंत्रिम करके इन दोनों से योनि प्रक्षालन करना चाहिये और नाभि, कमर, नितम्ब एवं जंघाओं पर मालिश करनी चाहिये।

स्नायविक-विकार के उपाय

प्रतिदिन अर्द्धरात्रि के समय उपर्युक्त प्रकार से काली का ध्यान लगायें। ध्यान पूजा के बाद एक स्वस्थ कबूतर की बलि दें। इस कबूतर का रक्त एक मिट्टी के पात्र में रखे चावल (कच्चा) में गिरायें और उसे छाया में सुखायें। कबूतर का मांस, सेन्धा नमक एवं काली मिर्च के पाउडर की एक चुटकी डालकर पकायें। यह मांस एवं इसका शोरबा पन्द्रह दिन तक प्रतिदिन साधना के बाद अगले दिन सुबह खायें। इसमें रोटी-चावल आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

पन्द्रह दिन तक कबूतर के रक्त में भींगने एवं सूखने के बाद जो चावल तैयार हों, उन्हें बाद में प्रतिदिन गुड़ के साथ १० ग्राम खाकर गाय का दूध पियें और रात में पके केले (दो नग) खाकर गाय का दूध पियें।

पन्द्रह-पन्द्रह दिन के तीन कोर्स में नसों का सूखना, लकवा, स्नायविक कमजोरी, दुर्बलता से अंगों का खिंचना-ऐंठना आदि निश्चित रूपेण दूर हो जाता है।

इस प्रकार विभिन्न रोगों के लिये निम्नलिखित तालिका के अनुसार व्यवस्था करें।

देवी या देवता	आसन स्थान	रोग	औषधि	समय
काली	ईशानकोण	कान्तिहीनता, तेजहीनता, सुस्ती, सन्तानहीनता, बन्धत्व, जीवनी-शक्ति का अभाव, रक्तविकार।	लाल रक्तिम, फल, सरसों का तेल, मदिरा, कबूतर या मुर्गे का ताजा मांस आदि।	अर्द्धरात्रि कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन।
दुर्गा	ईशानकोण	कर्म की कमी; आलस्य, स्फूर्ति का अभाव, दुर्बलता, पराक्रम एवं तेज का अभाव, स्नायविक-रोग।	सिन्दूर, सिन्दूरी फूल, रक्तचन्दन, बकरे का मांस एवं रक्त, दूब, चावल आदि।	अर्द्धरात्रि कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन।
श्याम शिवलिंग	ईशानकोण	शारीरिक-दुर्बलता, काम-शक्ति का अभाव यौन-रोग, जीवनी-शक्ति का अभाव, चर्म-रोग।	बेलपत्र, भांग, काला चना, काली मिर्च, मदिरा, भैंस का घी, घोड़े की लीद आदि।	अर्द्धरात्रि कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन।
लक्ष्मी	ईशानकोण	पाण्डु-रोग, संग्रहणी के रोग, अपच, पेट के रोग, अपच के कारण अरुचि और दुर्बलता आदि।	घी, दूध, दूब, चावल, तिल, जौ, पीले फूल, पीले फल, हल्दी, केसर, अष्टगंध आदि।	अर्द्धरात्रि कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन।
विष्णु	मध्यभाग	तेजहीनता, सुस्ती और हृदय-रोग।	सुनहले वस्त्र, फूल, केसर, प्राणायाम।	प्रातःकाल
सूर्य	मध्यभाग	तेजहीनता, सुस्ती और हृदय-रोग।	सुनहले वस्त्र, फूल, केसर, प्राणायाम।	प्रातःकाल
सरस्वती	नैऋत्यकोण	गले के रोग, वाणी-विकार, कल्पनाशीलता का अभाव, कंधों के रोग, गर्दन के विकार आदि।	नीले फूल, नीला वस्त्र, बेर, मधु, पान, कत्था, सुपारी आदि।	सायंकाल चांदनी पक्ष में।
गणेश	नैऋत्यकोण	मतिभ्रम, मानसिक विकार, बुद्धिहीनता, मृगी आदि।	सफेद या पीत फूल, पीत वस्त्र, हल्दी, बेसन के लड्डू आदि।	प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में।
महागौरी	नैऋत्यकोण	स्मृतिभंग, मानसिक-विकार, आदि।	सफेद पुष्प, सफेद चन्दन, सफेद वस्त्र, सफेद घी, दूध-दही, चावल आदि।	प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में।

रंगों का प्रभाव

शनि—	काला रंग	—	सफेद।
राहु-केतु—	स्लेटी एवं श्याम	—	सुनहला
शुक्र—	लाल रक्तिम	—	बैंगनी
बुध—	सिन्दूरी	—	नीला
बृहस्पति—	सिल्वर या राख	—	लाल गुलाबी
चन्द्रमा—	नीला, आसमानी	—	रक्तिम
सूर्य—	सुनहला	—	श्वेत
मंगल—	सिन्दूरी, रक्तिम	—	नीला, बैंगनी।

एक में क्षीण होकर दुष्प्रभाव डालता है। इन दोनों के उपाय भिन्न-भिन्न होते हैं। कोई ग्रह क्षीण होकर प्रभाव डाल रहा है, तो उसकी क्षीणता को उस ग्रह को बली करके दूर किया जाता है और यदि वह बली होकर दुष्प्रभाव डाल रहा है; तो उसे क्षीण किया जाता है। उपर्युक्त तालिका में दायीं ओर का कॉलम विपरीत तरंगों का है।

कृपया यह ध्यान रखें कि ग्रहों के प्रभाव का अध्ययन सूक्ष्मता से करके ही उसकी शान्ति या जाग्रत करने के उपाय करें अन्यथा लाभ के बदले हानि भी हो सकती है।

ग्रह यदि कारक भावों के हैं तो उनका शुभाशुभ प्रभाव अवश्य पड़ता है जिसे उपाय द्वारा भी नहीं रोका जा सकता।

शुभ-ग्रहयोग की पहचान

चन्द्र, बुध, शुक्र, केतु व गुरु शुभग्रह हैं। यह भी स्मरण कर लें—

१. अपने घर या राशि में स्थितग्रह शुभ होने के कारण अच्छा फल देते हैं।
२. उच्चराशि में स्थितग्रह जातक को प्रतापी बनाते हैं। ग्रह निम्न राशियों में उच्च होते हैं—सूर्य मेष में, चन्द्र वृष में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, गुरु कर्क में, शुक्र मीन राशि में, शनि तुला राशि में, राहु मिथुन राशि में और केतु धर्नु राशि में।
३. ९, १० व ११वें भाव में ग्रह अच्छा फल देते हैं।
४. भाव एक (लग्न) में शुभग्रह है या शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक स्वस्थ व दीर्घायु होता है।

५. बारहवें भाव का स्वामी नौवें भाव में स्थित हो तो आजीवन जातक खर्चे के भार से बचा रहता है।
६. अशुभ भाव में कोई ग्रह अपनी राशि में स्थित हो तो अशुभफल नहीं करता।

अशुभग्रह कौन है?

सूर्य, मंगल, शनि और राहु उत्तरोत्तर अधिक पापीग्रह हैं। यह भी स्मरण कर लें—

१. ग्रह नीच भावों में स्थित होने पर अशुभफल करते हैं। इन राशियों में ग्रह नीच के होते हैं—सूर्य तुला राशि में, चन्द्र वृश्चिक राशि में, मंगल कर्क राशि में, बुध मीन राशि में, गुरु मकर राशि में, शुक्र कन्या राशि में, शनि मेष राशि में, राहु धनु राशि में और केतु मिथुन राशि में।
२. किसी त्रिकभाव (६, ८, १२) के स्वामी अशुभफल करते हैं। किसी भाव का स्वामी ६, ८, या १२ में स्थित हो तो उस भाव सम्बन्धी फल की हानि करता है।
३. सूर्य के साथ स्थित ग्रह अस्त होते हैं। अस्तग्रह निष्फल होते हैं। अस्तग्रह का प्रभाव तब अधिक होता है जब यह स्थिति सिंह राशि में होती है।

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध

दो ग्रह एक राशि में स्थित हों तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध होता है। ग्रह अपने से सातवेंभाव को पूर्णदृष्टि से देखते हैं।

उपसंहार

रोग और दुर्घटनाओं से सम्बन्धित समस्त ज्योतिषीय दृष्टिकोणों, सिद्धान्तों, सूत्रों एवं व्याख्या का वर्णन मैंने इस पुस्तक में कर दिया है; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि ज्योतिषीय योगों की संख्या असीमित है। इस पुस्तक में जितने योगों का वर्णन किया गया है; वे उन महत्त्वपूर्ण योगों के संकलन हैं; जिनका विवरण प्राचीन ज्योतिष की पुस्तकों में प्राप्त होता है। किन्तु, ये योग इतने ही नहीं हैं। इस संसार में भाँति-भाँति की कुंडलियाँ पायी जाती हैं। उनकी गणना के बाद ही उन कुंडलियों में निहित योगों का ज्ञान किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में हमने उन सूत्रों आदि का सूक्ष्म वर्णन कर दिया है, जिनके आधार पर कुंडली के योगों की गणना की जाती है; अतः पाठकगण थोड़ा-सा मस्तिष्क लगाकर किसी भी कुंडली के विभिन्न योगों का ज्ञान कर सकते हैं।

राहु-केतु एवं मंगल के सम्बन्ध में विभिन्न ज्योतिषशास्त्रियों में साधारण मतभेद भी हैं। हमने उन मतभेदों का वर्णन इसलिये नहीं किया है कि इससे इस पुस्तक का कलेवर वृहत् हो जाता और अनेक तकनीकी कठिनाइयों को देखते हुए यह सम्भव नहीं था। अतः हमने सर्वमान्य सिद्धान्तों को ही महत्त्व दिया है।

हमने इस पुस्तक को तैयार करने में सभी प्रकार के सूक्ष्म सूत्रों, सिद्धान्तों एवं व्याख्याओं आदि का ध्यान रखा है; तथापि यदि कोई त्रुटि या कमी हमारे विद्वान पाठकों की दृष्टि में आती है, तो हमें वे अपना सुझाव लिख भेजें। हम उनकी राय और सुझाव का उचित सम्मान करेंगे।